लोक साहित्य
की
सांस्कृतिक
प
र
म्
प
रा

लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा

ग्रन्थकर्त्ता · डॉ० मनोहर शर्मा
व्याख्याता, शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर

भूमिका : डॉ० सत्येन्द्र
प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

प्रकाशक : सुशील बोहरा
बोहरा प्रकाशन
चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-३

प्रथम संस्करण १९७१

मूल्य : पदरह रुपये

आवरण श्री प्रेमचन्द्र गोस्वामी

मुद्रक : स्वदेश प्रिंटर्स
नेतीपाड़ा, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

स्वर्गीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

की

पावन स्मृति में

दो शब्द

भारतीय लोकसाहित्य पर जरा गहराई से विचार करने पर प्रकट होता है कि इस विशाल देश का प्रत्येक प्रान्त भीतरी तौर पर एक प्राण है। इतना ही नही, साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि भारत का अतीत भी इसके वर्तमान के साथ जुडा हुआ है। भारत मे अनेक सस्कृतियो का सगम हुआ परन्तु इसका मूल रूप अक्षुण्ण ही वना रहा।

यही कारण है कि स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का यह दृढ अभिमत था कि भारतीय सस्कृति का मूलमत्र 'लोके वेदे च' है। भारत के सस्कृति-रथ का एक चक्र वेद अर्थात् शास्त्र पर आधारित है तो उसका दूसरा चक्र लोक पर टिका हुआ है।

इसी तथ्य को दृष्टि मे रखते हुए राजस्थानी लोकसाहित्य के आधार पर कुछ लेख तैयार किए गए थे, जो समय-समय पर विविध पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहे।

यह सामग्री डा० अग्रवाल महोदय को विशेष पसद आई थी, अत. उन्होने इस लेखन-क्रम को जारी रखने के लिए लेखक को उत्साहित किया था।

अब ये लेख एक ग्र थ के रूप मे प्रकाशित हो रहे हैं, यह हर्ष का विषय है। परन्तु आज डा० अग्रवाल इस ससार मे नही है, इससे आगे और क्या कहा जाए ?

बिसाऊ (राजस्थान) **मनोहर शर्मा**

गुरुपूर्णिमा, सवत् २०२८ वि०

अनुक्रमणिका

भूमिका

हाल ही मे प्रकाशित दक्षिण कोरिया के चार डाक टिकटों पर एक लोककथा (Fable) प्रकाशित की गयी है। उसका सार यह है—

"एक लकडहारा कुमगैंग पर्वत की तलहटी मे रहता था। एक दिन जब वह पहाडी पर लकडी काटने गया था, उसने अनायास ही एक रक्तस्नात मृग देखा जो अहेरी से भयभीत होकर भागा जा रहा था। लकडहारे ने उस पर दया कर उसे छिपा कर उसकी रक्षा की। मृग ने इस उपकार का बदला चुकाने के लिए लकडहारे को बताया कि कुमगैंग पर्वत मे एक सरोवर है। वहाँ स्वर्ग की अप्सराएँ आती है। उनमे से एक के वस्त्र लेकर तुम छिपा देना। उसे अपनी पत्नी बना लेना। पर स्मरण रहे, उसके वस्त्र तब तक मत लौटाना जब तक तीन बच्चे न हो जायँ। लकडहारे ने तदनुसार वस्त्र चुराकर एक अप्सरा को अपनी पत्नी बना लिया और आनन्दपूर्वक रहने लगा। उनके दो बच्चे हो गये। लकडहारा मृग की बात भूल गया और एक दिन उसने उसके चुराये हुए वस्त्र भी लौटा दिये। उन्हे पहन कर अप्सरा अपने दोनो पुत्रो को लेकर उड गयी। पत्नी और पुत्रो के वियोग मे वह मरणासन्न हो चला। वही मृग फिर उसके पास आया। उसे सात्वना देते हुए उसने बताया कि तुम फिर उसी सरोवर पर जाओ। अब अप्सराएँ सरोवर पर नही आती। अब वे स्वर्ग से बाल्टियाँ डालकर उस सरोवर से पानी खीच लेती हैं। तुम वहाँ जाकर एक बाल्टी मे बैठकर स्वर्ग मे चले जाना। उसने ऐसा ही किया। सरोवर पर जाकर एक बाल्टी मे बैठकर ऊपर चला गया और अपनी पत्नी तथा बच्चो से मिला।[1]

सिद्ध है कि दक्षिण कोरिया मे यह लोककथा अत्यन्त लोकप्रिय और लोक-प्रतिष्ठित है। तभी उसे चौथी कथा माला (Fable Series) मे डाक टिकटो पर छापा गया है।

हिन्दी मे कुतुबन की मृगावती मे स० १५६० विक्रमी मे हमे यही कथा मिलती है। इस कहानी मे लकडहारा नही एक राजकुमार है। इसमे अप्सरा ही स्वय मृगी हैं। इस कथा का ही आधार लेकर स० १६२३ मे

---

1 द इलस्ट्रैटेड वीकली आव इडिया vol XC11, 26 Sunday June 27 1971 पृ० 59

'मेघराज प्रधान ने भी मृगावती लिखी । इस कृति से विदित होता है कि मृगावती की कथा अत्यन्त लोकप्रिय थी । प्रधान ने लोक प्रचलित कथा का ही उपयोग किया ।

इसमे सदेह नही कि कुतुबन के समय मे भी यह कथा लोक-प्रचलित थी ।

और कब यह कथा लोक-प्रचलित नही थी ? डा० मनोहर शर्मा ने राजस्थान मे पाबूजी के जन्म की कथा तथा हरस-जीरा के जन्म की कथाएँ दी है, वे इसी कथा के रूपान्तर है और डॉ० मनोहर शर्मा ने बताया है कि "अप्सरा और मनुष्य के प्रराय की ये राजस्थानी लोककथाएँ" पुरुरवा एव उर्वशी' की प्रेमकथा के रूपान्तर है जो हमारे देश मे अति प्राचीन काल से लोक-प्रचलित है । ऋग्वेद (१०-६५) में इस प्रराय-कथा की चर्चा है । इसी प्रकार यह प्रसग शतपथ–ब्राह्मरण (६ १) मे भी उपस्थित है। परन्तु विष्णुपुराण मे यह प्रेमकथा विकसित रूप मे दी गयी है ।

कालिदास ने 'विक्रमोर्वशी' मे यही कथानक लिया है । उधर दक्षिण कोरिया मे आज भी यह लोकप्रचलित है । और स्कैंडिनेविया मे भी हस-बालाओ की कहानी के रूप मे यह मिलती है ।[1]

पुरुरवा उर्वशी की कहानी को विद्वानो ने 'स्वान मेडन' (Swan-maiden) मानक रूप के अन्तर्गत रखा है। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स [2] के अनुसार "यह सुन्दर और व्याख्यात्मक पुराख्यान (Myth) प्राचीन मूल का आख्यान है। यह विविध रूपान्तरो मे विस्तृत भू-भाग मे फैला हुआ है । इस मिथ का केन्द्र-बिन्दु यह है कि कुछ प्राणी, अर्द्ध मानव, अर्द्ध पराप्राकृतिक, पक्षी रूप मे परिणत हो जाने की शक्ति से सम्पन्न है । इसके साथ दो गौण बाते भी रहती है . —(१) यह योनि–परिवर्तन (पक्षी-योनि मे) किसी जादुई वस्तु पर निर्भर करता है —वह परो का कोट, लबादा, या परदा हो सकता है जिससे शरीर ढकने पर पक्षी-रूप प्राप्त हो जाता है । यह अँगूठी या माला भी हो सकती है ।(२) या तो यह प्राणी जब मनुष्य रूप मे होता है तब, या उसको अपने वश मे रखने वाला व्यक्ति, किसी न किसी वर्जन से बँधा होता है ।"

जैसे उर्वशी अप्सरा है, यो भी उसमे उडने की शक्ति है पर 'शतपथ ब्राह्मरण' मे उल्लेख है कि उर्वशी के बताये वर्जन के उल्लघन के उपरान्त उर्वशी

1 Scandinavian Legends and Folk Tales P. 174

2 पृ० 125, vol 12.

के उड जाने पर पुरुरवा उसके वियोग मे तडपता उसकी खोज करते-करते कुरुक्षेत्र के सरोवर पर पहुचता है तो वह हसिनी के रूप मे उर्वशी को अन्य हसिनियो के बीच क्रीडा-मग्न पाता है। स्पष्ट है कि उर्वशी मे हस-बाला के रूप मे परिणत होने की शक्ति थी। इसी उल्लेख से उर्वशी की कथा हस-बाला (स्वान मेडन) की कोटि की हो जाती है।

पेजर ने भी बताया है कि यह कथा सभवत विश्व की प्राचीनतम प्रेम कथा है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त 'शतपथब्राह्मण,' 'विष्णुपुराण' आदि के बाद कालिदास के विक्रमोर्वशी मे तो यह है ही। सहस्र रजनी चरित (अलिफ लैला) मे बसरा के हसन की कहानी भी इसी का एक रूपान्तर है।

"स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आव फोकलोर आदि" मे उल्लेख है कि—

"The motif (D. 361 1) typifying a world-wide cycle of Folk Stories characterized by the metamorphosis of a beautiful half-mortal, half-super natural Maiden from Swan to maiden-form The Swan-form depends upon the possession of a magic feather robe (or pair of wings), or a ring, crown, or a golden chain. Usually the Swan Maiden is under some enchantment or tabu that effects also her human lover That the Swan Maiden marries the youth who finds and steals her swan garb on the shore is common to almost all Asiatic and European versions Either the lover hides the enchanted feather dress (ring, chain crown) and thus keeps the wonderful swan maiden with him in human form until she finds it, or he breaks the tabu and she vanishes and returns to her swan shape and super natural life [1]

यह अभिप्राय एशिया और यूरोप मे सर्वत्र पाया जाता है। स्लैवो की लोकवार्त्ता मे, आइसलैड, फिनलैड की कहानियो मे तथा कैल्टो और ट्यूटनो की कहानियो मे यह अभिप्राय मिलता है। फारस, लका, जापान, आस्ट्रेलिया, पोलीनेसिया, मेलैनेसिया, इण्डोनेसिया मे भी और अफ्रीका मे भी।

अमरीकी इण्डियनो की एक कहानी मे एक अहेरी एक झील मे कुछ हसिनियो को स्त्री रूप मे क्रीडा करते देखता है। उनके परो के आच्छादन तट पर रखे हुए थे। वह उन सभी के आच्छादनो को अपने अधिकार मे कर लेता है, फिर एक को छोड शेष सबके आच्छादन लौटा देता है। सभी उड जाती हैं। वह एक उसके साथ विवाह करके रहने लग जाती है। उसके दो बच्चे होते हैं। एक दिन उसे अपना हसिनी-आच्छादन मिल जाता है, उसे

1 पृ० 1091

धारण कर अपने दोनो बच्चो के साथ वह उड जाती है। अहेरी पीछा करके उन्हे पुन प्राप्त कर लेता है। अन्त मे वह अपनी पत्नी को मार डालता है, पर बच्चे बच कर भाग निकलते है।[1]

इन विवरणो का अभिप्राय यह है कि उर्वशी अप्सरा की कहानी विश्व भर मे मिलती है, विविध रूपान्तरो मे। डा० मनोहर शर्मा के अनुसार राजस्थान मे कुछ व्यक्तियो की दिव्य-उत्पत्ति बताने के लिए दो रूपो मे यही कथा मिलती है।

पेजर ने कथा सरित्सागर (viii) मे निर्णय दिया है कि हस-बाला की कहानी की मूल धुरी सस्कृत मे है—अर्थात् वेद-पुराणो के पुरुरवा-उर्वशी आख्यान मे। इतिहास की दृष्टि से यह कहानी ऋग्वेद के उल्लेख से भी पूर्व की होनी चाहिए। ऋग्वेद मे तो पुरुरवा-उर्वशी का सवाद भर है, आख्यान नही। आख्यान शतपथ-ब्राह्मण मे है। ऋग्वेद के पुरुरवा-उर्वशी के सवाद की आधार-कथा क्या शतपथ-ब्राह्मण के कवि ने अपनी कल्पना से रची होगी या उसने उस परम्परागत आख्यान को दिया है जिसमे से सवाद का अ श ऋग्वेद मे सम्मिलित किया गया। स्वाभाविक निष्कर्ष यही हो सकता है कि पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान परपरा मे ऋग्वेद से भी पूर्व से चला आरहा होगा। वेदो से आख्यान नही लिया गया, आख्यान पूर्व-प्रचलित था, उसमे सवाद ऋग्वेद ने ले लिये है।

जो भी हो, अप्सरा मानव के प्रणय की यह कथा लोक-कथा भी है, पुराख्यान (Myth) भी है और साहित्यिक लोकगाथा भी है।

'मिथ' के सबध मे इधर पाश्चात्य नवालोचन (New criticism) मे बहुत चर्चा हुई है और फलत हमारे यहाँ भी मिथ और मिथक की चर्चा चल पडी है।

रेने वालेक और ऑस्टिन वारेन ने 'थ्योरी आव लिटरेचर' मे बताया है कि 'मिथ' जो कि आधुनिक आलोचना का एक प्रिय शब्द है अर्थ के एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की ओर सकेत करता है और उसी पर छाया रहता है, अर्थ का यह महत्त्वपूर्ण क्षेत्र धर्म (Religion), लोकवार्ता, नृतत्व, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाओ (Favourite) द्वारा समानरुपेण उपयोग मे आता है।"[2]

---

1 स्टैंडर्ड डिक्शनरी के आधार पर

2 Myth'a Favourite पृ० १६० ।

'प्रतीकवाद की एक परिभाषा देने का प्रयास करते हुए Literary Criticism A Short History मे William K WimSatt, JR Cleantn Brooks लिखते हैं

"W hether a real school of symbolism ever existed, remains a problem of speculation....Each poet developed and represented a single aspeet of an aesthetic doctrine that was perhaps too vast for one historical group to incorporate . But more than on any other article of belief, the symbolist, united with Mallarme in his statements about poetic language The theory of the suggestiveness of words comes from a belief that a primitive language, half-forgotten, half-living, exists in each man. It is a language possessing extraordinary affinities with music and dreams (Mallarme p 264]

इसमे आये 'Primitive language, half forgotten, half living exists in each man' पर विशेष चर्चा करते हुए कहते है कि मल्लार्मे ने जब ये शब्द लिखे थे तब से अब तक, आधुनिक अर्थात हमारे समय तक 'prelogical and primitive mind या आदिम मानस मे जो रुचि नृतत्त्व अथवा गूढ मनोविज्ञान Depth psychology मे सवर्द्धित हुई है उसने ही मिथ को विशेष महत्त्व प्रदान कर दिया है, आज के युग मे । क्योकि मिथ को ही 'a primitive language, half forgotten, half living' के रूप मे स्वीकार किया जाता है ।

अरस्तू मे मिथ का अर्थ है कथा या कहानी (A Narration, Story, a fable) किन्तु 'मिथ' को जो महत्त्व धर्मो और भाषाओ मे मिला हुआ है उससे इसमे अर्थ-वैविघ्य और महान अर्थ क्षमता की सभावनाएँ सिद्ध होती है । फलत मिथ कहानी के रूप मे तो है, पर उसमे प्रतीकात्मकता भी है और उसका सबन्ध एक छोर पर लोकमानस के आदिमस्तर से भी जुडा हुआ है । अत मिथ या कहानी स्वय आदिम भाषा का एक रूप है जिसमे कितने ही बिम्ब-प्रतीको के रूप के शब्द है ।–"(उर्वशी) अप्सरा–हसवाला–सरोवर जल–आच्छादन वस्त्र–वशीकरण के उपकरण—(पुरुरवा) मानव–नारी + नर प्रेम–शर्त-वर्जन–प्राप्ति–सतान–वर्जन उल्लघन–लोप–प्रयत्न–पुन प्राप्ति"— इस कहानी के ये कुछ शब्द प्रतीक हैं । विश्व भर मे कथा-बिम्ब ही मूलभाषा का काम देते हैं । इन्ही को लेकर कवि महाकाव्य रचता है, धर्म अपना पुराण रचता है । और नृतत्वविद तथा अन्य विद्वान अपने-अपने अर्थ लगाते हैं ।

पुराण-शास्त्रियो (mythologists) के एक प्राचीन सम्प्रदाय ने इन्हे प्रकृति-पुराख्यान (nature myths) माना—वारिदवाला जहाँ धवल वाचि

है और वशकर्त्ता है झंझावात की आत्मा (storm spirit)। कुछ ने इन्हे मृतको के लोक के निवासी की कल्पना माना। कुछ ने इन्हे तत्वम (totem) वताया। कुछ ने इसके वर्जन के पक्ष को लेकर ही, इसे आदिम कालीन वैवाहिक वर्जनो का उल्लेख माना। उधर पुरुरवा-उर्वशी ऋग्वेद मे आये है। और वेदो के अर्थो के सम्बन्ध मे 'उरुज्योति' की भूमिका मे यह लिखा है "वेदो के पश्चिमी विद्वानो ने सायरण के प्रदर्शित मार्ग से वेदो का अनुशीलन किया, किन्तु उन्होने भाषा शास्त्र और तुलनात्मक धर्मविज्ञान इन दो नये अस्त्रो से वैदिक अर्थो की जिज्ञासा को आगे वढाया। जो विद्वान उनके प्रयत्नो से परिचित है, उन्हे जैसा श्री ई० जे० टामस ने डॉ० रीले की पुस्तक "वैदिक गाड्स एज फिगर्स आव बाओलोजी" नामक पुस्तक की भूमिका मे लिखा है— "यह स्वीकार करना पडेगा कि वैदिक अर्थो के प्रज्ञान की समस्या का समाधान अभी नही हुआ। वैदिक मत्रो के अर्थ अभी तक 'सप्रश्न' के रूप मे हमारे सामने है। उनसे सवधित अनेकानेक प्रश्नो का मुख अभी तक खुला हुआ है।" उरुज्योति के लेखक महान वैदिक विज्ञान स्व०- डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल भूमिका मे आगे वताते है . "समस्त वेदो का पर्यवसान अध्यात्म विद्या मे है। यह दृष्टिकोण स्वामी दयानन्द ने अपनी विशाल प्रज्ञानमयी प्रतिभा से जिस दृढता से रखा, उससे वैदिक अर्थो की शैली सचमुच वहुत लाभान्वित हुई है।" अत वेदार्थ मे अध्यात्म विद्या के खोजको ने वैदिक शव्दो का विशेषार्थ प्रस्तुत किया। स्व० डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल स्वय भी इस नयी वैज्ञानिक प्रणाली से वेदार्थ और व्याख्या मे प्रवृत्त हुए। इस विधि से पुरुरवा-उर्वशी का अर्थ ही कुछ और हो जायगा। जो भी हो उर्वशी और पुरुरवा पर इतनी चर्चा यह प्रकट करती है कि इस मिथ को जो मिथ होने से पूर्व लोक-कहानी ही थी, समझने के आज तक जितने भी प्रयत्न हुए है वे पर्याप्त नही है। लोक भूमि पर लोक-मानस की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण इसमे नयी रुचि नये रूप-रग देकर नये बोध के योग्य बनाती रहती है। और नये-नये अर्थो की सभावना वनती जाती है।

इसीलिए लोकसाहित्य भी नया महत्त्व ग्रहण करता जाता है। उसका अध्ययन भी नयी अर्थवत्ता को जन्म देता है।

डॉ० मनोहर शर्मा ने अपने इन निवधो मे, जो इस सग्रह मे है, अपनी तरह से लोक और वेद, साहित्य और लोकसाहित्य के विविध तानो-वानो को गहरे पैठ कर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अनेको लोकगीत अनेको कहानियाँ, अनेको कहावते तथा अनेक लोकजीवन की वाते हमारे सामने

प्रश्न-चिन्ह बन कर आती है । उनमे से कुछ प्रश्नो को ही आधुनिक लोक-साहित्य विज्ञान की पद्धति से डॉ० शर्मा ने इस पुस्तक के निबन्धो मे खोजने और समाधान देने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है और उसमे भारतीय सस्कृति की महनीयता के भी दर्शन कराये है ।

राजस्थान की बातो मे भारतीय सस्कृति का तारतम्य भली प्रकार सिद्ध है । पर लोकभूमि राजस्थान और भारत की भौगोलिक सीमा मे घिर कर नही रह गयी हे । वह अनादि काल और अनन्त देश मे व्याप्त है । यह सकेत भी पद-पद पर हमे मिलते हैं ।

लोक और साहित्य दोनो के अध्येता के लिए डा० मनोहर शर्मा ने बहुत सी सामग्री इन निबधो मे प्रस्तुत कर दी है और प्रत्येक मे उनके विशद अध्ययन, गहरी पैठ और साहित्यिक सामर्थ्य की छाप है । प्रत्येक निबन्ध हमे लोकसाहित्य के गहन अध्ययन मे प्रवृत्त होने के लिए भी प्रेरित करता है ।

जयपुर
२१-७-७१.

सत्येन्द्र

———

लोके वेदे च–१

इस विषय मे पहिले विस्तारपूर्वक एव विविध उदाहरण सहित चर्चा की जा चुकी है कि जो कथासूत्र भारतीय जन-समाज मे वैदिक युग मे प्रचलित थे, ने आगे चलकर पौराणिक काल मे विकसित हुए और उनको अत्यधिक लोक-सम्मान प्राप्त हुआ। परन्तु यह प्रक्रिया यही समाप्त नही हुई। वे ही कथानक जनसाधारण मे अनेक प्रकार से रूपान्तरित होकर अब भी चालू है[1] और उनको खोज निकालना अत्यधिक आवश्यक होने पर भी साधारणतया सरल नही है क्योकि उनमे स्थानीय वातावरण के कारण विशेष रूप से परिवर्तन हो गया है। यहाँ इस विषय पर कुछ विस्तार से प्रकाश डालने की चेष्टा की जाती है कि जो रसमयी भावधारा वैदिक काल मे भारतीय प्रजा मे प्रवाहित थी वही आजकल गाए जाने वाले लोकगीतो मे भी रमी हुई है। लेख मे उदाहरण स्वरूप राजस्थानी लोकगीत प्रस्तुत किये जा रहे है।

१—सूर्य वन्दना

ससार के लिये सूर्य अपार शक्ति का स्रोत है। पृथ्वी पर मानव जीवन का विकास भी इसी महान् शक्ति का फल है। सूर्य विश्व की प्रेरक शक्ति है। सूर्य ससार को गति प्रदान करता है। इसी शक्ति केन्द्र से हमे क्रिया-शीलता प्राप्त

---

1 द्रष्टव्य, वरदा (वर्ष २ अक ४) मे लेखक का 'लोके वेदे च' शीर्षक लेख।

होती है। सूर्य प्रकाश देता है, जीवन देता है एव कर्म देता है। सूर्य प्रत्यक्ष देव है ('प्रत्यक्ष दैवत भानुः परोक्षं सर्व देवताः')। सूर्य की किरणे अनवरत रूप से शक्ति का विवरण करती रहती है। गायत्री मत्र मे बुद्धि को सत्पथ की की ओर प्रेरित करने के लिए सविता से प्रार्थना की जाती है। हम सविता से ज्ञान का प्रकाश पाते हैं। सूर्यवदना के मत्रो से वेदवाणी महिमामय है —

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य।
विश्वमाभासि रोचनम्॥
तत्सूर्य्यस्य देवत्वन्तन्महित्व मद्ध्याकर्तोर्वितत सञ्जभार।
यदेदयुक्तहरित सधस्थादाद्रात्री त्रासस्तनुते सिमस्मै॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूप कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्यपाज. कृष्ण मन्यद्धरित सम्भरन्ति॥
वरामहाँ असि सूर्य्यवडादित्य महा असि।
महस्ते सतोमहिमा पनस्यतेद्धा देव महा असि॥
वट् सूर्य्यश्रवसा महा असि।

सत्रा देवमहा असि मह्यादेवानामसुर्य पुरोहितो विभुज्तोतिरदाभ्यम्॥
श्रायन्त इव सूर्य्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रतिभागन्नदीधिम॥
अद्या देवा उदिता सूर्य्यस्य निरहस पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मा महतामदिति सिंधु पृथिवी उतद्यौ॥
आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यञ्च।
हिरण्येनसविता रथेनादेवे याति भुवनानि पश्यन्॥
(यजुर्वेद ३३/६६–४३)

राजस्थानी लोकगीतो मे सूर्य भगवान सम्बन्धी गीते बडे ही महत्वपूर्ण है। उनके 'बोल' एव 'सुर' दोनो ही अत्यन्त सरस एव मधुर हैं। उदाहरण के लिये यहाँ एक गीत दिया जाता है[1] :—

उगियो उगियो के करो सुहेल्यो ए,
उगियो राजा कासिव जी को पूत
सुहेल्यो ए उगियो राजा कासिव जी को पूत।

1 इस विषय मे विशेष जानकारी के लिए वरदा (वर्ष २ अक १) मे लेखक का 'राजस्थानी लोक गीतो मे सूर्यभगवान' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाडैं चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरचा है निसान।
काळा काळा के करो सुहेल्यो ए,
काळा राणी रैंणादे का केस,
सुहेल्यो ए, काळा राणी रैंणादे का केस।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाडैं चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरचा है निसान।
तीखा तीखा के करो सुहेल्यो ए,
तीखा राणी रैंणादे का नैण,
सुहेल्यो ए तीखा राणी रैंणादे का नैण।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाडैं चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाल,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरया है निसान।
धोळा धोळा के करो सुहेल्यो ए,
धोळा राणी रैंणादे का दात,
सुहेल्यो ए, धोळा राणी रैंणादे का दाँत।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,

गाय गुवाडं चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा वर घोरचा है निसान ।
राच्या राज्या के करो सुहेल्यो ए,
राच्या राणी रैंणादे का होठ,
सुहेल्यो ए, राच्या राणी रैंणादे का हाथ ।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाडं चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाल,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरचा है निसान ।
पीळो पीळो के करो सुहेल्यो ए,
पीळो राणी रैंणादे को गात,
सुहेल्यो पीळो राणी रैणादे को अग ।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाडं चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,
सुहेल्यो ए, बाबुल घर बाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरचा है निसान ।
रातो रातो के करो सुहेल्यो ए,
रातो राणी रैणादे को म्हैल,
सुहेल्यो ए, रातो राणी रैणादे को म्हैल ।
उगतो उजास बरणो,
आथमतो सिंदूर बरणो,
गाय गुवाडं चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सब साथ,

सुहेल्यो ए, वाबुल घर वाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरचा है निसान ।
हरियो-हरियो के करो सुहेल्यो ए
हरियो राणी रैंणादे को पी'र,
सुहेल्यो ए, हरियो राणी रैंणादे को पी'र ।
उगतो उजास वरणो,
आथमतो सिंदूर वरणो,
गाय गुवाडै चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सव साथ,
सुहेल्यो ए, वाबुल घर वाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरचा है निसान ।
लीलो लीलो के करो सुहेल्यो ए,
लीली राणी रैंणादे की सोक,
सुहेल्यो ए, लीली राणी रैंणादे की सोक ।
उगतो उजास वरणो,
आथमतो सिंदूर वरणो,
गाय गुवाडै चाली,
पछीडा मारग चाल्या,
नेम धरम सव साथ,
सुहेल्यो ए, वाबुल घर वाज्या है थाळ,
सुहेल्यो ए, सुसरा घर घोरचा है निसान ।

इस गीत की पहली कडी का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है—

वह उगा, वह उगा, इस प्रकार सहेलियो, क्या कह रही हो ?
राजा कश्यप का पुत्र उदित हुआ है,
हे सहेलियो, राजा कश्यप का पुत्र उदित हुआ है ।
यह उदित होते समय प्रकाश के रग वाला होता है,
यह अस्त होते समय सिंदूर के रग वाला होता है ।
गाएँ 'गुवाड' की ओर चल पडी हैं,
पक्षी अपने मार्ग मे उड चले हे,
सब लोग अपने नियम एव धर्म से युक्त हो गये हैं,
हे सहेलियो, पिता के घर आनन्द का थाल बज रहा है,
हे सहेलियो, श्वसुर के घर आनन्द का नगारा बज रहा है ।

यहाँ प्रभात कालीन वातावरण का सरल एव स्वाभाविक चित्रण है । लोकगीतो मे दाम्पत्य-जीवन की राग रहती है । इस गीत मे आगे सूर्य के विविध रगो का वर्णन करते हुए उनकी पत्नी रैंणादे (राज्ञी) के रूप सौंदर्य की महिमा गाई गई हे । गीत की प्रत्येक कडी के साथ 'टेक' की पूरी 'दुसरावण' है, जो इसमे अमृत-सचार करती है । साथ ही गाने वाली महिला अपनी 'पीहर' ('वाबुल वर वाज्या है थाल') एव 'ससुराल' ('सुसरा घर घोरचा है निसाण') सब प्रकार से सम्पन्नता की भी कामना करती है ।

असल मे सूर्यवन्दना का यह लोकगीत भारतीय प्रजा की वेदकालीन परम्परा की पवित्र देन है । वैदिक युग मे भारतीय जनसाधारण मे सूर्यवदना का पूरा प्रचार था । यह कार्यक्रम यहाँ के लोकजीवन का एक महत्वपूर्ण अग रहा है । आर्य जाति मे यही सस्कार अब भी काम कर रहा है । इसी पवित्र धारा मे रसमग्न होकर राजस्थान मे यह जनगीत गाया जाता है जो सर्वथा स्वाभाविक है ।

२—धरती माता

अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त (१२/१/१–६३) मे पृथ्वी की अत्यन्त प्रशस्त रूप मे वन्दना की गई है । साथ ही इस स्तोत्रगान मे सस्कृति के विकास का अनुपम विवरण भी है । मातृभूमि का ऐसा स्तुतिपाठ अन्यत्र मिलना कठिन है । जन्म देने वाली माता के समान धरती माता भी हमारा सब प्रकार से पोषण एव कल्याण करती है । इसलिये अत्यन्त श्रद्धा तथा गौरव के साथ मत्रद्रष्टा ऋषि ने कहा है—**"माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्या."** (१२) अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ । भारतीय जनसाधारण मे यही भाव यथावत् भरा हुआ है । राजस्थान मे प्रात काल पलग (या खटिया) से उठ कर पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व निम्न दोहा कहने की न जाने कब से प्रथा चली आ रही है —

धरती माता तू बड़ी, तो सम बडो न कोय ।
ऊठ सँवारी पग धरा बैकुँठवासो होय ॥

(हे धरती माता, तू सब से बडी है । तेरे से बडा अन्य कोई नहीं है । मैं प्रात काल उठ कर तुझ पर पैर रखता हूँ । मेरे इस अपराध को क्षमा करना और मुझे बैकुठ का वास देना ।)

पृथ्वी सब को धारण करने मे समर्थ है । वह सब का पालन करती है और स्वय क्षमाशील है 'क्षमा 'भूमिम्' (२६) राजस्थानी लोकसाहित्य मे पृथ्वी का यह गुण अत्यन्त प्रसिद्ध है । एक दोहा देखिए —

धरती जेहा भरणखा, नमणा जेहि केळि ।
मज्जीठा जिम रच्चणा, दई सु सज्जण मेळि ।।

वर्षाजल से पृथ्वी आप्लावित होती है और अपने पुत्रो को सब प्रकार के रस प्रदान करती है । वेदवाणी मे इन्द्र को पृथ्वी का पति कहा गया है । पृथ्वी इन्द्र की पत्नी है—'इन्द्र वृणाना पृथ्वी न वृत्रम्' (३७) अर्थात् पृथ्वी ने इन्द्र का वरण किया, वृत्रासुर का नही । 'भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे' (४२) अर्थात् पर्जन्य की पत्नी भूमि को प्रणाम है, जिसमे वृष्टि मेद की तरह भरी हुई है । राजस्थानी लोकगीतो मे यही भावधारा प्रवाहित है । महिलाओ द्वारा कार्तिक-स्नान के दिनो मे 'पथवारी' का गीत गाया जाता है । उसका प्रारम्भिक अश इस प्रकार है —

पथवारी माता पथ की ए राणी, भूल्या नै वाट बताय ।
भूल्या नै बाट बिछेड्या नै मेळो, विछड्या नै ल्याय मिलाय ।
पथवारी तू सीचै धरती माता, ज्यू इन्दर घर आय ।
पथवारी तू सीचै रैणादे, ज्यू सूरज घर आय ।
पथवारी तू सीचै गायतरी, ज्यू विरमा घर आय ।
पथवारी तू सीचै गोरादे, ज्यू ईसर घर आय ।
पथवारी तू सीचै गवतरी, ज्यू नाद्यो घर आय ।

इसी प्रसग मे राजस्थानी जनकाव्य 'निहालदे' की निम्न पक्तियाँ भी द्रष्टव्य है—

तू क्यू ए धरती ए माता उणमणी जी,
थारै इदर सरीसा, इँदर सरीसा भरतार,
तू क्यू ए धरती ए माता उणमणी जी ।
धरती कै सोवै जी हरयिा जी कापडा जी,
को ईँद राजा सिर, इँद राजा ओ सिर पिचरग पाघ,
धरती कै सोवै जी हरिया कापडा जी ।

इस प्रकार पृथ्वी का मातृत्व भारतीय प्रजा के रोम-रोम मे रमा हुआ है —
'नमो नमो म्हारी धरती मात नै, जा पर आय उतरिया ।'

(जनकवि सत लिखमजी)

३–लोक जीवन का आदर्श

वेदकालीन भारत के लोकजीवन का आदर्श इस प्रकार उद्घोषित हुआ है —

आब्रह्मन्, ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आराष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनु, वोढानड्वान, आशु सप्ति, पुरन्धिर्योषा;
जिष्णुरथेष्ठा, सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे न पर्ज्जन्यो वर्षतु ।
फलवत्यो न ओषधय पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो न कल्पताम् ।

(यजु० २२ / २२)

भारतीय लोकजीवन के इस वैदिक आदर्श मे सब प्रकार के सामर्थ्यवान्, सौहार्दपूर्ण एव सम्पन्न होने की कामना प्रकट की गई है । यह सुख-शान्ति भारतीय प्रजा ने काफी समय तक अनुभव की है । इस सम्बन्ध मे 'पारिक्षिती गाथाएँ' विशेष रूप से ध्यान मे रखने योग्य है —

राज्ञो विश्वजनीनस्य या देवोमर्त्यां अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षित ॥
परिच्छिन्न क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन् ।
कुलाय·कृण्वन्कौरव्य पतिर्वदति जायया ॥
कतरत्तआ हराणि दधि मन्था परि श्रुतम् ।
जाया पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञ परिक्षित ॥
अभीव स्व प्रजिहीते यव पक्व पथो बिलम् ।
जन स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञ परिक्षितः ॥

(अथर्व० २० / १२७ / ७–१०)

(उस राजा परिक्षित् की, जो सारे जन का स्वामी है, जो देवतारूप है और मनुष्यो मे बढकर है, सुन्दर स्तुति सुनो जो उसकी सब प्रजाओ को प्रिय है ।

'राज्य के आसन पर विराजते ही परिक्षित् ने, जो सबमे गुणवान है, ऐसा योगक्षेम किया जैसा पहले कभी नही हुआ था ।' यह वाक्य कुरुदेश का निवासी एक पति घर बसाते समय अपनी पत्नी से कहता है ।

'दही, दूधिया सत्तू और आसव इनमे से आपके लिए क्या लाऊँ ?' यह परिक्षित् राजा के राज्य मे पत्नी अपने पति से पूछती है ।

गले से निगरता हुआ जौ आकाश मे सूर्य की ओर जैसे वढता है, ऐसे ही परिक्षित् राजा के राष्ट्र से सुख मे सब जन वढते हैं।[1])

इन गाथाओ मे भारतीय गृहस्थ की सुख-समृद्धि का पति-पत्नी के वार्तालाप के रूप मे सुन्दर वर्णन किया गया है। गृहस्थ जीवन का ऐसा सम्पन्न एव सौहार्दपूर्ण वातावरण अतीव श्लाघ्य है। इसी प्रसग मे बौद्ध-कालीन भारत के धनिय नामक गोप के उद्गारो की ओर ध्यान जाता है जिनमे उसने अपने गार्हस्थ्य जीवन की सर्व-सम्पन्नता से निश्चित होकर वृष्टि के अधिष्ठाता इन्द्र को निर्भयतापूर्वक सम्बोधन किया है (सुत्तनिपात, उरगवग्ग, धनिय सुत्त)। भारतीय लोकजीवन का यही आदर्श अब भी राजस्थानी लोक-गीतो मे प्रकाशमान है, जो यहाँ के 'बधावा' गीतो मे द्रष्टव्य है। 'बधावा' गीतो की सख्या वडी है और ये गीत मागलिक अवसरो पर निश्चित रूप से महिलाओ द्वारा गाये जाते हैं। इन गीतो मे लोकजीवन की सुख समृद्धि का अति प्राचीन भारतीय आदर्श व्याप्त है। उदाहरण के लिये एक बधावा गीत पर प्रकाश डाला जाता है—

सुणो जी भँवर म्हानै सुपनो सो आयो जी राज,
सुपनै रो अरथ बतावो जी राज।
कहो ए गोरी थानै किण विध आयो जी राज,
म्हे थानै अरथ वतावा जी राज।
हस सरवर ढोला गूजत देख्यो जी राज,
मानसरो म्हारो जळ भरचो राज।
वागा मायला चपल्या म्हे फूलत देख्या जी राज,
फूल वीणै दोय कामणी राज।
पोल्या मायला हसती म्हे हीसत देख्या जी राज,
हरी हरी दूव घोडा चरै राज।
आगणिया रो चोक म्हे पूरत देख्यो जी राज,
ऊपर कुभ कलस धरचो राज।
महला मायलो दिवलो म्हे जगतो सो देख्यो जी राज,
दिवलै री जोत सवाई जी राज।
हस सरवर गोरी पी'र तुमारो जी राज,
मानसरो थारो सासरो राज।

---

1 नागरी प्रचारिणी पत्रिका के विक्रमाक (पूर्वार्द्ध) मे प्रकाशित डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत हिन्दी रूपान्तर साभार प्रस्तुत किया गया।

वागा मायला चपल्या वै वीर तुमारा जी राज,
फुलडा वीरणै थारी भावजा राज ।
पोळया मायला हस्ती देवर जेठ तुमारा जी राज,
हरी हरी दूब सुवासणी राज ।
आगणियाँ रो चोक बो कँवर तुमारो जी राज,
कु भ कळस थारी कुळ बहू राज ।
महला मायलो दिवलो वो कथ तुमारो जी राज,
दिवलैरी जोत सायवाणी जी राज ।
धन धन जी सुसराजी रा छावा जी राज,
सुपनै रो अरथ भलो दियो राज ।
धन धन ए साजनिया री जायी जी राज,
सुपनै रो अरथ भलो लियो राज ।
(रूप की रोळी सुहाग की पूडी जी राज,
पूत जण्यो म्हारो घर भरचो राज ।)

[हे प्रियतम, मैने स्वप्न देखा है । आप उस स्वप्न का अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

हे गोरी, तुमने क्या स्वप्न देखा है ? मै उसका अभिप्राय प्रगट कर दूंगा ।

हे प्रियतम (ढोला), हस की वाणी से गू जता हुआ मैने सरोवर देखा । इसके साथ ही जल से परिपूर्ण मानसरोवर भी मैने देखा है ।

मैने वाग मे चम्पक वृक्षो को फूले हुए देखा है । वहाँ दो कामिनियाँ पुष्पचयन करती हुई देखी ।

मैने दरवाजे पर हाथी हीसते हुए देखे । इनके अतिरिक्त हरी दूब चरते हुए घोडे देखे ।

मैने आगन मे चोक पूरा हुआ देखा । उस चोक के ऊपर मागलिक कलश रखा हुआ था ।

मैंने महल मे दीपक को प्रकाश फैलाते हुए देखा । उस दीपक की ज्योति वहुत अधिक (सवाई) थी ।

हे गौरी, हस की वाणी से गु जायमान सरोवर तुम्हारा पीहर है और मानसरोवर तुम्हारी ससुराल है ।

वाग के चम्पक वृक्ष तुम्हारे वीर भाई है और पुष्पचयन करने वाली कामिनियां तुम्हारी भौजाइयां है ।

दरवाजे पर हीसने वाले हाथी तुम्हारे देवर जेठ है और हरी दूव 'सुवासरणी' (वुआ, वहिन, बेटी, भानजी आदि) है। (वे घोडे इनके पति है)

आँगन का चौक पुत्र है और वह कलश तुम्हारी कुलवधु है।

महल का दीपक तुम्हारा पति है और उसकी ज्योति तुम स्वय हो।

हे प्रियतम (श्वसुर के पुत्र), आपको बारम्बार धन्य है। आपने स्वप्न का अर्थ भली प्रकार समझा दिया है।

हे प्रियतमे (सज्जनो के घर की पुत्री), तुमको अनेकश धन्यवाद है कि तुमने इस स्वप्न के अभिप्राय को हृदय मे धारण कर लिया है।

(तुम रूप की रोली एव सुहाग की पुडिया हो। तुमने पुत्र को जन्म देकर हमारे घर को सव प्रकार से सम्पन्न बना दिया है)

यह लोकगीत जिस मस्तिष्क की उपज है, निश्चय ही उसका सास्कृतिक ज्ञान एव साहित्यिक प्रतिभा असाधारण रही है। इसमे भारतीय सस्कृति का सारतत्त्व समेट कर एकत्रित कर दिया गया है। पूरा गीत पति पत्नी के वार्तालाप के रूप मे है जिससे इसकी रसधारा अत्यन्त सुमधुर वन गयी है। गीत के पूर्वार्द्ध मे कुछ चित्रात्मक प्रतीक हैं और इसके उत्तरार्द्ध मे उन प्रतीको का स्पष्टीकरण किया गया है। प्रतीको का चित्र विधान अत्यन्त मनोरम है। हसवाणी से गूजता हुआ सरोवर, निर्मल जल से परिपूर्ण मानसरोवर, उद्यान के विकसित चम्पक वृक्षो के पास पुष्पावचयन करती हुई दो युवतियाँ, द्वार के पास हीसते हुए हाथी, हरी दूव के मैदान मे चरते हुए अश्व, आगन मे 'पूरे हुए चौक' पर स्थापित कलश, महल मे प्रकाश विस्तीर्ण करता हुआ दीपक आदि ऐसे चित्र है जिनकी मोहकता के सम्बन्ध मे जितना कुछ लिखा जाय थोडा है। ये चित्र भारत की विविध कलात्मक सामग्री मे अनेकश प्रकट हुए है और उनके उदाहरणो को यहाँ स्थानाभाव के कारण प्रस्तुत किया जाना सम्भव नही है।

गीत के प्रतीको मे भारतीय सस्कृति मानो अपने मुख से वोल रही है। हसवाणी से गुजायमान सरोवर एव निर्मल जल से पूर्ण मानसरोवर भारतीय प्रजा की ज्ञान साधना एव आध्यात्मिक उन्नति के प्रतीक है। गीत मे इनको गृहिणी का पीहर एव ससुराल वतलाया गया है। विकसित चम्पक और उनके पास पुष्पचयन करने वाली युवतियाँ भारत की श्री सम्पन्नता के द्योतक है। गीत मे इनको गृहिणी के भाई-भावज कहा गया है। हीसते हुए हाथी एव घोडे स्पष्ट ही शक्ति एव सामर्थ्य के चिन्ह है। गीत मे इनको देवर जेठ तथा दामाद आदि का रूप दिया गया है। हरी दूव पुष्पवृद्धि का स्पष्ट लक्षण है, इसे वहिन-भानजी आदि के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

आँगन मे 'पूरा हुआ चौक' और उस पर स्थापित कलश शुद्धाचरण एव निष्ठा के परिचायक है। इनको गीत मे पुत्र एव पुत्रवधू बतलाया गया है। अन्त मे दीपक और उसकी ज्योति को पति एव पत्नी कहा गया है जो स्पष्ट ही तपस्या एव लोकोपकार की ओर सकेत करते है। पारिवारिक सम्बधो को प्रकट करने के लिए ऐसे प्रतीको का चुनाव करना असाधारण प्रतिभा का ही फल हो सकता है।

इस गीत के द्वारा एक ऐसे पारिवारिक आदर्श का चित्रण किया गया है, जिसमे ज्ञान एव शाति की उपासना है, जहाँ धनधान्य की परिपूर्णता है, जिसमे सामर्थ्य एव शक्ति भरपूर है, जो सर्वथा विशुद्ध एव उन्नतिशील है और सब के ऊपर जिसका पारस्परिक सौहार्दभाव है। गीत के प्रतीको का स्पष्टीकरण पारिवारिक सम्बन्धो के रूप मे प्रस्तुत किये जाते समय, इन सब बातो की ओर अपने आप ध्यान चला जाता है। इस प्रकार प्रकट होता है कि इस गीत मे मानो स्पष्ट ही वेदमत्रो की आत्मा बोल रही है। गीत का स्वप्न भी एक प्रतीक ही है जो भारतीय लोकजीवन के आदर्श का द्योतक है। इस स्वप्न को सच्चा करने मे ही जीवन की सार्थकता है और यही भारतीय सस्कृति का अमर सदेश है। यह लोक गीत वस्तुत भारत के समस्त लोक गीतो का राजा है।[1]

४. विराट भावना

भारतीय लोकमानस की विराट् भावना वैदिक काल मे इस प्रकार प्रकट हुई—

यदा त्वष्टा व्यतृणत्पिता त्वष्टुर्य उत्तर।
गृह कृत्वा मर्त्य देवा पुरुषमाविशन्॥
पाप्मानो नाम देवता ...॥

1 इस लोकगीत के मालवी रूपान्तर मे रनादेवी (सूर्य–पत्नी) अपने पति से स्वप्न मे देखी हुई चौदह चीजो का अभिप्राय पूछती है। सूर्यदेव उसके स्वप्न का अभिप्राय इस प्रकार प्रकट करते है–"मानसरोवर पिता है, भरापूरा भडार श्वसुर है, बहती गगा माता है, भरी-पूरी बावडी सास है, सावन की तीज बहिन है, कडकती बिजली ननद है, गोकुल का कन्हैया भाई है, तलफता बिच्छू देवर है, गुलाब का फूल पुत्र है, चमकता दीपक दामाद है, आँगन का केला कन्या है। बाड की बाँझ ईख दासी है, पीले वस्त्रवाली स्त्री सौत है और उगता हुआ सूर्य पति है।" कहना न होगा कि गीत के इस रूपान्तर मे कई चीजे ऊपर की मिल गई हैं, जिनके कारण इसका वातावरण सर्वथा सौहार्दपूर्ण नही रहा और इस प्रकार यह रूपान्तर भारतीय लोकजीवन के आदर्श तक नही पहुँच सका।

स्तेय दुष्कृत वृजिन सत्य यज्ञो यशो वृहत् ।
बल च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ।।
भूतिश्च वा अभूतिश्च ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ।।
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीर श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ।।
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
आनन्दा मोदा प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।।
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीर ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापति ।।
सूर्यश्चक्षुर्वात प्राण पुरुषस्य वि भेजिरे ।।
तस्माद्वै विद्वान्पुरुषमिद ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ।।
(अथर्व वेदे ११/८/१८-२४/३०-३२)

यही विराट् भावना भारतीय लोकगीतो मे अब भी प्रकट है। मालवा मे गाया जाने वाला एक लोकगीत इस प्रकार है—

शुक्र को तारो रे ईश्वर ऊँगी रह्यो,
तेकी मख टीकी घडाव ।
ध्रुव की बादलई रे ईश्वर तुली रही,
तेको मख तहबोल रगाव ।
सरग की बिजलई रे ईश्वर कडकी रही,
तेकी मख मगजी लगाव ।
नव लख तारा रे ईश्वर चमकी रह्या,
तेकी मख अगिया सिलाव ।
चाँद सूरज रे ईश्वर ऊँगी रह्या,
तेकी मख टीकी लगाव ।
वासुकी नाग रे ईश्वर देखइ रह्यो,
तेकी मख वेणी गुथाड ।
बडी हठ वालइ रे गौरल गोरडी ।।

जनपद (वर्ष १ अक २) मे इस गीत को रनुदेवी और उनके पति सूर्य के वार्तालाप के रूप मे प्रस्तुत किया है परन्तु इसके 'ईश्वर और गौरल' शब्दो से स्पष्ट होता है कि यह गीत 'शिव-पार्वती' के संवाद के रूप मे है ।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस गीत के सम्बन्ध मे लिखा है—"छ चौपाइयो के इस छोटे से लोकगीत मे स्वर्ग से पाताल तक के उपकरणो को गूँथ कर विराट् कल्पना की गई है। हठीली और वर्ण की गोरी पत्नी शुक्र नक्षत्र की विन्दी, उत्तर दिशा की वदली की चूनरी जिसमे स्वर्ग मे कडकने वाली विजली की मगजी टकी है, नौलख तारो से चमकती हुई अगिया जिसमे सामने चन्द्र और सूर्य की टिकुली जडी है, पहनने की अभिलाषा करती हे, और यही नही, वासुकि नाग से अपनी वेणी गूँथना चाहती है। पर उत्तर मे पति इतना ही कहता है, 'हे गर्वीली गोरी, तू वडी हठीली है।' ससार मे किसी भी कवि के लिये इस प्रकार की उदात्त कल्पना गौरवास्पद समझी जायगी।"

इस लोकगीत मे देव-दम्पत्ति का वार्तालाप है। मनुष्य अपने इष्टदेवो को अपना सा रूप देकर वडा सुख मानता है। लोकगीतो मे तो यह भावना जगह-जगह प्रकट हुई है। राजस्थी लोकगीतो मे यही भावना जनसाधारण के सम्वन्ध मे अनेकश दृष्टिगोचर होती है। यहाँ के गीतो मे विराट् कल्पना के चित्र वडे ही महत्वपूर्ण हे। जनसाधारण के मन की इतनी ऊँची उडान वास्तव मे चित्ताकर्षक है। मानव हृदय का प्रकृति के साथ सदा से एकात्म्य रहा है। इस अविच्छिन्न सम्वन्ध को लोकगीतो मे दिव्य प्रकाश मिला है। यहा राजस्थानी लोकगीतो के कुछ अश इस विषय मे प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१)

वनडी थारै ए घूँघटिए रै कारणै,
कजळी देसा रा हसती ल्याया,
म्हारी रजवण, घूँघटियो हीरा जड्यो,
हीरा ए जड्यो मोत्या जड्यो,
थारै घँघटिए मैं सोळा सूरज ऊग्या,
म्हारी रजवण, घूँघटियो हीरा जड्यो,
थारै घूँघटिए मे चान्द पवास्या,
म्हारी रजवण, घूँघटियो हीरा जड्यो,
(दुलहिन, तुम्हारे घूँघट मे हीरे जडे है,
तुम्हारे घूँघट मे हीरे जडे है और मोती जडे है,
तुम्हारे घूँघट मे अनेको सूर्य उदित है,
तुम्हारा घूँघट हीरो से जडा हुआ है,
तुम्हारे घूँघट मे अनेको चन्द्रमा प्रकाशमान है,

तुम्हारा घूँघट हीरो से जडा हुआ है,
तुम्हारे इस घूँघट के कारण,
मै तुम्हारे लिए कजली देश के हाथी लाया हूँ ।)

(२)

हाँ जी बना, हसती थे भल ल्याय,
घुडला रँ घमकै आज्यो जी,
हाँ हाँ जी करला रँ रळकै आज्यो जी ।
हाँ जी बनाँ, अम्मर को घाघरो सिमवाय,
धरती की लावण द्याद्यो जी,
हाँ हाँ जी, धरती की लावण द्याद्यो जी ।
हाँ जी बना, तारा की चूनडी रगाय,
विजळी को गोठ कराद्यो जी,
हाँ हाँ जी, बिजली को गोठ कराद्यो जी ।
(बना, तुम अपने साथ हाथी लाना,
तुम घोडो को नचाते हुए आना,
तुम ऊँटो को दौडाते हुए आना ।
मेरे लिए आकाश का घाघरा बनवाना,
उस घाघरे मे धरती की लावण लगवाना,
बनाँ, उस घाघरे मे धरती की लावण लगवाना ।
मेरे लिए तारो की चूनडी तैयार करवाना,
उस चूनडी के विजली का गोठ करवाना,
बना, उस चूनडी के विजली का गोठ करवाना ।)

(३)

सुलतान भात मेरै ल्याइए ।
हसती भी ल्याइए वीरा, घुडला भी ल्याइए,
तो ढोला रँ ढमकै आइए ।
अम्मर वरणो वीरा, ल्याइए घाघरो,
तो धरती की लावण लगाइए ।
तारा वरणी वीरा, ल्याइए चूनडी,
तो विजली की कोर लगाइए ।

(भाई सुलतान, मेरे लिए भात का दस्तूर लाना,
भाई, तुम हाथी लाना, घोडे लाना,
तुम नगाडे बजाते हुए आना।
भाई, मेरे लिए आकाश का घाघरा लाना,
उस घाघरे के धरती की लावरण लगवाना।
भाई मेरे लिए तारो की चूनडी लाना,
उस चूनडी के विजली की कोर लगवाना।)

यहाँ राजस्थानी लोकगीतो मे विराट् कल्पना सम्वन्धी तीन अश प्रस्तुत किये गये है। पहले अश मे दुलहिन का प्रसग है। यह 'वनडी' नामक गीत है। गीत मे दुल्हे ने अपने उद्गार प्रकट किये हैं। दूसरे अश मे दुल्हे का प्रसग हैं। यह 'वनडा' नामक गीत है। इसमे दुलहिन ने अपने उद्गार प्रकट किये है। तीसरे अश मे भाई वहिन का सम्वन्ध है। मामेरे का प्रसग उपस्थिति है। वहिन अपने भाई सुलतान से इच्छित वस्तु मागती है। राजस्थानी जनकाव्य मे 'निहालदे' एव सुलतान की कथा वडी लोकप्रिय है। यह गीत उसी जन-कथा से सम्वन्धित है।

इन सभी गीताशो मे जो विराट कल्पना की गई है वह मानव मन को बहुत ऊँचा उठा देती है। मनुष्य का मन उसकी अभिलाषा के अनुसार तैयार होता है। मन की महत्ता मानव जीवन को महत्व देती है। राजस्थानी लोकगीतो मे मानव मन की यह महत्ता मनन करने योग्य है। प्रथम गीताश मे नववधू के मुख पर अनेको (द्वादश आदित्य से भी अधिक सोलह) सूर्यो का तेज प्रकट होना बतलाया गया है जो उसके शक्तिरूप की अपार तेजस्विता की ओर सकेत है। इसके साथ ही उसके मुख पर अनेको चन्द्रमा प्रकाशित बतलाए गये है जो उसकी अनत सौम्यता का प्रदर्शन करते है। दूसरे एव तीसरे गीतो मे वे तत्व है जो ऊपर दिये गये मालवी लोकगीतो मे प्रकट है। तीसरे गीत मे विराट भावना के साथ भाई-वहिन के अगाध स्नेह की ओर सकेत है।

यही विराट भावना आत्मज्ञान का सार तत्व है। इसे धारण करके मानव आत्मा कहती है–"समुद्रो अस्मि विधर्मणा" अर्थात् सीमाहीन महासमुद्र मै ही हूँ (अथर्ववेद, १६–३–६)

लोके वेदे च–२

भारतीय लोकसाहित्य की परम्परा अति प्राचीन है। विविध वैदिक प्रसग पुराणो मे विकसित होकर प्रकट हुए है। वेदो मे सफल जीवनयात्रा के लिए जो मार्ग प्रदर्शित किया गया है, पुराणो मे उसी पथ का समुचित अनुसरण करने वाले चरित्र चित्रित हुए हैं। इस प्रकार पुरातन एव उच्च सिद्धान्तो ने सजीव चित्रो का रूप धारण करके जीवन और ज्योति का प्रकाशन किया है जो सर्व साधारण के लिए वडा उपयोगी एव महत्वपूर्ण है। इससे हमारे पुराणो का गौरव वहुत ऊँचा हो जाता है। परन्तु यह प्रक्रिया यही समाप्त नही हुई। अति प्राचीन अनुश्रुतियाँ भारत के लोक जीवन मे प्रवेश करके यहाँ की प्रजा के लिए पथप्रदर्शन का कार्य भी करती चली आ रही है। युग युग के इस सक्रमण से स्थान एव काल के अनुसार भारतीय अनुश्रुतियो मे रूप परिवर्तन भी हुआ है। जो स्वाभाविक है। यही कारण है कि भारत के एक निरक्षर प्रजाजन के ज्ञानकोष मे भी कई वस्तुएँ ऐसी प्राप्त होती है जिनका सम्वन्ध वेदकालीन परम्परा से जुडा हुआ मिलता है। यह भारतीय जनजीवन एव लोकसस्कृति की महिमा है। विपय को स्पष्ट करने के लिए आगे कुछ उदाहरण इस दिशा मे प्रस्तुत किए जाते हैं। इनमे राजस्थान की लोककथाओ पर विचार किया गया है।

१–पुरूरवोर्वशी

स्वर्गीय प० सूर्यकरणजी पारीक ने अपनी "राजस्थानी वार्ता"

नामक पुस्तक मे "पाबूजी री बात" प्रकाशित की है। इस बात (कहानी) मे पाबूजी के जन्म का प्रसग निम्न रूप मे दिया गया है —

"धाधळजी महेवे रहै सु अै उठे सू छोड अर अठे पाटण रे तळाव आय उतरिया। अठे तळाव ऊपर अपछरा उतरै। ताहरां धांधळ अपछरावां देख नै एके अपछरा नु आपड (पकड) राखी। ताहरा अपछरा बोली। कही—बडा रजपूत, तै बुरी कीवी, मने अपछरा ने अपडनी न हुती। तठे धाधळजी कही, जू तू म्हारे घर-वास रह। तद अपछरा बोली। कही—जे थां म्हारो पीछो सँभाळियो (देखा) तो हू (मै) था सू परी जाईस। ताहरा धांधळ कही—थारो पीछो कोई सभाळा नही। अै बोल (वचन) कर नै रह्या अर उठै पाटण सू चालिया सू अठे कोळू आया।

"अठे आगे पमो घोरधार राज करै। ताहरां धाधळ पमे पास तो न गयो अर कोळू आय गाडा छोडिया तठे रहता अपछरा रे पेट रा दोय टाबर (बच्चे) हुवा एक बेटी तै रो नाव सोना, अर एक बेटी तै रो नाव पाबू। तद अपछरा रो मोहल (महल) एकायँत कीयां। उठे अपछरा रहै। धाधळजी अपछरा री बारी रे दिन आप जावै। तद एके दिन धाधळजी विचारी, जू देखा अपछरा कही हती जू म्हारो पीछो सँभाळ मती, सू आज तो जाय देखीस, देखा का सू करै छै।

"तद पाछले पोहर रो धाधळ अपछरा रे मोहल गयो। ता पछे आगे अपछरा सिंघणी हुई छै अर पाबू सहजे सिंघणी नू चूघै (स्तनपान करना) छै। तद धाधळ दीठो। इतरे अपछरा फेर आपरो रूप कीयो, पाबू मिनख हुवो। तद धाधळ मोहल भीतर गयो। ताहरा अपछरा कही —राज, म्हा था सू कवल (प्रतिज्ञा) कियो हतो जू जेही दिन पीछो सभाळियो तेही दिन हू था सू परी जाईस, सू आज दिन था पीछो सँभाळियो छै सू म्हे जावा छा। इतरी कह नै अपछरा उडी सू पाधरी (सीधी) आकाश चढ गई। धाधळ देखतो ही ज रह्यो।"

इस प्रसग मे धाधळजी राठौड तथा अप्सरा के परिणय और इसके फलस्वरूप पाबू एव सोना के जन्म का जिक्र है। यह देवता और मानव का सम्बन्ध है। मनुष्य और अप्सरा के विवाह की यही कहानी राजस्थान के अन्य लोक-विश्रुत चरित्रो के साथ भी जुडी हुई है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए एक राजस्थानी लोक-कथा का सार और प्रस्तुत किया जाता है—

किसी समय धाघू (जिला चूरू) राजा घघ के विशाल एव शक्तिशाली राज्य की राजधानी था। वहाँ राजा घघ का एक रमणीक उद्यान था जिसमे

काच का बना हुआ एक सरोवर था[1] । इस उद्यान मे किसी भी बाहरी आदमी का प्रवेश निषिद्ध था । एक बार पता नही किस प्रकार एक साधु ने आकर वहाँ अपना आसन जमा लिया । माली लोक उसके प्रभाव से डर गए । साधु को उद्यान मे जमे कई दिन निकल गए । न वह किसी के पास जाता था और न कोई उसके पास आता था । ऐसी स्थिति मे मालीगण चकित था कि आखिर साधु खाता क्या है ?

अन्त मे साधु के सम्बन्ध मे पूरी सूचना राजा घघ को दी गई । राजा ने भी साधु के लिए कोई विशेष आज्ञा नही दी । वह स्वय रात के समय साधु के विषय मे पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए उद्यान मे पहुचा और कुछ दूरी पर एक पेड के पीछे छिप कर बैठ गया । साधु अपने आसन पर ध्यान मे लीन बैठा था । आधी रात का समय हुआ और उस स्थान पर प्रकाश फैल गया । आकाश से एक विमान आकर साधु के सामने उतरा । उसमे से कुछ अप्सराएँ निकली और एक बडा सा थाल लेकर साधु के सामने रख दिया । साधु थाल मे से भोजन करने लगा और अप्सराएँ स्नान करने के लिए सरोवर मे चली गई ।

राजा छिपे तौर पर सब लीला देख रहा था । अब वह साधु के सामने उपस्थित हुआ और उसके चरण छुए । साधु ने अपने थाल मे से कुछ उठा कर राजा को भी खाने के लिए दिया । राजा ने वह पदार्थ अपने मुख मे डाला । उसने ऐसा स्वादिष्ट भोजन आज तक कभी नही खाया था । यह स्वर्गीय पदार्थ था । राजा धन्य हो गया कि उसकी राजधानी मे ऐसी विभूति ने पधारने की कृपा की है । वह साधु के सम्मुख हाथ जोडे खडा रहा । साधु ने राजा से पूछा—बच्चे, और तुम्हारी क्या इच्छा है ? राजा ने निवेदन किया—महाराजा यदि आपकी कृपा है तो इन अप्सराओ मे से एक मुझे अपनी रानी के रूप मे प्राप्त हो । साधु ने उसे कहा कि यदि सरोवर मे स्नान करते समय वह उनके वस्त्र ले ले तो उसे अप्सरा मिल सकती है । राजा तत्काल वहाँ से सरोवर पर गया और आँख बचाकर अप्सराओ के वस्त्र उठाकर साधु के पास ले आया ।

स्नान के बाद अप्सराएँ सरोवर से निकली तो उनको अपने वस्त्र नही मिले । वे भीगे कपडो मे साधु के पास आई । वहा राजा उनके कपडे लिए हुए बैठा था । परन्तु साधु के प्रभाव से वे राजा को कुछ भी नही कह सकी ।

---

1 इस समय घाघू एक छोटा सा गाव है और उसके पास काचाणी नामक एक तलाई भी है ।

साधु ने राँजा की इच्छा उनको कह सुनाई। अन्त मे तय हुआ कि राजा अपनी इच्छानुसार उनमे से किसी एक का हाथ पकड ले और वही उसकी रानी होकर रह जायेगी। राजा जिस अप्सरा को सर्वश्रेष्ठ समझ कर उसके पास जाता, वही कुरूप प्रकट होती। अन्त मे उसने आँखे बन्द करके किसी एक अप्सरा का हाथ पकड लिया। वही राजा के पास ठहर गई और अन्य सभी अपने वस्त्र लेकर विमान से आकाश मे उड गईं। अप्सरा ने राजा के सामने यह शर्त रखी कि बिना सूचना दिये वह कभी भी उसके महल मे कभी प्रवेश नही करेगा। राजा ने यह शर्त स्वीकार की और वह अप्सरा रानी को लेकर अपने महल मे आ गया। दूसरे दिन साधु भी राजकीय उद्यान छोडकर चला गया।

अप्सरा रानी का महल अलग था। राजा शर्त के अनुसार उसके पास जाता इस प्रकार काफी समय निकल गया और उसके एक पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्र का नाम था 'हरस' और पुत्री का नाम था 'जीरण'।

एक दिन राजा ने अपने मन मे सोचा कि अप्सरा रानी की शर्त के रहस्य का पता लगाना चाहिए और वह बिना पूर्व-सूचना दिए उसके महल मे चला गया। राजा ने वहाँ देखा कि एक सिंहनी लेटी है और दो बच्चे उसका स्तनपान कर रहे है। राजा को देखते ही सिंहनी अप्सरा के रूप मे बदल गई और बच्चो ने भी मानवाकृति धारण कर ली। अप्सरा रानी ने राजा से कहा—आज मेरी शर्त टूट गई है, अत मै अपने स्थान को जा रही हू। उसने तत्काल अपने दोनो बच्चो को उठाया और आकाश मे उड गई। राजा घघ देखता ही रह गया।

अप्सरा ने कुछ दूर जाकर एक पर्वत शिखर पर 'हरस' को छोड दिया और दूसरे पर 'जीरण' को रख दिया। इस समय वह गर्भवती भी थी। उसने अपने पेट का शिशु निकाला और उसे एक अन्य पर्वत-शिखर पर छोड दिया। फिर अप्सरा आकाश मे उड गई। समय पाकर राजा घघ की ये तीनो अप्सरा गर्भ-सभूत सताने ही "हरस का भैरव" "जीरणमाता" एव "आसावरी" के नाम से लोक-पूजित हुई।[1]

अप्सरा और मानव के सम्बन्ध की इन प्रणय-कथाओ मे निम्न बाते विशेष ध्यान देने की है।

१　स्वर्ग की अप्सराओ का पृथ्वी के सरोवर मे स्नान के लिए आना।

1　इस विषय की जानकारी के लिए वरदा के प्रथम वर्ष का चतुर्थ अक दृष्टव्य है।

२ किसी प्रकार वशीभूत होकर अप्सरा का मनुष्य की रहना स्वीकार करना ।

३ अप्सरा और मनुष्य के परिणय के लिए कुछ शर्त का रखा जाना ।

४. इस परिणय के फलस्वरूप सतान का पैदा होना ।

५ किसी कारण से शर्त का टूटना और फिर अप्सरा का स्वर्ग लौट जाना ।

६ अप्सरा का निर्मोही होना एव मनुष्य का मोह-ग्रस्त रहना ।

७ अप्सरा से उत्पन्न हुई मानव सतान का लोक-प्रतिष्ठित एव जन-सम्पूजित होना ।

असल मे अप्सरा और मनुष्य के प्रणय की ये राजस्थानी लोक-कथाएँ "पुरूरवा एव उर्वशी" की प्रेमकथा के रूपान्तर है जो हमारे देश मे अति प्राचीन काल से लोक प्रचलित है । ऋगवेद (१० ६५) मे इस प्रणय–कथा की चर्चा है । इसी प्रकार यह प्रसग शतपथ ब्राह्मण (६ १) मे भी उपस्थित है । परन्तु विष्णु पुराण मे यह प्रेमकथा विकसित रूप मे दी गई है, जिसका सार निम्न प्रकार से है–

नृपति पुरूरवा ने अप्सरा उर्वशी के रूप-माधुर्य पर मुग्ध होकर उससे प्रणय की याचना की । उर्वशी स्वय पुरूरवा पर मुग्ध थी परन्तु उसने नृपति का पत्नीत्व स्वीकार करने के लिए कुछ शर्ते प्रस्तुत की। पहली शर्त यह थी कि राजा उसके साथ के दो मेषशिशुओ (मेपनो) को उसकी शय्या से कभी अलग नही कर सकेगा । दूसरी शर्त राजा उसके सामने कभी नग्न रूप मे प्रकट नही होगा । तीसरी शर्त यह कि वह सदैव घी का ही भोजन करेगी । पुरूरवा ने उर्वशी की सभी शर्तें स्वीकार करली और वे दोनो पति पत्नी के रूप मे रहने लगे ।

इस प्रकार कुछ समय बीता । परन्तु गधर्वों को यह प्रणय पसन्द न था । उन्होने एक रात छल से एक मेष-शिशु का अपहरण कर लिया । इस पर उर्वशी ने कातर पुकार की । पुरूरवा तत्काल अपनी शय्या से उठ कर दौडा । इस समय वह नग्न था विश्ववासु ने आकाश मे तीव्र प्रकाश फैला दिया और पुरूरवा उर्वशी के सामने नग्न रूप मे प्रकट हुआ । इस प्रकार उनके सम्बन्ध की शर्तें टूट गई और उर्वशी गधर्वलोक को चली गई ।

उर्वशी के विरह मे पुरूरवा बडा दु खी हुआ और वह वन वन भटकने लगा । एक दिन उसने कुरुक्षेत्र के सरोवर मे अन्य अप्सराओ के साथ उर्वशी

को देखा। राजा को शोक सतप्त देख कर उसने कहा, "राजन् मै गर्भवती हू। एक वर्ष बाद यहाँ आना। मै तुम्हे पुत्र भेट करूँगी।" इस पर प्रसन्न होकर पुरूरवा अपनी राजधानी लौट आया। समय पर उर्वशी ने उसे 'आयु' नामक पुत्र भेट किया। इसके बाद राजा ने गधर्वों की कृपा से अग्निस्थाली प्राप्त की और यज्ञ द्वारा उर्वशी को भी सदा के लिए पा लिया।

भारतीय पुराण ग्रन्थो मे देव और मानव के व्यावहारिक सम्बन्ध के विवरण भरे पडे है। जिस प्रकार स्वर्ग के देव पृथ्वी पर आते है उसी प्रकार पृथ्वी के मानव सरीर स्वर्ग भी जाते है और वहाँ से लौटकर आते है। देव विशिष्ट शक्ति सपन्न प्रकट किये गये है। इसी प्रकार अनेक मानव भी दैवी शक्ति से विभूपित चित्रित किये गये हे। मनुष्यो ने अपने विशेष गुणा से देवप्रद प्राप्त किया है। इसी प्रकार देवो का भी धरती पर मानव जीवन बिताना बतलाया गया है। ऐसी स्थिति मे देव और मानव की श्रेणियाँ आपस मे घुल-मिल गई है, तो फिर अप्सरा और मनुष्य के प्रणय मे आश्चर्य ही क्या है।

पुरूरवा और उर्वशी विपयक पुराण कथा मे रूप के आकर्षण की प्रधानता है। महाकवि कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशीयम्' नामक त्रोटक मे इस कथानक को नाटकीय तत्वो से सॅवार सजा कर प्रस्तुत किया है।

मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि वह अपने आराध्य व्यक्ति को देवपद पर प्रतिष्ठित करता है। पावूजी राजस्थान मे लोक-देवता के रूप मे पूजे जाते है। अत उनकी "दिव्य-उत्पत्ति" की कल्पना की गई है। इसी प्रकार 'हरस' और 'जीण' को जनकथा मे मानव-सतान बतला कर फिर उनका देवपद प्राप्त करना प्रकट किया गया है। फलत उनकी "दिव्य-उत्पत्ति" की कहानी भी चल पडी है अपने आराध्य पुरुषो का साधारण मनुष्य के समान उत्पन्न होना भक्तो के लिए सतोष का विपय नही होता।

ऊपर दी गई राजस्थानी लोक-कथाओ मे पत्नी रूप मे रहने वाली अप्सरा द्वारा सिहनी का रूप धारण करना नरसिहो के प्रदेश राजस्थान का स्थानीय रग है। यहाँ की कई लोक-कथाओ मे सत महात्मा भी अपने एकान्त-वास मे सिह रूप धारण करते हुए प्रकट किये गए है।

पुरूरवोर्वशी के वेदकालीन प्रणय प्रसग ने पुराण कथा मे विकसित रूप धारण किया और आज भी राजस्थानी जनता के मुख पर विराजमान होकर यह रसधारा प्रवाहित कर रहा है। उर्वशी तो अप्सरा ही है। पुरूरवा कभी धाधल बन जाता है, कभी घघ नाम धारण करता है और कभी वह अन्य

कथा नायक के रूप मे सामने आता है। इसी प्रकार अप्सरा का पुत्र 'आयु' कभी 'पाबू' के रूप मे प्रकट होता है तो कभी वह 'हरस' कहलाता है।

नारी की शर्त नर पूरी नही कर सकता। यह एक विकट समस्या है। परन्तु नारी से सन्तान प्राप्त करके नर सन्तोप मानता है। रूप का आकर्षण सारहीन है परन्तु उसका फल मधुर है। नर और नारी की प्रणयलीला का यही स्पष्टीकरण इस पुरातन कथा मे प्रकट हुआ है। इस प्रकार प्रेय के सामने श्रेय की महत्ता का यशोगान करने वाली यह प्रणयकथा अति प्राचीन काल से भारत मे चली आ रही है। यही भारतीय सस्कृति के प्राणो का सगीत है।

२–यक्ष–प्रश्नोत्तरी

महाभारत मे कथा है कि एक बार पाण्डवो को वन मे भारी प्यास लगी और आस-पास कही जल सुलभ न था। अत सभी पाण्डव एक स्थान पर बैठ गए और छोटे भाई को किसी जलाशय की तलाश करने के लिए भेजा गया। इधर-उधर भ्रमण करने के बाद उसे एक सरोवर मिला। वह स्वय अत्यधिक प्यासा था, अत पानी पीने के लिए तैयार हुआ। इसी समय पास के पेड से आवाज आई, "मेरे प्रश्नो का उत्तर दिए विना यदि जल पीने का साहस किया तो इसी समय निर्जीव होकर गिर पडोगे।" इस चेतावनी पर तृपार्त ने ध्यान नही दिया। फलस्वरूप जल पीते ही वह गिर पडा। कुछ समय बीतने पर युधिष्ठिर ने अपने दूसरे भाई को जल की तलाश मे फिर भेजा। उसके साथ भी वही घटना हुई जो पहले भाई के साथ हुई थी। इसके बाद दो भाई और वही आए और उसी प्रकार निर्जीव होकर सरोवर के पास गिर पडे। अन्त मे युधिष्ठिर स्वय उनकी खोज करता हुआ उसी स्थान पर आया। चारो भाई निर्जीव अवस्था मे वहाँ प्रत्यक्ष हुए। उसे भी वही आवाज दी। युधिष्ठर ने देखा कि निकटस्थ वृक्ष पर वैठा हुआ एक बगुला बोल रहा है। वह प्रश्नो का उत्तर देने के लिए तैयार हो गया। वक रूपधारी यक्ष ने युधिष्ठिर से कई प्रश्न किए और उसे सबका यथोचित उत्तर मिला। फलस्वरूप उसके मृत भाई सजीव हो गए। यक्ष ने युधिष्ठिर की परीक्षा ली थी। उसे पूरा सन्तोप हो गया। महाभारत का यह प्रसग बडा महत्वपूर्ण है।

राजस्थान मे पाण्डवो के सम्वन्ध मे विविध लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। इनमे महाभारत के मूल-सूत्र रूपान्तरित हो गए है। परन्तु इस प्रक्रिया ने कथानक मे भारी रोचकता भर दी है। समय पाकर लोककथा पर भी वातावरण का प्रभाव पडता है। यक्ष-युधिष्ठिर की यही कथा राजस्थानी जनसाधारण मे नए ही रग मे प्रचलित है। आगे राजस्थानी लोक-कथा का सार रूप प्रस्तुत किया जाता है।

एक बार पाण्डवो को वन मे वडी जोर तृषा (तीस) सताने लगी। आस-पास पानी प्राप्त न हुआ। वे एक पेड की छाया मे बैठ गए। युधिष्ठिर ने अर्जुन को किसी कुएँ की खोज मे भेजा। अर्जुन चला और काफी भ्रमण करने पर वह एक स्थान पर पहुचा, जहाँ बीच मे एक बडा कुआ था और उसके चारो कोनो पर चार कुएँ छोटे थे। उस समय वडे कुएँ का पानी उफना (उभला) और इससे चारो ओर के चारो कुएँ ऊपर तक जल से परिपूर्ण हो गए। इसके वाद चारो छोटे कुएँ भी उफने परन्तु वीच का वडा कुआ खाली ही रह गया। अर्जुन को यह दृश्य देखकर बडा आश्चर्य हुआ। परन्तु वह प्यासा था, अत पानी के लिए आगे बढा। इस समय अर्जुन को एक आवाज सुनाई दी—"यदि इन कुओ के रहस्य को स्पष्ट किए बिना पानी पीने की हिम्मत की तो अपने प्राणो से हाथ धो बैठोगे।" अर्जुन ने इस चेतावनी की कोई परवाह नही की और आगे बढते ही वह प्राणहीन होकर धरती पर गिर पडा।

कुछ समय बीता। युधिष्ठिर को चिन्ता हुई। अत भीम को भाई की खोज करने के लिए रवाना किया। वह आज्ञा मानकर चल पडा। उसने आगे चलकर देखा कि मार्ग के पास ही एक भैसा खडा है। उसके दोनो ओर दो मुँह है और वह उन दोनो से ही चारा चरता है। इस पर भी वह बहुत दुबला (माडो) है। भीम को यह स्थिति देखकर वडा आश्चर्य हुआ परन्तु वह आगे चलने लगा। इसी समय उसे एक आवाज सुनाई दी—"यदि इस भैसे के रहस्य को वताए बिना आगे कदम बढाने की हिम्मत की तो तुम्हारी जान की खैर नही।" भीम ऐसी चेतावनी पर ध्यान देने वाला कब था! वह आगे बढा और तत्काल निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिर पडा।

इसके बाद युधिष्ठिर की चिन्ता और भी वढ गई और नकुल को भाइयो की तलाश मे भेजा गया। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि एक पका हुआ खेत है जिसके चारो ओर बाड की हुई है। वह बाड भीतर की ओर बढती है और उस खेत को खाकर फिर यथास्थान आ जाती है। नकुल ने ऐसा होते वहाँ कई बार देखा। उसे बडा आश्चर्य हुआ। परन्तु वह आगे चलने लगा। इतने मे ही उसे एक आवाज सुनाई दी—'यदि इस खेत और वाड के भेद को बतलाए विना आगे बडे तो प्राणो से वञ्चित हो जाओगे।' उसने इस चेतावनी पर ध्यान नही दिया और आगे कदम बढाया कि निष्प्राण होकर धराशायी हो गया।

इसके वाद युधिष्ठिर की चिन्ता और भी वढ गई। आखिर उसने सहदेव को भेजा कि वह पहिले गए हुए तीनो भाइयो की तलाश करे। सहदेव

आज्ञा मानकर चला। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि मार्ग मे एक गाय ने वछिया को प्रसव किया और जननी उसी समय जनिता का स्तनपान करने लगी। सहदेव ने ऐसा दृश्य पहिले कभी नही देखा था कि गाय अपनी बछिया का दूध स्वय पीती हो। वह चकित हो गया। परन्तु उसे जरूरी काम था, अत वह आगे चलने लगा। इसी समय उसे भी एक आवाज सुनाई दी—'गाय और उसकी वछिया का भेद वतलाए बिना यदि आगे वढे तो तुम्हारे प्राण शरीर मे नही रहेगे।' उसने इस चेतावनी पर विश्वास नही किया और आगे की ओर कदम वढाते ही मर कर गिर पडा।

चारो भाई एक के वाद एक चले गए परन्तु उनमे से कोई भी लौट कर नही आया। इससे युधिष्ठिर बडा चिन्तित हुआ और वह अपनी प्यास को भूलकर भाइयो की तलाश मे निकला।

सवसे पहिले युधिष्ठिर उन पाँचो कुओ वाले स्थान पर पहुचा जहाँ महारथी अर्जुन निर्जीव होकर धरती पर पडा हुआ था। उन कुओ के उफनने की वही क्रिया युधिष्ठिर ने भी देखी। इसके बाद उसे यह आवाज सुनाई दी—'यदि इन कुओ का भेद तुम समझादो तो तुम्हारा भाई फिर जीवित हो सकता है।' युधिष्ठिर ने उत्तर मे कहा—'अव कलियुग आने मे अधिक समय शेप नही है। उस युग मे पिता अपने चार पुत्रो का भरण-पोषण कर देगा परन्तु फिर वे चारो मिलकर भी उसका गुजारा नही चला सकेगे।' उसी समय अर्जुन उठ खडा हुआ और वह दृश्य लुप्त हो गया।

वे दोनो भाई आगे चले। थोडी देर वाद वे उस स्थान पर पहुचे जहाँ दोनो ओर मुहवाला दुवला भैंसा खडा था और उसके पास ही भीमसेन प्राणहीन होकर पडा था। यहाँ भी युधिष्ठिर को आवाज सुनाई दी—'यदि तुम इस भैंसे का भेद वतलादो तो तुम्हारा भाई जीवित हो सकता है।' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'अब कलियुग आने वाला है। यह भैंसा उस युग की न्याय प्रणाली की प्रतिमूर्ति है जव वादी और प्रतिवादी दोनो से धन का अपहरण किया जाएगा परन्तु फिर भी ऐसा करने वालो का जी नही भरेगा।' उसी समय भीम उठ खडा हुआ। अव वे तीनो आगे चले।

थोडी दूर चलने पर उन्हे खेत और वाड वाला दृश्य दिखाई दिया जहाँ नकुल निष्प्राण होकर पडा हुआ था। यहाँ भी युधिष्ठिर को आवाज सुनाई दी—'यदि तुम इस खेत और वाड के भेद को स्पष्ट करदो तो तुम्हारा भाई फिर से जीवित हो सकता है।' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'यह कलियुग की शासन व्यवस्था का रूप है जव रक्षक स्वय भक्षक बनकर शोषण करेगा।' उसी समय नकुल उठ खडा हुआ। अव वे चार हो गए।

थोडी दूर चलने पर अपनी बछिया का स्तनपान करने वाली गाय दिखाई दी जहाँ सहदेव भी प्राणहीन होकर पडा हुआ था । यहाँ भी युधिष्ठिर को आवाज सुनाई दी–'यदि तुम इस गाय का रहस्य समझा सको तो तुम्हारा भाई जीवित हो सकता है ।' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–'अब कलियुग आने वाला है । उस युग मे माता अपनी पुत्री का धन वडे आनन्द के साथ खाएगी । यह दृश्य उसी स्थिति का परिचायक है ।' उसी समय सहदेव जीवित होकर उठ खडा हुआ । अव वे पाँचो भाई फिर से मिल गए । पास ही उन्हे एक कुआँ दिखाई दिया, जहाँ जाकर सवने अपनी प्यास बुझाई और एक घडा जल से भर कर अपने साथ ले आए ।

राजस्थानी लोककथा महाभारतीय कथा का परिवर्तित रूप है । इसमे महाभारत का यक्ष अथवा वगुला अप्रकट है, केवल उसकी आवाज ही सुनाई देती है । पुराणकथा मे प्रश्न सीधे रूप मे प्रस्तुत किये गये है, जबकि इस कहानी मे उनमे चित्रात्मकता भर दी गई है-। किसी भी सिद्धान्त वाक्य को अधिक प्रभावशाली वनाने का यह एक सुन्दर उपाय है । इसमे कुतूहल की जागृति हो जाती है और उसमे विशेप आकर्पण भर जाता है । किसी वात को स्पष्ट रूप मे सीधे तौर पर न कहकर उसे रहस्य के पर्दे मे छिपाकर उपस्थित करने की शैली भारत मे प्राचीन काल से प्रचलित है । ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐतश मुनि का प्रलाप इसका उदाहरण है 'कौन गौरी का, कौन काली का, कौन लाल का दूध पी गया ? इससे पूछो, कहाँ पूछो, जो पक्का हो उससे पूछो ।' इसके भीतरी और वाहरी दो रूप है । वाहरी रूप प्रकट है और भीतरी अर्थ इस प्रकार है—'प्रकृति की लाल, सफेद, काली गाये सत्व, रज, तम का दूध दे रही हैं । जो ज्ञानी पुरुष है, उससे इसका रहस्य समझो ।' सिद्धो, नाथो एव सन्तो की वाणियो मे इस शैली का काफी प्रयोग हुआ है । राजस्थानी लोककथा मे इस शैली को कथा मे उतार कर अत्यधिक आकर्षक वना दिया गया है । उसमे एक के वाद एक चित्रपट सामने आता है, जो जवरन चित्त को अपनी ओर खेच लेता है ।

इन सव वातो के अतिरिक्त इस लोककथा मे राजस्थान का वातावरण उपस्थित हुआ है जो स्वाभाविक है । सरोवर के स्थान पर कुए का प्रकट होना, इस कथन का एक निर्देशन है । राजस्थान मे 'वाड खेत नै खाय' और 'ग्यावण चू घै जाई नै' आदि वोल जनसाधारण मे प्रचलित भी हैं ।

यक्ष युधिष्ठिर सवाद की साहित्यिक महत्ता के सवध मे श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने अपने लेख 'गाहा और पहेलिया' (जनपद वर्ष १ अक २) मे अच्छा प्रकाश डाला है । आगे उस लेख का उद्धरण दिया जाता है–

"अश्वमेघ कर्मकाण्ड के अन्तर्गत 'क स्विदेकाकी चरति' (यजुर्वेद २३/९, ४५) इत्यादि १८ मन्त्रो को ब्रह्मोद्य कहा गया है। वस्तुत ब्रह्म शब्द यहाँ यक्ष का वाचक है। अथर्ववेद (१०/२/२८–३३) के मन्त्रो मे स्पष्ट रूप से अपराजिता पुरी मे रहने वाले ब्रह्म नामक यक्ष का उल्लेख है। अपराजिता पुरी को ही शान्तिपर्व (मोक्षधर्म, १७१/५२) मे अवध्य ब्रह्मपुर कहा गया है जिसमे राजा (अर्थात् यक्ष) सुख से रहता है। केनोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म यक्षरूप मे प्रकट हुआ। इन प्रमाणो के आधार पर वैदिक ब्रह्मोद्य के लिए ही लोक मे 'यक्षप्रश्न' यह शब्द प्रचलित था। वस्तुत यक्षपूजा का आवश्यक अग प्रश्नोत्तर या 'बूझना' है। यज्ञ प्रश्नो का सबसे अच्छा साहित्यिक उदाहरण महाभारत के वनपर्व मे यज्ञ-युधिष्ठिर सवाद (अध्याय २९७) है, जिसमे १८ श्लोको मे प्रश्न और १८ मे ही उनके उत्तर है। प्राय प्रत्येक श्लोक मे मल्होर (कुरु जनपद का गीत विशेष) की तरह ही ४ प्रश्न है। स्वय महाभारतकार ने इस अश को प्रश्न-व्याकरण (प्रश्नान् पृच्छतो व्याकरोषि, २९७/११) कहा है। प्रश्नो की बुझौवल का यक्षो से घनिष्ट सबध था। आज भी लोक मे यक्ष या ब्रह्म किसी के सिर आने पर प्रश्न पूछने की प्रथा है। महाभारत मे यह यक्ष-प्रश्नोत्तरी और यजुर्वेद के ब्रह्मोद्य दोनो एक ही लोकसाहित्य के अग थे, जहाँ से सहिताकार और महाभारतकार ने उनका सग्रह किया। इसका सबसे पुष्ट प्रमाण यह है कि यजुर्वेद के प्रश्न और उत्तर के दो मन्त्र (२३/९–४५ और २३/१०–४६) ज्यो के त्यो महाभारत के यक्ष प्रश्नो मे है। उदाहरण के लिए –

कौन अकेला घूमता है ?
कौन पुन पुन जन्म लेता है ?
जाडे-पाले का इलाज क्या है ?
अरे बताओ, भारी थैला कौनसा है ?
सूर्य अकेला घूमता है।
चद्रमा पुन पुन जन्म लेता है।
अग्नि जाडे-पाले का इलाज है।
अरे सुनो, भूमि बडा थैला है।

अथवा

कौन भूमि से भारी है ?
कौन आकाश से ऊँचा है ?

कौन वायु से शीघ्रतर है ?
कौन मनुष्यो से बली है ?
माता भूमि से भारी है ।
पिता आकाश से ऊँचा है ।
मन वायु से शीघ्रतर है ।
चिन्ता मनुष्य से बली है ।
ब्राह्मणो मे देवपन क्या है ?
इनमे भले मानुसो की बात कौन है ?
इनमे मनुष्यपना क्या है ?
इनमे कौनसी बात पाजीपन की है ?
स्वाध्याय इनका देवपना है ?
तप करते है, यही भले आदमियो की बात है ।
मर जाते है, यही इनका मनुष्यपन है ।
जब झगडने लगते है, यही पाजीपन है ।

इस प्रकार के प्रश्न और उनके उत्तर कुछ तो लोक के साधारण धरातल पर है, कुछ कुतूहल से भरे हुए वाक्चातुरी के उदाहरण हैं और कुछ मे थोडा ऊँचे उठकर वैदिक परिभाषाए भी ले ली गई है ।

वनपर्व के यक्षप्रश्नो के अन्त मे फलश्रुति दी हुई है (२९८/२७-२८) जो इस बात का निश्चित सकेत है कि यह प्रकरण महाभारत का मौलिक अग न था, कही से जोडा गया है । जिस स्रोत से लिया गया, वह लोक-साहित्य ही हो सकता है ।"

यक्ष प्रश्नोत्तरी के तत्त्व और शैली अब भी राजस्थान के लोक प्रचलित दोहो मे वर्तमान है । यहाँ कुओ पर बारा लेते समय माली ऊँची आवाज मे विविध विषयो के दोहे गाते है । उनके कुछ दोहे इस प्रकार है—

पहली कूण मनाइये रै, किण का लीजे नाम ।
मात पिता गुर आपणा रै, पाछै हर को नाम ।।
कूण जगत मे एक है रै, कूण जगत मे दोय ।
कूण जगत मे जागतो रै, कूण गयो है सोय ।।
राम जगत मे एक है रै, चाँद सूरज है दोय ।
पाप जगत मे जागतो रै, पुन्न गयो है सोय ।।
कूण ज तपसी तप करै रै, कूण ज नित उठ न्हाय ।
कूण ज सब रस जाणै रै, कूण ज सब रस खाय ।।

सूरज तपसी तप करै रै, बिरमा नित उठ न्हाय ।
इन्दर सब रस ऊगलै रै, धरती सब रस खाय ।।
कूण सरोवर पाज बिण रै, कूण रूख बिण डाळ ।
कूण पँखेरू पाख विण रै, कूण मोत बिण काळ ।।
नैण सरोवर पाज बिण रै, धरम रूख बिण डाळ ।
जीव पँखेरू पाख बिण रै, नींद मौत बिण काळ ।।
कहा न अबला कर सकै रै, कहा न सिंधु समाय ।
कहा न पावक मे जलै रै, कहा काळ नही खाय ।।
पुत्र न अबला कर सकै रै, मन ना सिंधु समाय ।
धरम न पावक मे जलै रै, नाव काळ नही खाय ।।

विशेष खोज करने पर इस प्रकार के दोहे राजस्थानी जन-साधारण मे और भी मिल सकते है । इनमे प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रश्न और उत्तर हैं । ये दोहे पहेलियो के रूप मे भी पूछे जाते है ।

३. शुनःशेपोपाख्यान

ऐतरेय ब्राह्मण मे शुन शेप का उपाख्यान दिया गया है जिसका सार इस प्रकार है—

राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र प्राप्ति के लिए वरुण की आराधना की और यह सकल्प किया कि उसको जो पुत्र प्राप्त होगा वह उन्हे भेट कर देगा। समय पर राजा के घर पुत्र पैदा हुआ और वरुण उसे लेने के लिए उपस्थित हुए । राजा ने विनय की 'अभी तो उसका नामकरण ही नही हुआ है, अत देव कुछ समय ठहरें ।' राजा ने पुत्र का नाम 'रोहित' रखा । जब फिर वरुण उसे लेने के लिए आये तो राजा ने प्रार्थना की, "अभी उसके दात नही निकले है, अत. देव कुछ समय रुके ।" जब रोहित के दात निकल आये तो राजा ने वरुण से निवेदन किया, "अभी तो यह कवच धारण करने योग्य नही है । जब वडा हो जाएगा तब आपके काम आ सकेगा । अत कुछ समय ठहरे ।" जब रोहित कवचधर हुआ तो राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण के उपस्थित होने पर, अगले दिन आने के लिए कहा और उसी रात को उसने अपने पुत्र को वहा से भगा दिया । अगले दिन जब वरुण आए तो राजा ने कह दिया कि वह तो रात को ही न जाने कहा भाग गया । वरुण को क्रोध आया और राजा हरिश्चन्द्र जलोदर रोग से पीडित हो गया । इस पर उसने अपने कुल गुरु वशिष्ठ से उपाय पूछा। वशिष्ठ ने परामर्श दिया कि राजा किसी

अन्य व्यक्ति का पुत्र प्राप्त करके यज्ञ करे, जिससे वरुण प्रसन्न हो। राजा ने इस कार्य के लिए अजीगर्त का पुत्र शुन शेप मोल लिया और यज्ञीययूप (खभे) से बलि के लिए बाध दिया। शुन शेप ने मृत्यु को पास आया जानकर वरुण से अत्यन्त करुण विनय की (ऋगवेद मडल १, सूक्त ५४–५५) फलस्वरूप शुन शेप वधन से मुक्त हो गया और विश्वामित्र ने उसे अपना पुत्र करके माना इसके बाद रोहित भी यह समाचार सुनकर अपने पिता के पास आ गया। फिर राजा हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ करके इन्द्रपद को प्राप्त किया।

इस कथा के पौराणिक विकास के सम्बन्ध मे श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने अपने लेख "हरिश्चन्द्र के समान न कोई राजा हुआ न होगा" (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १ दिसम्बर १९५७) मे इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"महाभारत सभापर्व मे हरिश्चन्द्र का एक लघुचित्र है। उसके अनुसार हरिश्चन्द्र सप्तद्वीपा वसुमती के सम्राट् थे। उन्होने राजसूय महायज्ञ पूरा किया, जिसके पुण्य से वह इन्द्र की सभा मे शाश्वत पद के अधिकारी हुए (सभापर्व, ११।४८।६१)। गुप्तकालीन भागवत धर्म के आदर्शो के अनुसार इन्द्रपद प्राप्ति के लिए यह पर्याप्त कारण न था। उनके लेखे मानव के चरित्र गुण का ठोस आधार ही स्वर्ग या इन्द्रपद प्राप्त करा सकता है। अतएव उन्होने हरिश्चन्द्र के विषय मे इस नई कथा का निर्माण किया। हरिश्चन्द्र की यह कथा देवी भागवत (स्कन्ध ७, अ० १४–२७) मे भी आई है। वहाँ दो हरिश्चन्द्र माने गये है—एक मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र (देवी भागवत ७/१७–५१) और दूसरे सत्यवादी हरिश्चन्द्र (६०/१५ ५५) मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र की कथा वैदिक काल से चली आती थी, जो ऐतरेय ब्राह्मण मे विस्तार से दी हुई है। मार्कण्डेय पुराण मे उसे छोड दिया गया है, किन्तु देवी भागवत के लेखक ने हरिश्चन्द्र के वैदिक आख्यान को रोचक ढग से कहा है, किन्तु उतने से उसका उद्देश्य पूरा नही हुआ। अतएव उत्तरार्ध मे सत्य की कसौटी पर पूरा उतरने वाले हरिश्चन्द्र की कथा दी गई है। मार्कण्डेय पुराण मे कथा का जो रूप है, वही शब्दश कुछ थोडे हेरफेर से देवी-भागवत मे लिया गया है, जैसा कि पुराणो का उपबृहण करते समय होता था।"

राजस्थानी जनसाधारण मे शुन शेप का उपाख्यान अब भी विविध रूपो मे कहा-सुना जाता है। परन्तु इन लोककथाओ मे प्रस्तुत मूल कथा

के रूपान्तर विशेष रूप से विचारणीय हैं। आगे इनमे से कुछ चुनी हुई लोककथाओ को सार रूप मे उपस्थित किया जाता है।

१—किसी राजा ने काफी रुपया खर्च करके एक जोहड (तालाब) बनवाया परन्तु उस प्रदेश मे वर्षा न होने के कारण वह भर नही पाया। इससे राजा का चित्त बडा खिन्न हुआ और उसने पडितो को बुलाकर जोहड के न भरने का कारण पूछा। पडितो ने प्रकट किया कि राजा अपने पुत्र की जोहड मे वलि देवे तो वह भर सकता है। इसके लिए राजा तैयार नही हुआ और उसने और कोई उपाय पूछा। इस पर पडितो ने प्रकट किया कि यदि राजा अपने पुत्र की बलि नही दे सके तो वह किसी का पुत्र मोल लेकर उसकी वलि देवे। इसके लिए राजा तैयार हो गया और उसने एक लडका वलि देने के लिए मोल लेना तय किया। उसे एक दुर्भिक्ष-पीडित परिवार का मध्यम पुत्र मोल मिल गया। राजा ने वलि कर्म प्रारम्भ करने के लिए उस अर्थ-क्रीत बालक को जोहड के खम्भे से बॉध दिया। इस समय उस लडके की स्थिति बडी करुणापूर्ण थी। ससार मे उसका कोई रक्षक न था। अत उसने यह मत्र जपना प्रारम्भ किया—

राजा लोभी सागरा, मायत लोभी दाम।
जैको सीरी को नही, वैको मीरी राम ॥

वालक की करुण पुकार पर भगवान ने उसे बधनमुक्त कर दिया और उसी समय आकाश मे बादल प्रकट हुए तथा वर्षा से जोहड ऊपर तक पूरा भर गया।

२—किसी सेठ ने प्रचुर अर्थ-व्यय करके एक जोहड बनवाया परन्तु वर्षा न होने के कारण उसमे पानी नही भरा। सेठ ने पडितो को बुलाकर जोहड के भरे जाने का उपाय पूछा। पडितो ने सेठ से कहा कि या तो उस पर अपने प्रथम पुत्र की या अपने प्रथम पौत्र को वलि दो तव वह जोहड भरेगा। सेठ के पुत्र एक ही था परन्तु पौत्र सात थे। अत उसने अपने सबसे बडे पौत्र की वलि देना तय किया। उसने सोचा कि वहू शायद इस कार्य के लिए सहमत न हो, इसलिए उसे पीहर भेज दिया और पीछे से बलिकर्म पूरा कर दिया। वर्षा हुई और जोहड भर गया। बछवारस (वत्सद्वादसी) का व्रत निकट आया। इसके लिए वहू को उसके पीहर से बुलवाया गया। समय पर सेठानी और उसकी पुत्र-वधू सपरिवार जोहड पर पूजा करने गई। पूजा से पूर्व सास ने अपने छै पौत्रो के मस्तक पर मागलिक तिलक कर दिया। पर वहू ने अपने सातवे पुत्र के लिए सास से पूछा। मगर सातवाँ

पुत्र अब कहाँ ? सास चुप हो गई। इसी समय कीचड से सना हुआ सातवाँ पुत्र भी अपने भाइयो के पास आ बैठा। उसकी दादी ने उसके मस्तक पर भी रौली का मागलिक तिलक कर दिया। बहू ने इसका भेद पूछा तो सास ने सब कुछ प्रकट कर दिया। वे सानन्द पूजा सम्पन्न करके घर लौट आए।

३—एक साल से काफी समय निकल गया परन्तु एक गाँव मे वर्षा नही हुई जिससे वहाँ के लोग एकदम घबरा गए। गाँव का चौधरी स्वय बडा चिन्तित था कि आसपास सब जगह वर्षा होने पर भी उसका गाँव वचित क्यो रह गया ? उसने पडितो को वहाँ वर्षा न होने का कारण पूछा। पडितो ने प्रकट किया कि मनुष्य की बलि देने से उस गाँव मे वर्षा हो सकती है। चौधरी सहमत हुआ। परन्तु बलिदान होने के लिए वह दूसरे किस आदमी से कहे ? अत वह स्वय ही इस काम के लिए तैयार हुआ। कुएँ पर हवन प्रारम्भ हुआ। हवन की विधि के अन्त मे पडितजी ने चौधरी के गले मे एक धातु निर्मित सर्पिणी डाली और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया। परन्तु ज्यो ही चौधरी ने प्राण त्याग किए आकाश मे न जाने कैसे अचानक बादल प्रकट हो गए और वर्षा प्रारम्भ हुई। यही नही, वर्षा की बूँद छूते ही चौधरी भी पुनर्जीवित होकर उठ बैठा और गाँव मे सब प्रकार से आनन्द छा गया।

इसी प्रकार इन लोककथाओ के और भी विविध रूपान्तर राजस्थान मे प्रचलित है। इन सब मे शुन शेप का उपाख्यान ही नाना रूपो मे प्रकट हुआ है। वैदिक उपाख्यान मे वरुण एव यज्ञ क्रिया को प्रधानता मिली हुई है। उनके स्थान पर राजस्थानी लोककथा मे जोहड बनवाए जाने का प्रसग है। मरुप्रदेश मे जोहड या कुआँ बनवाना यज्ञ करने के समकक्ष है। राजस्थान मे जोहड या कुएँ का अपना नाम भी होता है। सामान्यतया उसके अन्त मे सागर या समुद्र पद जुडा रहता है। इस प्रकार जोहड का न भरना और वरुण का असतुष्ट रहना एक ही बात है।

ऊपर दी गई पहली लोककथा वैदिक उपाख्यान से बहुत कुछ मिलती है। उसका राजा मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र का स्थानीय है। इसी प्रकार बलि दिए जाने के लिए जो लडका खरीदा गया है वह शुन शेप का ही दूसरा रूप है। इस कथा मे तो वरुण के प्रति की गई शुन शेप की ५ वैदिक प्रार्थना भी राजस्थानी दोहे मे सिकुड कर आ गई है।

दूसरी लोककथा मे वैदिक राजा एक सेठ के रूप मे प्रकट हुआ है। परन्तु वह अपने पौत्र की बलि दे देता है। इस प्रकार वह पौराणिक सत्यवादी

हरिश्चन्द्र के चारित्र्य की ओर अग्रसर होता है। यह लोककथा व्रत की महिमा प्रकट करने के लिए कही जाती है और इसका फल भी पुण्यमय माना गया है।

तीसरी कथा का नायक चौधरी सत्यवादी हरिश्चन्द्र का प्रतिरूप है जो गाँव की भलाई के लिए अपनी वलि दे देता है। पौराणिक राजा हरिश्चन्द्र ने भी अपनी नगरी के लोगो को छोडकर स्वर्ग जाना स्वीकार नही किया था। इस प्रकार चौधरी का चारित्र्य बहुत ऊँचा उठ जाता है और वह एक उज्ज्वल आदर्श स्थापित करता है। आत्मबलिदान राजस्थान की धरती का विशेष गुण है जो यहाँ की प्रजा मे अनेक रूपो मे प्रकट हुआ हे और जिसके विवरण मे यहाँ का इतिहास स्वय प्रकाशमान है।

राजस्थान मे जोहड वनवाना जनहित का वडा काम है। ये सभी लोककथाएँ जनहित के लिए त्याग करने से सम्वन्धित है। पुत्र, पौत्र अथवा अपने आपकी बलि देना जनहित के लिए बहुत वडा त्याग करने का प्रतीक मात्र है। इन कहानियो मे कहने के लिए जो वलिकर्म है वही मूल रूप मे त्याग का एक ऊँचा आदर्श है। यही कारण है कि इन कथाओ मे वलि दिए हुए पात्र फिर से जीवित होकर त्याग की महिमा का चतुर्दिक प्रकाशन करते है। इसी प्रकार वैदिक उपाख्यान का अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति स्वय जरा भी कष्ट उठाए विना केवल अपने धन वल से जनहितकारी कहलवाने के लिए प्रयत्नशील होते है, उनकी समस्त क्रियाएँ सारहीन होती है।

वैदिक उपाख्यान मे देवराज इन्द्र ने राजकुमार रोहित को वन मे जो उपदेश दिया, वह भारतीय साहित्य की एक अनमोल वस्तु है। उस उपदेश का एक अश इस प्रकार है जिसमे उसका सार समाया हुआ है—

कलि शयानो भवति सजिहानस्तु द्वापर ।
उत्तिष्ठ स्त्रेता भवति कृत सम्पद्यते चरन् ॥
चरैवेति, चरैवेति ।

(सोने वाले का नाम कलि है, अँगडाई लेने वाला द्वापर है, उठ कर खडा होने वाला त्रेता है और चलने वाला कृतयुग है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।)

इस गीत का अभिप्राय आध्यात्मिक है। लगभग यही भावधारा राजस्थान की मौखिक सतवाणी मे कबीरदास के नाम से प्रवाहित है जिसमे अवगाहन करके यहाँ की साधारण जनता प्रेरणा प्राप्त करती है—

साई कै नाव सै होय निस्तारा,
जाग जाग नर क्यू सूत्या ।
जागत नगरी मे चोर न लागै,
झख मारैगा जमदूता ।
सोवतडा नर गया चोरासी,
जागतडा नर जुग जीत्या ।
रामानन्द को भणै कबीरो,
मझला मझला वै पूग्या ।।

ऐतरेय ब्राह्मण मे जो जीवन सगीत विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है वही राजस्थानी सतवाणी मे सार रूप मे प्रकट हुआ है—'सोने वाले व्यक्ति चौरासी लाख योनियो मे भटकते रहते है, जागने वाले जीवन मे सफलता प्राप्त करते है और चलने वाले धीरे-धीरे परमधाम मे पहुँच जाते है ।'

लोकजीवन में पुराण-तत्व

भारत का पौराणिक इतिहास महामहिमामय है। इसको श्रवण करने का महत्व जनमेजय ने भावविभोर होकर इस प्रकार प्रकट किया है—"मैं अपने पूर्वजो का महान् चरित्र सुनते सुनते कभी अघाता नही।"[1] जनमेजय का यह सार-वचन भारतीय प्रजा के जीवन मे अब भी रमा हुआ है। यहाँ का एक निरक्षर व्यक्ति भी अपनी पुराण-कथाओ के कोष से ज्ञान धनी है। भारत की प्राचीन अनुश्रुतियाँ यहाँ के जनजीवन मे रम कर जनता का पथ-प्रदर्शन करती चली आ रही है। कुछ समय पूर्व 'लोके वेदे च' शीर्षक लेख (वरदा वर्ष २ अक ४) मे इस सम्बन्ध मे थोडा प्रकाश डाला गया था। यहाँ कुछ अन्य उदाहरणो द्वारा इस विषय को और भी अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की जाती है। इन उदाहरणो मे राजस्थानी लोक-कथाओ पर विचार किया गया है।

१—रुरु प्रमद्वरा

मुनिकुमार रुरु और प्रमद्वारा की प्रणय-कथा सुप्रसिद्ध है। श्रीमद्देवी-भागवत के अनुसार इस प्रेमोपाख्यान का साराश निम्न प्रकार है—

मेनका अप्सरा ने विश्वावसु से गर्भ धारण किया और समयानुसार उसने एक कन्या को जन्म दिया। वह उस कन्या को स्थूलकेश मुनि के

---

1 न हि तृप्यामि पूर्वेषा शृण्वानश्चरित महत्।
(महाभारत आदि० ५६/३)

आश्रम मे छोडकर चली गई। मुनिवर स्थूलकेश ने उसका पालन पोषण किया और उसका नाम प्रमद्वरा रखा। समय पाकर प्रमद्वरा युवती हुई। वह असामान्य रूपमयी थी। इस अवस्था मे प्रमतिपुत्र रुरु ने उसे देखा और वे उसके रूप लावण्य पर मुग्ध हो गए। रुरु ने प्रमद्वारा के साथ विवाह करने का निश्चय किया और वे उसके लिए उन्मना रहने लगे। इस स्थिति का पता लगाकर प्रमति ने अपने पुत्र रुरु के लिए स्थूलकेश से प्रमद्वरा की याचना की। स्थूलकेश ने यह सम्बध स्वीकार किया और शुभ मुहूर्त मे कन्यादान करने का निश्चय किया। परन्तु सयोग ऐसा हुआ कि विवाह के पूर्व ही प्रमद्वरा को निद्रित अवस्था मे एक सर्प ने डस लिया और उसका देहान्त हो गया। जब रुरु को इस घटना का पता चला तो वे भी आए और अपनी प्रियतमा को मृतक अवस्था मे देखकर वे बुरी तरह विलाप करने लगे। अन्त मे उन्होने सोच विचार करके 'सत्य क्रिया' द्वारा प्रमद्वरा को जीवित करने का निश्चय किया और अपने पुण्य कर्मो को स्मरण करते हुए प्रमद्वरा को जीवित करने के लिए हाथ मे लिया हुआ जल छोडा।[1] इस पर मुनिकुमार रुरु के सामने एक देवदूत प्रकट हुआ और उसने उन्हे समझाया कि प्रमद्वरा गतायु हो चुकी है अत उन्हे किसी अन्य शुभागी से विवाह कर लेना चाहिए। परन्तु रुरु न माने और उन्होने प्रमद्वरा के वियोग मे प्राण-विसर्जन करने का निश्चय देवदूत के सामने प्रकट किया। मुनिकुमार की इस एकनिष्ठा से देवदूत परम प्रसन्न हुआ और उसने सुझाव दिया कि वे अपनी आधी आयु प्रमद्वरा को प्रदान करके उसे जीवित कर सकते है। रुरु ने ऐसा करना स्वीकार किया और तदनुसार प्रमद्वरा व्रतचर्या के प्रभाव से पुनर्जीवित हो गई। फिर शुभ मुहूर्त मे रुरु और प्रमद्वरा की विवाह विधि सम्पन्न हुई।

कथा सरित्सागर मे भी इस प्रणयोपाख्यान का प्रयोग हुआ है। वहाँ उदयन और वासवदत्ता की कहानी मे विदूषक बसतक के मुख से "क्रोध सर्प पर था परन्तु प्राण दुमुही के गए" कहावत के स्पष्टीकरण के लिए यह कथा कहलवाई गई है। कथा का रूप ऊपर लिखे अनुसार ही है। परन्तु उसमे देवदूत के स्थान पर आकाशवाणी का प्रयोग है। विवाहोपरान्त रुरु का सर्पो पर क्रोध भडकता है और वे उन्हे मारना प्रारम्भ कर देते है पर

---

1 विमृश्यैव रुरुस्तत्र स्नात्वाऽऽचम्य शुचि स्थिति ॥
अब्रवीद्वचन कृत्वा जल पाणावसौ मुनि ।
यन्मया सुकृत किचित्कृत देवार्चनादिकम् ॥

साथ ही विषहीन दुमुहे सर्प भी मुनि की जानकारी न होने के कारण मारे जाते है। इस पर एक सर्प मुनि से निवेदन करता है कि वे विषहीन है और निर्दोष है। अन्य विषधर सर्पो के साथ उनके प्राण व्यर्थ ही लिए जा रहे है। इस प्रकार साँपो के भेद का ज्ञान करके रुरु सर्पहत्या बन्द कर देते है।

रुरु और प्रमद्वरा की पौराणिक कथा राजस्थानी जन साधारण मे कुछ परिवर्तित रूप मे प्रचलित है परन्तु उसमें नाम सकेत न होने के कारण उसकी पहिचान एकदम स्पष्ट नही है। लोक-कथाओ मे रमे हुए ऐसे पौराणिक उपाख्यानो को अधिकाधिक प्रकाश मे लाना आवश्यक है। आगे राजस्थानी लोककथा सक्षिप्त रूप मे दी जाती है—

किसी राजा ने अपने नगर का जल सकट दूर करने के लिए एक बडा भारी तालाव बनवाया परन्तु उस तालाब मे पानी ठहरता न था। राजा ने इसके लिए बहुत प्रयत्न किया कि उसमे पानी ठहरे परन्तु वह सफल नही हुआ। अन्त मे उसने पडितो को बुलवाया और उनसे तालाव मे पानी ठहरे रहने का उपाय पूछा। पडितो ने प्रकट किया कि राजा अपने परिवार मे से किसी एक व्यक्ति की तालाव पर वलि देवे तो उसमे पानी ठहर सकता है। राजा ऐसा करने के लिए राजी हो गया।

प्रश्न उपस्थित हुआ कि राजा अपने परिवार मे से तालाव पर किसकी वलि देवे ? यदि राजा अपनी स्वय की वलि देता है तो राजपद भग होता है और रानी की वलि देने से राज्यलक्ष्मी के रुष्ट होने का भय था। यदि राजकुमार की वलि दी जावे तो राज्य का भविष्य अधकारमय होता है। अव उस परिवार मे केवल पुत्रवधू और थी। अत राजा ने निश्चय किया कि पुत्रवधू को तालाब को भेट कर दिया जावे।

अपने पिता के इस निश्चय की खवर राजकुमार के पास पहुँची। वह अपनी स्त्री के प्रेम मे लीन था। अत रात्रि के समय उसने अपनी प्रियतमा के सामने सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए प्रस्ताव रखा कि उनको उसी रात चुपचाप कही दूर देश मे चला जाना चाहिए। तदनुसार उन्होने प्रचुर

गुरव पूजिता भक्त्या हुत जप्त तप कृतम्।
अधीतास्त्वखिला वेदा गायत्री सस्कृता यदि ।।
रविराराधितस्तेन सजीवतु मम प्रिया ।।
यदि जीवेन्न मे कान्ता त्यजे प्राणान्ह तत ।
(श्रीमद्देवीभागवत् २/६/२२–२५)

सम्पत्ति साथ ली और दिन निकलने से काफी पहिले ही एक घोडे पर सवार होकर वे दोनो अपने नगर से भाग निकले।

घोडा दिन भर दौडता रहा। सायकाल वे अपने नगर से बहुत दूर निकल गए और एक जगल मे किसी कुएँ के पास उन्होने विश्राम लिया। घोडे को चरने के लिए जगल मे छोड दिया गया और वे दोनो कुएँ के चबूतरे (चोपडे) पर सो गए। सयोग ऐसा हुआ कि रात को वहाँ एक साँप आया और उसने निद्रित अवस्था मे राजकुमार की पत्नी को डस लिया। प्रात काल राजकुमार उठा तो उसने अपनी प्रियतमा को मृतक अवस्था मे पाया। अब उसके शोक का कोई पार न था। अत. उसने जगल मे से लकडियाँ चुनकर एक चिता तैयार की और अपनी पत्नी के साथ स्वय भी जल मरने के लिए चिता पर बैठ गया।

इसी समय उधर से शिव पार्वती निकले और उन्होने अपनी प्रियतमा के साथ जलने के लिए तैयार उस राजकुमार को देखा। पार्वती ने शिव से हठ किया कि उस स्त्री को जीवित कर दिया जावे। शिव ने पार्वती को समझाया कि वह स्त्री जीवित नही हो सकती क्योकि वह अपनी आयु समाप्त होने के कारण मरी है। परन्तु पार्वती ने अपना हठ नही छोडा, त्रियाहठ की गभीरता समझते हुए शिव ने एक उपाय बतलाया कि यदि साथ जलने को तैयार पुरुष अपनी आधी उम्र मृतक स्त्री को प्रदान कर देवे तो वह जीवित हो सकती है। इस पर पार्वती ने राजकुमार को सारी बात समझा दी। राजकुमार ने अपनी आधी उम्र पत्नी को देना सहर्ष स्वीकार कर लिया। तदनुसार राजकुमार ने जल हाथ मे लिया। उसने अपने पुण्य प्रभाव का स्मरण करके सूर्य की साक्षी से अपनी आधी आयु देते हुए मृत पत्नी को पुनर्जीवित करने के लिए पृथ्वी पर जल छोडा। उसकी वधू तत्काल जी उठी। उसके आनन्द का कोई पार न रहा। शिव पार्वती लुप्त हो गए और वे दोनो उसी समय घोडे पर सवार होकर वहाँ से चल पडे परन्तु सारी घटना राजकुमार ने अपनी स्त्री से छिपाये रखी।

आगे चलने पर सायकाल वे एक नगर के निकट पहुँचे। राजकुमार ने एक कुएँ के पास अपनी स्त्री को ठहरा दिया और वह स्वय खाने का सामान लाने के लिये नगर मे गया। पास ही नटो का डेरा था। पीछे से राजकुमार की स्त्री की नजर एक नट-युवक पर पडी और वह उसके शरीर सौष्ठव पर मुग्ध होकर उसके पास चली गई। जब राजकुमार लौटकर आया तो वहाँ उसको अपनी स्त्री नही मिली। उसने इधर-उधर तलाश की तो वह नटो के डेरे मे बैठी हुई देखी गई। राजकुमार ने उसे

सस्कृत उपन्यास 'दशकुमार चरितम्' की मित्रगुप्त वाली कथा मे एक ब्रह्म-राक्षस मित्रगुप्त से प्रश्न करता है कि क्रूर कौन है ? इसके उत्तर मे मित्रगुप्त कहता है कि नारी का हृदय क्रूर है और फिर वह अपने कथन के लिए 'धूमिनी' की कथा सुनाता है जिसका सक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

त्रिगर्त जनपद मे धनक, धान्यक और धन्यक नामक तीन सगे भाई रहते थे जो अत्यन्त धनी थे। एक बार बारह वर्ष तक उनके प्रदेश मे वर्षा नही हुई और दुर्भिक्ष का ऐसा प्रकोप हुआ कि अन्त मे हार कर लोग पशुओ का तो प्रश्न ही क्या अपने बच्चो और स्त्रियो तक को मार कर खाने लगे। उन तीनो भाइयो ने पहले अपनी अन्नराशि समाप्त की और फिर अपने बच्चो को खा डाला। इसके बाद उन्होने अपनी स्त्रियो को खाना प्रारम्भ किया। अन्त मे सबसे छोटे भाई धन्यक की स्त्री की बारी आई, जिसका नाम धूमिनी था और जिसे वह अत्यधिक प्रेम करता था। वह अपनी प्रियतमा की हत्या नही देख सकता था। अत उसने रात्रि के समय धूमिनी को अपने कधे पर रखा और वह चुपचाप अपने घर से भाग निकला।

चलते चलते मार्ग मे एक जगल आया और वहाँ एक घायल तथा लँगडा आदमी पडा मिला। धन्यक ने उसे भी दया करके अपने कधे पर रख लिया। आगे चलकर उसने एक कुटिया बनाई और वे तीनो उसमे रहने लगे तथा जगली फलो एव आखेट से उदर पोषण करने लगे। धन्यक ने उपचार करके लँगडे व्यक्ति के घाव भी ठीक कर दिए और अब वह काफी मोटा तगडा हो गया।

एक दिन धन्यक शिकार के लिए गया हुआ था। पीछे से धूमिनी लँगडे के प्रति कामातुर हुई। लँगडा आदमी अपने उपकारी के साथ दगा करने के लिए तैयार नही था। इस पर धूमिनी ने बल पूर्वक उसके साथ मनचाही करली। जब धन्यक लौटकर आया तो उसने धूमिनी से पीने के लिए पानी माँगा। धूमिनी ने सिर दर्द का बहाना किया और जब धन्यक पानी लाने कुएँ पर गया तो उसने चुपके से उसे धक्का देकर कुएँ मे गिरा दिया। अब धूमिनी ने लँगडे को अपने कधे पर बिठा लिया और वहाँ से चल कर वह एक नगर मे आगई। यहाँ वह लँगडे पति की सेवा करने के कारण पतिव्रता के रूप मे प्रसिद्ध हो गई और उसके पास काफी धन हो गया।

पीछे से जगल के कुएँ पर कुछ राहगीर पानी निकालने के लिए आए और उन्होने धन्यक को बाहर निकाला। वह बेचारा कही का न रहा और

१. महाराजा रघु

महाराजा रघु का गुणगौरव परम प्रसिद्ध है। भारतीय सस्कृति के अन्यतम कवि कालिदास ने अपने रघुवश काव्य मे इनका और इनके वश का चरित्रगान करके अपनी वाणी को धन्य किया है। राजस्थानी जनता मे महाराजा रघु के सम्बन्ध मे जो कथा प्रचलित है उसे सक्षिप्त रूप मे यहाँ प्रस्तुत किया जाता है .—

महाराजा रघु (रुघ) धर्मनीति से राज्य शासन का सचालन करते थे। वे नित्य नियम से प्रात काल उठकर जगल मे जाते। वहाँ शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर तालाब (जोहड) मे स्नान करते और फिर भजन-पूजन करते। इसके बाद वे अपने साथ ले गए हुए जौ एक जगह बो देते और उस स्थान को तालाब के पानी से सीच देते। तदनन्तर वे अपने महल मे आकर राज्यकार्य मे लीन हो जाते। उनके शासन मे प्रजा सर्वथा सुखी एव सन्तुष्ट थी।

महाराजा रघु अगले दिन प्रात काल फिर उसी तालाब पर और उन्हे पहिले दिन बोए हुए जौ पके पकाए तैयार मिलते। वे उस अन्न का सग्रह करके साथ ले आते और अगले दिन के लिए उसी प्रकार जौ बो आते। इस प्रकार प्राप्त किए हुए अन्न से ही उनका और उनके परिवार का उदर पोषण होता था। वे राज्यकोष से कुछ भी ग्रहण नही करते थे।

एक दिन नगर सेठ की स्त्री महारानी से मिलने के लिए महल मे आई। महारानी ने उसका सम्मान किया परन्तु वह सेठानी के वस्त्राभूषण देखकर चकित हो गई। उसके शरीर पर तो एक भी गहना न था और उसके एक प्रजाजन की स्त्री का प्रत्येक अग सोने के अलकारो से सजा हुआ था। इस स्थिति मे महारानी के मन मे भी अलकार लोभ प्रविष्ट हुआ परन्तु उसने सेठानी के सामने कुछ प्रकट नही किया।

जब सेठ की स्त्री अपने घर लौट गई तो महाराजा रघु ने अन्त पुर मे प्रवेश किया। महारानी ने उनके सामने अपनी मनोभिलाषा प्रकट की। यह उसे सहन न हुआ कि उनके एक प्रजाजन की स्त्री के सामने स्वय महारानी कुछ भी नही। महारानी ने सेठानी से भी अधिक गहने प्राप्त करने की इच्छा की। महाराजा ने उसे बहुत समझाया कि स्वर्णालङ्कार धारण करना सेठो का काम है, राजाओ के लिए ऐसा करना उचित नही। परन्तु महारानी ने अपना हठ नही छोडा। अन्त मे महाराजा ने अत्यन्त खेदपूर्वक उसकी इच्छा की पूर्ति करना स्वीकार किया और वे अन्त पुर से बाहर चले आए।

महाराजा रघु ने दरबार में आकर एक राजपुरुष को बुलाया और उसे सन्देश देकर स्वर्णमयी लका के राजा रावण के पास भेजा। सन्देश मे कहा गया था कि रावण यथेष्ट सोना उनकी राजधानी मे पहुँचाने का प्रबन्ध करे। राजपुरुष ने लका मे जाकर रावण को अपने महाराजा का सन्देश दे दिया परन्तु लकापति ने उस सन्देश की अवज्ञा करते हुए उसे खाली हाथ लौटा दिया।

राजपुरुष ने अयोध्या आकर महाराजा रघु को सारा समाचार सुना दिया। महाराजा ने उसे फिर वही सन्देश देकर लका भेजा और साथ ही रावण को यह भी कहलवाया कि सोना न देने का विचार हो तो वह अपने दुर्ग (गढ) की प्रधान बुर्ज की ओर दृष्टिपात कर लेवे। राजपुरुष ने लका पहुँच कर फिर रावण को वही सन्देश सुनाया और सोना न देने की स्थिति मे उसे अपनी बुर्ज की ओर नजर डालने के लिए कहा। रावण ने अपनी बुर्ज की ओर देखा तो वह झुकी हुई विदित हुई। अब उसे महाराजा रघु की शक्ति का पता चला। जो व्यक्ति इतनी दूर बैठे हुए ही बुर्ज को झुका सकता है वह पास आकर तो चाहे जो कुछ करने की सामर्थ्य रखता है। रावण ने यठेष्ट सोना अयोध्या पहुँचा देना स्वीकार किया और राजपुरुष लौट आया।

अब महाराजा रघु के महल मे सोने का ढेर लगा हुआ था। महारानी उसे देखकर परम प्रसन्न थी। अगले दिन महाराजा प्रात काल तालाब पर गए परन्तु वहाँ से जौ साथ लिए बिना ही लौटे। महारानी ने उनसे भोजन बनाने के लिए जौ मागे तो उन्होने उत्तर दिया कि अपने प्रयोग के लिए सोना सचित करने वाले राजा की धरती फल नही देती। अब उनके लिए एक ही दिन मे जौ की खेती पक कर तैयार नही हो सकती।

इस लोककथा मे महाराजा रघु को राजस्थानी वातावरण मे प्रस्तुत किया गया है। महाराजा सगर विषयक राजस्थानी लोककथा मे भी ऐसा ही हुआ है जिसके सम्बन्ध मे विस्तृत लेख प्रकाशित करवाया जा चुका है।[1] जनसाधारण की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इससे कथा के पात्रो के साथ श्रोताओ की एक विशेष प्रकार की आत्मीयता स्थापित होती है। इस कथा

---

1. इस विषय की जानकारी के लिए शोधपत्रिका (भाग ९ अक ३) मे लेखक का 'एक राजस्थानी लोककथा, राजा सुगड' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

को सुनते समय लोग महाराज रघु को ठीक अपने बीच मे उपस्थित देखकर उनके चरित्र से प्रेरणा ग्रहण करते है। इसका घटना चक्र विलक्षण है। पुराण कथा मे महाराजा रघु विश्वजित् यज्ञ करके अपना सर्वस्व दान कर देते है और उनके पास केवल मिट्टी के बर्तन ही शेष रहते है। ऐसी स्थिति मे मुनिवर वरतन्तु का शिष्य कौत्स उनके पास गुरुदक्षिणा चुकाने के लिए प्रचुर स्वर्णराशि प्राप्त करने की आशा लेकर पहुँचता है परन्तु महाराजा की अकिंचनता देखकर वह चुप रह जाता है। महाकवि कालिदास ने इस प्रसग का अपने काव्य मे बडा ही विशद एव हृदयग्राही वर्णन किया है। महाराजा रघु अपने पास आये हुए अतिथि का निराश होकर चले जाना सहन नहीं कर सकते। वे स्वर्णप्राप्ति के लिए कुबेर पर चढाई करने की तैयारी करते है और एक अपूर्व घटना सामने आती है। महाराजा रघु के कोषागार मे स्वर्ण-वर्षा होती है और अभीष्ट सिद्धि हो जाने के कारण चढाई रुक जाती है। कौत्स गुरुदक्षिणा के लिए स्वर्ण राशि प्राप्त करके सानन्द लौट जाता है। राजस्थानी लोककथा मे इस प्रसंग की एक झलक सी है। कथा के पात्र बदल गये है और राजस्थानी वातावरण प्रस्तुत किये जाने के कारण ही ऐसा हुआ है। राजस्थानी लोककथा मे कौत्स के स्थान पर स्वय महारानी है जिसके हृदय मे अलकार लोभ के साथ ही आडम्बर की भी अभिलाषा है। इस कथा मे कुबेर के स्थान पर लकापति रावण है जिसकी राजधानी स्वर्णमयी कही जाती है। स्वर्णप्राप्ति के लिए देवताओ के कोषाध्यक्ष कुबेर की अपेक्षा रावण की ओर जनसाधारण का ध्यान पहिले जाता है। साधारणतया विचार करने से घटनाओ के परिवर्तन के ये ही कारण प्रकट होते है परन्तु कुछ विशेष कारण और भी हैं जिसके विश्लेषण की आवश्यकता है।

असल मे राजस्थानी लोककथा प्रतीकात्मक है। इसमे वर्णित महाराजा रघु की खेती उनकी धर्ममयी शासननीति है जो तत्काल फल देती है। यही तत्व रावण के देखते-देखते उसके दुर्ग की बुर्ज के झुक जाने से प्रकट होता है। लोककथा मे राजधर्म का परमोज्ज्वल रूप प्रदर्शित किया गया है। राजकोष को प्रजा की धरोहर समझने वाले शासको की नीति ही फलवती होती है। जिन शासको के हृदय मे स्वर्णलोभ समा जाता है उनका शासन भ्रष्ट हो जाता है। कथा मे यह रोग महाराजा रघु के हृदय मे न दिखला कर उनकी महारानी के ऊपर छाया हुआ प्रकट किया गया है। लोककथा का यह विलक्षण रचना-सौष्ठव है। ऐसा किये जाने से अभीष्ट

उद्देश्य की सिद्धि भी सुन्दर रूप मे हो गई है और महाराजा रघु का पुराण-वर्णित उदात्त चरित्र भी अक्षुण्ण रह गया है। यही इस लोककथा की सबसे बडी विशेषता है।

महाभारत पाँचवे वेद के रूप मे समादृत है। राजधर्म के इसी तत्व को प्रकट करते हुए इसमे कहा गया है—

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा काल कारणम।
इति ते सशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्॥
(महाभारत शा० प० ६६/६)

३—नलोपाख्यान

नल और दमयन्ती की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके आधार पर काव्य रचना करके अनेक कवियो ने रसधारा प्रवाहित की है। राजस्थानी महिला समाज मे यह साँपदा व्रत की कहानी के रूप मे कही जाती है। उसका साराश इस प्रकार है—

राजा नल की रानी ने 'साँपदा माता' के व्रत का डोरा[1] (तागो) धारण किया। राजा ने उस डोरे को यह कह कर तोड दिया कि रानी के गले मे सूत का डोरा शोभा नही पाता, उसे तो सोने का डोरा धारण करना चाहिए। उसी रात को सापदा माता ने नल को स्वप्न मे कहा कि राजा ने उसके व्रत का डोरा तोडकर उसका अपमान किया है, इसलिए वह उसके यहाँ से जा रही है। दूसरे दिन से राजा के सब काम विगडने लगे और जल्दी ही उसका वैभव समाप्त हो गया। ऐसी स्थिति मे नल ने अपनी राजधानी मे ठहरना उचित नही समझा। उसने अपने महल मे एक ब्राह्मण की लडकी को दीपक जलाने के लिये और एक नाई की लडकी को बुहारी निकालने के लिए नियुक्त कर दिया और फिर वह अपनी रानी सहित वहाँ से चुपचाप परदेश के लिए चल पडा।

---

1. साँपदा व्रत के लिए होली के दूसरे दिन हलदी मे रग कर एक डोरा गले मे धारण किया जाता है और वह एक मास से अधिक समय तक रखा जाता है। अन्त मे कहानी सुनकर वह डोरा खोला जाता है। इतने समय मे दिन मे एक बार ही भोजन किया जाता है। वह भी केवल एक ही अनाज का होता है। उसमे या तो गेहूँ होता है या जौ। राजस्थानी मे इसी व्रत के अनुसार 'तागो लेणो' मुहावरा प्रचलित हो गया है जिसका अभिप्राय 'नियम धारण करना' होता है।

वे दोनो एक वन मे पहुँचे। नल ने तीतर मार कर अपनी रानी को भूनने के लिए दिए और स्वय जोहड पर स्नान करने के लिए गया। वहाँ नहा कर राजा ने अपनी धोती जोहड की पाळ पर सुखाने के लिए धूप मे फैलाई। उसी समय वह धोती पाळ मे प्रवेश कर गई और राजा देखता ही रह गया। उसने अपनी रानी को पुकार कर उसकी धोती का आधा हिस्सा लिया और उससे अपना तन ढँका। फिर वह भोजन करने के लिए आया तो रानी ने पीछे का विवरण सुनाया कि तीतर भून लिए गए थे मगर इस पर भी वे पुनर्जीवित होकर उड गए। इसके वाद राजा-रानी विना कुछ खाए ही वहाँ से आगे चल पडे।

आगे राजा को एक गूजरी मिली जो मटके मे छाछ भर कर वेचने के लिए ले जा रही थी। राजा ने उससे कुछ छाछ माँगी। परन्तु गुजरी दो टूक इन्कार हो गई।[1] वहाँ से चल कर राजा अपनी वहिन के नगर मे पहुँचा। वहिन ने भाई की स्थिति का पता लगवाकर उसे एक पुराने से मकान मे ठहरा दिया। राजा रानी एक कमरे मे विश्राम करने लगे। उस कमरे की खूँटी पर नल की वहिन का नौलखा हार टँगा हुआ था। पास की दीवार पर एक मोरनी चित्रित थी। वह चित्रित मोरनी जीवित होकर उस हार को निगल गई[2] और फिर उसी रूप मे वदल गई। राजा-रानी ने यह घटना भी अपनी आँख से देखी, परन्तु हार की चोरी का दोष उन्ही के सिर लगा और वे वहाँ से रवाना हो गये। वहाँ से चल कर वे दोनो किसी गाव मे एक खाती के घर मे ठहरे। खतौड मे खाती के काम करने के औजार पडे थे। धरती ने उन सवको निगल लिया और यह चोरी भी नल के ही सिर पर आई। दोनो वहाँ से आगे वढे।

---

1 इस प्रसग का एक दोहा लोक प्रचलित है—

गरबै मतना गूजरी, देख मटूकि छाछ।
नव सौ हाथी हीडता, नळ राज रै वास॥

2 राजस्थान मे इसी प्रसग के आधार पर कहावत प्रचलित है—"के मोरडी हार निगळगी ?" इस घटना का एक रूपान्तर भी है जिसमे वहिन का चरित्र उज्ज्वल दिखाया गया है। वहिन अपने भाई के लिए हीरे-मोतियो से भर कर थाल भेजती है मगर वह सव नळ के छूते ही ककर-पत्थर के हो जाते है। राजा-रानी उनको वही जमीन मे गाड कर चले जाते हैं और फिर लौटते समय वह जमीन खोदी जाती है तो वे हीरे मोती के रूप मे मिल जाते हैं।

अन्त मे राजा ने किसी गाँव मे पहुँचकर एक माली के यहाँ कुए पर बारा लेने की नौकरी शुरू की और रानी उसी माली की वाडी के फूल बाजार मे लेजाकर वेचने लगी। उन्होने किसी को अपना परिचय नही दिया। इस प्रकार समय निकलने लगा। एक रात 'सापदा माता' राजा नल को फिर स्वप्न मे दर्शन देकर बोली—"राजा मैं तुम्हारे यहाँ फिर आना चाहती हूँ।" नल ने हाथ जोडे और देवी के पैर पकड लिए। माता ने आदेश दिया—"कल वारा लेते समय पहले वारे मे कच्चे सूत का 'कूकडिया' निकलेगा दूसरे बारे मे हलदी की गाँठ निकलेगी और इसी प्रकार तीसरे मे जौ की दँहगी (वाल) आएगी। तू उनसे अपनी रानी को मेरे व्रत का डोरा धारण करवा देना।" देवी के वचन के अनुसार ही सब काम हुआ और रानी ने व्रत का डोरा धारण किया।

अगले दिन उस नगर के राजा के कुछ घोडे छुट कर भाग निकले। उनको पकडने की बहुत चेष्टा की गई परन्तु कोई उन्हे पकड नही सका। अन्त मे नल ने उनको पकड कर राजा के सामने ला खडा किया[1]। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने नल का परिचय पूछा। नल ने पूरी आप बीती कह सुनाई। इस पर राजा ने अपनी वडकँवार (वडी पुत्री) बेटी का नल के साथ विवाह किया और दहेज मे बहुत धन दिया। कुछ दिनो बाद नल वहाँ से दोनो रानियो सहित अपनी राजधानी के लिए बडे ठाठ से रवाना हो गया।

मार्ग मे खाती का घर आया। नल को देखते ही धरती ने, पहिले वाले सारे औजार उगल दिए। राजा का एक कलक सिर से उतरा। इसके वाद वहिन का नगर आया। राजा ने उसी मकान मे विश्राम किया। चित्रित मोरनी ने राजा की बहिन के सामने ही वह हार उगल दिया। यह कलक भी दूर हुआ। वहा से आगे बढने पर वही गूजरी फिर मिली। उसने राजा को दही की मटकी भेट की। फिर वे वन मे पहुँचे। वे ही तीतर राजा के रथ पर अपने आप आकर वैठ गए और जोहड की पाळ ने धोती वापिस वाहर करदी। अन्त मे नल अपनी राजधानी मे आन पहुँचा। वहाँ उसने अपने महल मे जिस ब्राह्मण की लडकी को दीपक जलाने के लिए तथा जिस नाई की लडकी को

---

1 कथा के इस प्रसग का एक रूपान्तर भी है जिसमे नगर के राजा की पुत्री का स्वयवर होता है और वहा नळ भी चला जाता है। राजपुत्री वरमाला नळ के गले मे डालती है। इसके वाद नळ पीछे की कहानी सुनाता है और राजा वडा प्रसन्न होता है।

बुहारी निकालने के लिए जाते समय छोडा था उन्होने इतने समय तक अपना काम यथाविधि पूरा किया। राजा ने उनको काफी धन दिया और फिर अपनी तरफ से उन दोनो का विवाह कर दिया। नल के सब ठाठ वापिस ज्यो के त्यो जम गए और हर प्रकार का आनन्द हो गया।

राजस्थानी लोककथा मे प्राचीन कथानक काफी अश मे बदला हुआ है। लोककथा मे दमयन्ती के स्वयवर की चर्चा नही है और न इसमे रानी का नाम ही है। साथ ही इसमे नल की द्यूतक्रीडा का प्रसग भी नही है और उसके वैभवनाश का कारण कुछ और ही प्रकट किया गया है। इसके बाद के कई प्रसगो मे प्राचीन उपाख्यान की घटनाओ की झलक प्रकट हुई है परन्तु साथ ही कई प्रसगो की नई उद्भावना भी है। इतना होने पर भी इन सभी प्रसगो मे एक ही मूलतत्व समाया हुआ है और वह है, अनहोनी घटना का घटित होना। लोककथा मे राजा-रानी का वियोग भी नही होता और ऐसी स्थिति मे दमयन्ती के पिता द्वारा उसका दूसरा स्वयवर किए जाने की घोषणा भी सामने नही आती है। नल की अश्वविद्या अवश्य प्रकट हुई है और वह एक रानी के स्थान पर दो रानियाँ लेकर राजधानी लौटता है। विपन्नावस्था मे जो अनहोनी घटनाएँ घटित हुई थी वे अपने आप ही सब बदल जाती हैं। राजा का कलक पूर्णरूप से उतर जाता है।

लोककथा मे पूरा वातावरण राजस्थान का प्रकट हुआ है। इससे ऐसा मालूम होता हैं मानो नल यही का कोई राजा हो। महिला समाज की इस व्रतकथा का कथानक पुरुप वर्ग मे भी इसी रूप मे प्रकट किया जाता है। कई स्थानो मे इस कथा के डोरे को 'दशा का डोरा' भी कहते हैं। विक्रमादित्य और शनिदेव सम्बन्धी कथा मे मोरनी के द्वारा हार निगलने का प्रसग इसी रूप मे है। नल की बहिन द्वारा उसका अपमान किए जाने की घटना मे राजस्थानी कहावत 'होत की भाण अणहोत को भाई' चित्रित हुई है जिसके सम्बन्ध मे यहाँ अन्य लोककथा प्रचलित है। इसी प्रकार अनेक राजस्थानी लोककथाओ मे राजा द्वारा किसी व्यक्ति के असाधारण गुणोत्कर्ष पर प्रसन्न होकर उसके साथ अपनी 'बडकँवार' वेटी का विवाह करने का प्रसग आता है।

प्राचीन उपाख्यान को राजस्थान मे व्रतकथा का रूप प्राप्त हुआ है, फलत. इसमे पुण्यमय वातावरण है और कथा मे जो अनहोनी घटनाएँ प्रकट हुई है उन सबका कारण स्पष्ट ही 'सापदा माता' का परोक्ष प्रभाव है। सापदा माता सम्पत्ति की देवी अर्थात् लक्ष्मी है। राजा नल के सम्बन्ध मे उसे राज्य-

लक्ष्मी कहा जा सकता है। प्राचीन कथा मे नल की दुरावस्था का कारण उसका जुवा खेलना है जिससे उसकी सम्पत्ति समाप्त हो जाती है। राजस्थानी लोककथा मे इसका कारण उसका धनगर्व प्रकट किया गया है। सच है, घमण्डी आदमी के पास धन नही ठहरता और किसी भी प्रकार उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। धन की रक्षा के लिए विनम्रता आवश्यक है। लोककथा के नल मे यह गुण नही है, अत वह धन की देवी का अनादर करता है और फलस्वरूप उसे अपना घर तक छोडना पडता है। उस पर अनेक विपत्तियाँ एक के बाद एक पडती हैं और उसका गर्व मिट जाता है। अब उसे एक माली के अधीन रहकर बारा लेने का काम करने मे भी एतराज नही। न जाने कितने लोगो ने परदेश जाकर अपनी भाग्यलक्ष्मी को जगाया है। यही हालत लोक-कथा के नायक की हुई है।

भारतीय प्रजा अति प्राचीन काल से 'सूत्र धारण' को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण अग समझती आई है। वह अनेक रूपो मे धारण किया जाता है। रक्षासूत्र, वैवाहिक सूत्र एव यज्ञोपवीत आदि इसके अनेक रूप है। स्पष्ट ही सूत्रधारण का अभिप्राय 'नियमधारण' करना है। इसे ही व्रत लेना भी कहा जा सकता है। राजस्थानी लोककथा का डोरा भी यही प्रकट करता है। उसे कथा की नायिका धारण करती हे जो स्वय गृहलक्ष्मी है। घर की सम्पन्नता उसके नियमधारण पर ही टिकी रह सकती है। गृहसचालन मे उसके पुण्य-प्रभाव का असाधारण महत्व है। कथा नायक उसका व्रत भग करता है। अपनी गृहलक्ष्मी का व्रत भग करके कोई व्यक्ति कैसे सुखी रह सकता है। कथानायक ने ऐसा ही किया और उस पर विपत्ति पडी। अन्त मे उसका उद्धार भी गृहलक्ष्मी के व्रत धारण करने से ही हुआ जिसका पालन कथा-नायक ने स्वय करवाया है।

लोक-कथा का नायक अपने घर से विपन्नावस्था मे बाहर जाते समय एक विशेष व्यवस्था करता है। वह एक ब्राह्मण की लडकी को दीपक जलाने के लिए तथा एक नाई की लडकी को बुहारी लगाने के लिए नियुक्त करता है। नायक द्वारा की गई यह व्यवस्था विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जिस घर मे स्वच्छता एव प्रकाश रहता है उसमे सम्पन्नता अपने आप आती है। इसी बात को दूसरे रूप मे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिस व्यक्ति मे हृदय की शुद्धता एव ज्ञान का प्रकाश रहता है, उसकी सभी क्रियाये फलवती होती है। यही इस लोक-कथा का नियम अथवा व्रत है।

राजस्थानी लोक-कथा एक अन्य प्राचीन कथा का भी स्मरण करवाती है जिसका साराश इस प्रकार है —

दानवराज प्रहलाद अपने शील के कारण तीनो लोको के वैभव के अधिकारी वन गए। आचार्य शुक्र की सम्मति से देवराज इन्द्र उनके पास ऐश्वर्य प्राप्ति का उपाय पूछने के लिए आए। इस समय देवराज ने ब्राह्मण का वेप धारण कर लिया था। अत' प्रहलाद उनकी वास्तविकता जान नही पाए और उन्हे अपने साथ रखकर जीवन के व्यावहारिक रूप द्वारा शील की महिमा प्रकट करने लगे। कुछ समय वाद दानवराज ने ब्राह्मण वेपधारी इन्द्र से वर माँगने के लिए कहा। देवराज ने उनसे उनका 'शील सचय' माँग लिया। दानवराज अपने वचन को कैसे पलट सकते थे ? उन्होने स्वीकार किया और फल यह हुआ कि एक तेज पुञ्ज उनके शरीर से निकल कर देवराज की काया मे प्रविष्ट हो गया। यह उनका शील था। इसी प्रकार उनके शरीर से धर्म, सत्य और वल तेजपुञ्ज के रूप मे निकल कर इन्द्र के तन मे समा गए। अन्त मे दानवराज के शरीर से एक तेजपुञ्ज और निकला। यह तेजोमयी लक्ष्मी थी। उसने देवराज के शरीर मे प्रवेश करते समय उनके ब्राह्मण वेष का भेद प्रकट कर दिया। इस प्रकार प्रहलाद सर्वथा तेजहीन होकर ठगे से रह गये। फिर उन्होने अपना शेप जीवन 'शील सचय' के निमित्त लगाया।

राजस्थानी लोक-कथा का नल गर्व के वशीभूत होकर लक्ष्मी से वचित हो गया। और फिर उसने 'शील सचय' करना प्रारम्भ किया। यही उसके द्वारा की गयी 'स्वच्छता एव प्रकाश' सम्वन्धी व्यवस्था का रहस्य है। और यही इस राजस्थानी व्रतकथा का सार सदेश है।

४. कालधर्म

डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने अपने 'महर्षि व्यास' शीर्षक लेख मे लिखा है[1] —

"वेदव्यास के आध्यात्मिक दर्शन मे कालधर्म का वडा स्थान है। उनकी आँखो ने समत पचक मे हुए कुरु पाडवो के दारुणनाश को देखा। वडे कुशाग्र-वुद्धि और कल्याणभिनिवेशी व्यक्ति इच्छा रहते हुए भी उस क्षय को नही रोक सके। यह कालचक्र की ही महिमा है। कर्म के साथ मिलकर काल ही ससार मे बहुत तरह के उलट फेर करता है (शा० २१३/१३) काल के पर्याय धर्म के सामने सव अनित्य ठहरता है। कभी एक की वारी, कभी दूसरे की।

1. द्रष्टव्य, कला और सस्कृति नामक ग्रन्थ पृष्ठ ४२–४३।

महाभारत के अन्त मे जो व्यक्ति स्त्री-पर्व को देखे, वह इसके सिवाय और क्या कह सकता है।

न च देवकृतो मार्ग शक्यो भूतेन केनचित्।
घटतापि चिरकाल नियन्तुमिति मे मति ।।

कोई प्राणी कितनी भी कोशिश करे, देव के रास्ते को नही रोक सकता। यह देव या उत्कट काल विश्व का नित्य विधान है। इसी का नामान्तर सनातन ब्रह्म है। वेदव्यास मानव-जीवन की घटनाओ की ऊहापोह करते हुए उसके अन्तिम कारण की खोज मे यही विश्राम लेते है।"

इस उद्धरण के अनुसार महाभारत मे सर्व साधारण को जो सार सदेश दिया गया है वह भारतीय प्रजा के जीवन मे कितनी गहराई के साथ रमा हुआ है, इस तत्व के स्पष्टीकरण के लिए यहाँ एक राजस्थानी लोककथा पर प्रकाश डाला जाता है, जो वीर अर्जुन के युद्धोत्तर जीवन के सम्वन्ध मे कही जाती है। कथा इस प्रकार है—

महाभारत के युद्ध मे विजय प्राप्त करके पाण्डव राज्य के स्वामी हुए और उस महा-विनाश के वाद जो कुछ शेप वचा था उसकी उचित व्यवस्था मे उन्होने ध्यान दिया। अव समस्त राज्य मे महाराजा युधिष्ठिर की 'दुहाई' फिरती थी। इस प्रकार कुछ समय वीता।

एक दिन सायकाल श्रीकृष्ण और अर्जुन घूमने के लिए निकले। वीती हुई घटनाओ की चर्चा करते हुए दोनो मे यह विवाद उपस्थित हुआ कि ससार मे काल की प्रधानता है या मनुष्य की ? श्रीकृष्ण ने प्रकट किया कि काल ही सर्वोपरि है। परन्तु अर्जुन ने इस कथन का विरोध करते हुए कहा कि काल प्रधान नही है, मनुष्य उससे वलवान है। थोडी देर तक उत्तर प्रत्युत्तर चलता रहा, फिर दो मार्ग आए। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "मैं दाये मार्ग से जाता हू और तुम वाये रास्ते से आओ। थोडी दूर चलने पर ये दोनो मार्ग फिर आपस मे मिल जाएँगे और हम दोनो का साथ हो जायगा।" अर्जुन ने ऐसा ही किया और वह वाये रास्ते पर चल पडा। श्रीकृष्ण दाये मार्ग से आगे वढ गये।

अर्जुन अपने रास्ते पर कुछ दूर चला। आगे उसने देखा कि रक्त की एक धारा वहती हुई आ रही है। उसे वडा आश्चर्य हुआ कि वह रक्त का प्रवाह आखिर आ कहाँ से रहा है ? वह उसी के कारण की खोज करने के लिए तदनुसार चलने लगा। कुछ दूर चलने पर उसने देखा कि दूरी पर एक महाकाय दानव सो रहा है और एक सुन्दर युवती उसके पास वैठी हुई उसके

पैर दबा रही है। युवती की आँखो से खून के आँसू टपक रहे है और वे ही एक धारा के रूप मे बह चले है।[1] पहावीर अर्जुन ने निर्णय किया कि निश्चय ही यह दानव कही से इस युवती को वलात् पकड कर ले आया है और उससे सेवा करवा रहा है। उसे यह स्थिति सहन न हो सकी और तत्काल उसने दानव को लक्ष्य बनाकर एक तीर छोडा। वह तीर दानव के लगा और उसने सोये हुए ही अपने शरीर पर हाथ फिरा कर कहा कि मच्छर नीद भी नही लेने देते।[2] इन शब्दो से अर्जुन को बडा आश्चर्य हुआ— "इस दानव के लिए उसका बाण एक मच्छर के समान है!" उसने फिर एक तीर और भी ज्यादा कसकर दानव पर छोडा। इस बार भी दानव ने वैसा ही किया और वह सोता ही रहा। अर्जुन का जोश बढा और उसने तीसरा तीर और मारा। अबकी बार दानव की आँखे खुली और उसने अर्जुन की तरफ देखकर क्रोध से पुकारा–"अरे दुष्ट, खडा रहना, कही भाग न जाना।" ऐसा कहकर वह अर्जुन की तरफ दौडा। अर्जुन का जोश ठण्डा पड गया और दानव को सामने आते देख वह भयभीत होकर भाग चला।

अर्जुन आगे था और दानव पीछे। अर्जुन ने सोचा, "आज उसका अन्तिम समय आ गया है और यह दानव उसे मार कर खा जायेगा।" परन्तु वह प्राणो के मोह मे भागा जा रहा था कि कही कोई शरण मिल जाए तो वह जीवित रह सके। आगे उसने देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक चौरगा (जिसके दोनो हाथ और दोनो पैर कटे हुए हैं) पडा है। अर्जुन उसी की तरफ दौडा। चौरगे ने देखा कि एक आदमी भयभीत होकर भागा आ रहा है और उसके पीछे एक दानव लगा है। उसे भयार्त मनुष्य पर दया आई और उसने वही पडे हुए गर्ज कर दानव से कहा कि वह वही ठहर जावे अन्यथा अपने प्राणो से हाथ धो बैठेगा। चौरगे की आवाज सुनकर दानव जहाँ का तहाँ रुक गया और बोला–'अरे मनुष्य तू शक्तिशाली की शरण मे चला गया नही तो आज मैं तुझे तीर चलाने का मजा चखा देता।" इतना कहकर दानव वापिस लौट गया।

---

1 मुसलमान सूफी कवियो की रचनाओ मे 'खून के आँसू रोना' एक साहित्यिक अभिप्राय है। जायसी कृत 'पदमावत' काव्य मे यह कई जगह प्रयुक्त हुआ है।

2. श्री शुभशीलगणि विरचित विक्रम चरित्र ग्रन्थ मे विक्रमादित्य के गर्वहरण विषयक कथानक मे भी ऐसा ही प्रसग प्रकट किया गया है।

चौरगे ने अर्जुन को अपने पास विठलाकर धीरज दिया। अब उसके प्राण सुरक्षित थे। परन्तु वह चकित था कि जिस दानव के आगे वह पैर नही रोक सका, वह इस चौरगे की आवाज मात्र से डर कर लौट गया। अत निश्चय ही यह मनुष्य हाथ पैरो से विहीन होने पर भी महापराक्रमी है। कुछ देर बाद अर्जुन ने चौरगे से हाथ जोड कर पूछा "हे प्राणदाता, आपकी शक्ति अपार है। कृपा करके मुझे यह समझाइए कि आपके हाथ-पैर कैसे कटे?" अर्जुन का ऐसा वचन सुनकर चौरगा कुछ गभीर हुआ। फिर उसने कहा, "अरे भाई, मुझे अपने वल और वीरता पर बडा घमड था। महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तब मैं यही बैठा था। कुछ वाण मेरे पास से सनसनाते हुए निकले। वे वाण युद्ध क्षेत्र से छोडे हुए चले आ रहे थे। मैंने अपने वल के गर्व मे एक वाण को बैठे-बैठे ही दोनो हाथो से पकड कर रोकने की चेष्टा की। उस वाण का वेग वडा तीव्र था। उस पकडने की चेष्टा मे मेरे दोनो हाथ और दोनो पैर कट कर गिर गए और वह आगे निकल गया। मुझे अपने किए पर वडा पछतावा हुआ परन्तु अव क्या हो सकता था? असल मे वह वाण महारथी अर्जुन का था। मैंने उसे पकडने की चेष्टा करके वडी भूल की। इसी से आज मेरी यह दशा है कि धरती पर लोट-लोट कर इधर उधर सरक सकता हूँ।" चौरगे की वात सुनकर अर्जुन तो मानो आश्चर्य के समुद्र मे ही डूबने लगा। जिसके दूर से छोडे हुए अज्ञात वाण को पकडने की चेष्टा मे इस व्यक्ति के हाथ पैर कटकर गिर गए, आज वही अर्जुन न इसकी शरण मे आकर जीवित वच सका! इतना ही नही, जिस दानव के भय से वह स्वय भाग छूटा, वही दानव इस चौरगे से डर कर लौट गया और उसके प्राणा की रक्षा हुई। अन्त मे अर्जुन की समझ मे आया कि यह सव काल की महिमा है। काल सर्वोपरि है, मनुष्य उसके सामने कुछ भी नही।

अर्जुन अपने प्राण-रक्षक को धन्यवाद देकर वहाँ से चल पडा। कुछ दूर जाने पर उस रास्ते मे दूसरा रास्ता आ कर मिल गया। उधर से श्रीकृष्ण आये और दोनो का साथ हो गया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा– "क्यो अर्जुन, मनुष्य वलवान है या काल? अर्जुन ने हाथ जोडकर निवेदन किया, "भगवान, काल सर्वोपरि है। मनुष्य उसके सामने कुछ भी नही। आज आपकी कृपा से मेरा भ्रम दूर होकर मुझे वास्तविक ज्ञान मिला है।" इसके वाद श्रीकृष्ण और अर्जुन लौटकर राजधानी मे आ गए।

यह लोककथा भारतीय जनमानस की उद्‌भावना शक्ति का विलक्षण

नमूना है। जो बात सिद्धान्त रूप मे कही जाती है। वह उतनी प्रभावशाली नही होती जितनी कि वह कथा रूप मे होती है। प्रस्तुत लोककथा अत्यन्त कौतूहलमयी एव चित्रात्मक है।[1] फलत इसमे रोचकता भर गई है। परन्तु इस कथा की सब से बडी विशेषता इसकी प्रतीकात्मकता है जिसकी व्याख्या बडी सारगर्भित है।

श्रीकृष्ण विश्वनियता है। महाभारत विजेता अर्जुन को मानवी शक्ति पर गर्व होना स्वाभाविक है। वह काल की अपेक्षा मनुष्य को अधिक शक्तिशाली समझता है। इसीलिए कथा मे उसे बाये रास्ते पर चलने वाला प्रकट किया गया है। काल-धर्म की महिमा का समर्थन करने वाले श्रीकृष्ण दाये मार्ग पर चलते है। कथा का दानव महाकाल का रौद्ररूप है। इसकी युवती मानवी शक्ति का प्रतीक है जो रौद्र-रूप दानव के पैर दबाती है और अपनी विषम स्थिति के कारण आँसू बहाती है। मानवी शक्ति का समर्थक अर्जुन उसके उद्धार के लिए चेष्टा करता है परन्तु उसकी पूरी ताकत भी काल के रौद्र रूप दानव के लिए मच्छर के समान है। जब दानव आँखे खोलता है तो बेचारे मनुष्य की समस्त शक्ति शून्य हो जाती है और वह प्राण रक्षा के लिए किसी की शरण मे जाना चाहता है। कथा का चौरगा महाकाल का सौम्यरूप है जो बिना हाथ पैर का होने पर भी बडा शक्तिशाली है और भयभीत मनुष्य उसकी शरण मे जाकर त्राण पाता है। अर्जुन के बाण से चौरगे के हाथ पैर कट जाने का अभिप्राय मनुष्य की शक्ति को चरम रूप मे दिखाना है परन्तु यह सब महाकाल के सौम्य रूप के सामने ही हो सकता है। उसके रौद्र रूप के सामने मनुष्य सर्वथा शक्तिशून्य है। लोककथा मे महाकाल के रौद्र-रूप की अपेक्षा उसके सौम्य-रूप को प्रधानता दी गई है और इसी मे पृथ्वी पर मनुष्य के समस्त विकास का रहस्य भरा हुआ है। अन्त मे मानवी शक्ति का समर्थक अर्जुन गर्व-रहित होकर महाकाल के आगे हाथ जोडता है और फिर उसकी श्रीकृष्ण से भेट होती है। अब दायाँ और बायाँ दोनो रास्ते एक हो जाते है और अर्जुन सकुशल घर लौट आता है।

इस राजस्थानी लोककथा मे महर्षि व्यास द्वारा प्रकट किया हुआ निम्न सार सन्देश गूँज रहा है —

> कालमूलमिद सर्व जगद् बीज धनञ्जय।
> काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया।
> स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बल ।
>
> (मौसल पर्व ८, ३३, ३४)

---

1 यज्ञ प्रश्नोत्तरी का चित्रात्मक रूप वरदा के वर्ष २ अक ४ मे प्रस्तुत किया जा चुका है।

५. नागयज्ञ

जनमेजय के नागयज्ञ की कथा सुप्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध मे राजस्थान मे प्रचलित लोककथा का साराश निम्न प्रकार है —

महाराज परीक्षित ने शिकार खेलते समय विनोद मे एक तपस्वी के गले मे मरा हुआ साँप डाल दिया। इस अपमान से क्रोधित होकर तपस्वी ने परीक्षित को शाप दिया कि निश्चित अवधि के भीतर साँप के काटे से राजा की मृत्यु होगी। परीक्षित को अपनी भूल ज्ञात हुई परन्तु अब क्या हो सकता था? तपस्वी का वचन टल नही सकता। महाराजा अपने महल मे आ गए और पुण्य कर्म मे समय व्यतीत करने लगे। साथ ही उन्होने साँप से अपनी रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया।

अवधि पूरी होने को आई और तक्षक नाग तपस्वी का वचन सच्चा सिद्ध करने के लिए चला। मार्ग मे उसकी धन्वन्तरि वैद्य से भेट हुई। वैद्य ने बातचीत मे प्रकट किया कि वह महाराजा परीक्षित की सर्प-दश से प्राण रक्षा करने के लिए जा रहा है। इस पर धन्वन्तरि के गुण की जाँच करने के लिए तक्षक ने एक हरे-भरे वृक्ष को अपने दश से भस्मीभूत कर दिया और तत्काल ही वैद्य ने अपने उपचार से उसे पहिले जैसा ही कर दिखाया। अब तक्षक को विश्वास हो गया कि यह वैद्य तपस्वी के वचन को झूठा सिद्ध कर देगा। अत उसने कुछ आगे बढकर एक सुन्दर सी लाठी का रूप धारण किया और मार्ग मे पड गया। वैद्य ने वहाँ पहुँच कर उस लाठी को अपने कन्धे पर रख लिया। उसी समय तक्षक ने सर्प बनकर धन्वन्तरि की पीठ मे काटा और घाव न दिखलाई देने के कारण वैद्य कुछ उपचार नही कर सका तथा वही उसका प्राणान्त हो गया। यह खबर धन्वन्तरि के परिवार वालो के पास पहुँची। वे उसे उठाकर घर ले आए। धन्वन्तरि ने अपने परिवार वालो को कह रखा था कि जब कभी उसका शरीर शान्त हो जाए, उसे जलाया न जावे बल्कि उसे खा लिया जावे क्योकि औषधियो के प्रयोग से उसमे अपरिमित गुण भर दिए गए है। परिवार वाले उस मृतक देह को खा नही सके और उसे श्मशान मे छोड दिया। उसे कालवेलियो (सपेरो), कुत्तो एव चील-कौवो आदि ने खाया। फलत कालवेलियो पर सर्पदश का प्रभाव नही होता, कुत्तो की जीभ मे अमृत-गुण आ गया और चील-कौवो की स्वाभाविक आयु बढ गई।

तक्षक नाग अपना काम पूरा करने के लिए महाराजा परीक्षित की राजधानी मे पहुँचा। वहाँ सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध देखकर उसने पूजा करने

के लिए चुने हुए फूलो मे एक अति लघु कीट के रूप मे प्रवेश किया। महाराजा ने उस फूल को पूजा के लिए उठाया कि तक्षक ने उन्हे डस लिया और तत्काल उनका प्राणान्त हो गया। राज्य भर मे हाहाकार मच गया।

परीक्षित के बाद जनमेजय राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। उन्होने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए नागो के सर्वसहार की योजना चालू की। प्रतिदिन अगणित नाग पकडकर हवनकुण्ड मे स्वाहा किए जाने लगे। यही जनमेजन का नागयज्ञ था। राजसेवको ने तक्षक के लिए बडी खोज की परन्तु वह कही भी नही मिला। अत जनमेजय ने उसकी तलाश करने का काम गरुड पर छोडा।

तक्षक को नागयज्ञ का समाचार पाकर अपने प्राणो की चिन्ता हुई। उसने ब्राह्मणकुमार का रूप धारण किया और किसी गाँव मे जाकर एक ब्राह्मण के घर मे वह अतिथि की तरह रहने लगा। उस ब्राह्मण के विवाह योग्य कन्या थी। उसने अतिथि को सर्वगुण सम्पन्न समझ कर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। अब तक्षक ने सारा रहस्य स्पष्ट किया। इस पर ब्राह्मण ने अपने जामात को घर मे छिपा लिया और समय निकलने लगा।

नागपूजा का दिन आया। सब स्त्रियाँ सर्प की बाँबी के पास जाकर नागपूजा किया करती थी। ब्राह्मण की पुत्री की सहेलियो ने उसे बाँबी पर चलने के लिए कहा। भोलेपन से उसके मुँह से निकल गया—"घर आयो नाग न पूजिए, बाँवी पूजन जाय"।[1] अर्थात् उसे नागपूजा के लिए बाँबी पर जाने की क्या आवश्यकता है जबकि उसके घर मे ही नाग आया हुआ है। इस प्रकार नासमझी मे रहस्य खुल गया और धीरे-धीरे यह चर्चा फैल गई।

गरुड खोज करते करते उसी गाव मे आए। उन्होने भी वहाँ फैली हुई चर्चा सुनी। ब्राह्मण पुत्री एक दिन कुँए से अपने सिर पर पानी के दो घडे (एक के ऊपर दूसरा घडा) रख कर घर आ रही थी। उसकी दोवड पर एक चिडिया (चीडी) आकर बैठ गई। ब्राह्मण की पुत्री ने उसे हाथ के इशारे से उडाना चाहा। इस पर चिडिया ने कहा—"वै चीडी और देखो, जिकी हरडदै उडज्ज्या।[2] अर्थात् वह चिडिया दूसरी ही होती है, जो हाथ की आवाज करते ही तत्काल उड जाती है। चिडिया ने आगे कहा—"मैं गरुड हूँ। तुमने तक्षक नाग को घर मे छिपा रखा है। मैं उसे पकडने आया हूँ।" तत्काल ब्राह्मण

1, 2 ये दोनो वाक्य कहावतो के रूप मे लोक प्रचलित हैं।

पुत्री ने उत्तर दिया—"यदि तुम गरुड हो, तो मेरा बल अपना सती धर्म है जिसके आगे ससार मे किसी की सामर्थ्य नही कि मेरे पति को कोई हाथ भी छुआ सके।" गरुड सती-धर्म की महिमा से अनजान न थे। उन्होने सारी स्थिति को जान लिया और ब्राह्मण पुत्री के आगे हाथ जोड कर बोले, "देवी तुम अपने पति को मेरे साथ भेज दो। मैं वचन देता हूँ कि उसका बाल भी बाका नही होगा।" तदनुसार तक्षकनाग गरुड के साथ जनमेजय के सम्मुख उपस्थित हुआ और गरुड ने वहाँ सारी स्थिति स्पष्ट करदी। फल यह हुआ कि तक्षक को क्षमा किया गया और नाग-यज्ञ बन्द हो गया।

नाग लोगो का 'आनुवशिक पावन प्रतीक' (टोटेम) भी नाग (सर्प) ही था। फलस्वरूप भारतीय कथा साहित्य मे बडा ही रगीन वातावरण उपस्थित हो गया है। जनसाधारण ने नाग (मानव) और सर्प (सरीसृप) को एक ही चीज मान लिया। नाग जाति अति प्राचीन है। इस जाति का आर्यो से प्राचीन काल से सम्बन्ध होता रहा है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दू सस्कृति के अध्ययन के उपादान' शीर्षक लेख[1] मे इस विषय मे उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है—'अनेक आर्य-पूर्व जातियो के साथ आर्य राजाओ और ऋषियो के विवाह सम्बन्ध का पता पुराने ग्रन्थो से चलता है। नाग सुपर्ण आदि जातियाँ दुर्दान्त पराक्रमी थी। पुराने ग्रन्थो मे नाग कन्याओ के साथ अनेक आर्य राजाओ और ऋषियो के विवाह की चर्चा मिलती है। इन विवाहो से उत्पन्न सन्ताने वैध होती थी। कद्रू पुत्र नागो के वश मे उत्पन्न अर्बुद नामक ऋषि ऋग्वेद के १० वे मण्डल के ९४ सूक्त के रचयिता बताये गये है। एक और मत्र-द्रष्टा ऋषि इरावत् के पुत्र जरत्कर्ण थे, जिन्हे सायण ने सर्प जाति का बताया है। नागो के प्रसिद्ध शत्रु माने जाने वाले जनमेजय के पुरोहित सोमश्रवा थे, जिनके विषय मे परिचय देते हुए उनके पिता श्रुतश्रुवा ने कहा था कि 'यह मेरा पुत्र नागकन्या के गर्भ से सम्भूत महातपस्वी, स्वाध्याय सम्पन्न और मेरे तपोवीर्य से उत्पन्न हुआ है।' पुराने ग्रन्थो मे इन नाग-कन्याओ का बहुत उल्लेख मिलता है। सम्भवत यह कन्याये अन्यान्य आर्येतर जातियो की कन्याओ से अधिक रूप-गुण सम्पन्न होती थी। आर्यो और नागो के साथ बहुत दिनो तक सघर्ष और सम्मिलन चलता रहा। बहुत बाद के इतिहास मे भी इन नाग राजाओ का परिचय मिलता है।"

कथा सरित्सागर मे वसुनेमिनाग द्वारा उदयन को वीणा, ताम्बूल और

---

1 विचार और वितर्क ग्रन्थ, पृष्ठ १४८।

कभी न मुरझाने वाली माला भेट किए जाने का प्रसग है।[1] साथ ही वसु-नेमि ने उदयन को कभी मलिन न होने वाले तिलक के लगाने की विधि भी समझाई थी। इन सबका कारण था किसी साँप को एक मदारी द्वारा पकडे जाने से वचाया जाना। वही साप अपने रक्षक उदयन के सामने वसुनेमिनाग के रूप मे प्रकट हुआ। इसी प्रकार के दृश्य अनेक लोक-कथाओ मे देखे जाते है। यह है कथा साहित्य का रगीन वातावरण।

राजस्थानी लोक-कथा का खुलासा इस प्रकार है कि तक्षक नाग ने गुप्त रूप से महाराजा परीक्षित का प्राणहरण किया। इससे क्रुद्ध होकर उनका पुत्र जनमेजय नाग जाति के सर्वनाश के लिए तत्पर हुआ। लोककथा के अनुसार सम्राट को इस सहारंपरणा की एक नारी ने शान्त किया और उसका वल था, उसका सतीधर्म। इतिहास, पुराण एव लोककथाओ मे नारी के कारण हुए महाविनाशकारी युद्धो के विवरण भरे पडे है परन्तु इस कथा की नायिका भयकर विनाशलीला को रोकने वाली प्रकट की गई है। यह सव उसके सतीत्व का फल है जिसका प्रभाव अपरिमित माना गया है। उसके द्वारा गरुड को दिया गया उत्तर महाभारत-कथा की उस सती नारी का स्मरण करवाता है जिसने कोप दृष्टि से वगुली को भस्म करने वाले सन्यासी को त्यौरी चढाते देखकर कहा था, "मुनिवर मै वगुली नही हू।"

इस लोककथा का उद्देश्य सतीधर्म की महिमा प्रकट करना है। राजस्थान सतियो एव जुझारो के देश के रूप मे विख्यात है। यहाँ गाँव-गाँव मे इनके 'स्थान' वने हुए है जिनको लोग आदर के साथ पूजते है। यही तत्त्व इस लोक-कथा मे समाया हुआ है। यह सव भारतीय लोक-सस्कृति की महिमा है।

---

1 वसुनेमिरिति ख्यातो ज्येष्ठो भ्रातास्मि वासुके ।
इमा वीणा गृहाण त्व मत्त सरक्षिततात्त्वया ॥
तन्त्री निर्घोषरम्या च श्रुति विभाग विभाजितम् ।
ताम्बूलीश्च सहाम्लानमाला तिलक युक्तिभि ॥
(कथा० २/१)

राजस्थान का लोकगीत "विनायक"

लोकगीत मे लोकहृदय का राग रहता है। उसमे एक व्यक्ति का नही वल्कि एक समुदाय का स्वर समाया हुआ मिलता है। किसी समाज के हृदय का परिचय पाने के लिए उसके लोकगीतो से बढकर दूसरा कोई साधन नही होता। लोकगीतो मे जनता के हृदय की सहज भावनाएँ अत्यन्त सरल रूप मे प्रकट होती है, उन मे किसी प्रकार की कृत्रिमता नही मिलती। लोक-गीतो की यह सबसे वडी विशेपता है।

राजस्थान लोक साहित्य का रत्नाकर है और यहाँ के लोक-गीत उसका एक परिपुष्ट अङ्ग है। राजस्थानी लोकगीतो के भी अनेक विभाग हैं। इनमे से सभी विभागों मे प्रचुर सामग्री प्राप्त है। अब तक राजस्थानी लोकगीतो के अनेक सग्रह प्रकाशित हो चुके है परन्तु केवल सग्रह की दृष्टि से भी अभी काफी काम होना बाकी पडा है। जितने लोकगीत प्रकाशित हुए है उन से कितने ही अधिक अभी तक केवल लोकमुख पर ही अवस्थित है और लिपिवद्ध किये जाने की प्रतीक्षा मे हैं। समाज की इस अमूल्य साहित्य-सामग्री को सुरक्षित किये जाने की परमावश्यकता है।

अभी तक जितने लोकगीत प्रकाशित हुए है, उनका सास्कृतिक अध्ययन भी नही हुआ है। लोक-गीतो पर गहराई से विचार करने से अनेक नई-नई बातें प्रकाश मे आती हैं। यहाँ तक कि उनमे प्रयुक्त कई शब्दो के पीछे भी वहुत कुछ छिपा रहता है। लोक-गीतो के वहुसख्यक शब्द विशेष विचार करने

पर जन-जीवन के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालते है । ऐसे एक शब्द के पीछे कुछ निगूढ तत्व मिलते है, जिन पर विचार किया जाना बडा उपयोगी है ।

इस लेख मे राजस्थान के एक लोक-गीत 'विनायक' पर कुछ विस्तार से चर्चा करने की चेष्टा की जाती है । भारतीय जनता प्रत्येक मागलिक कार्य के प्रारम्भ मे उसकी निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए विनायक का स्मरण करती है । यहाँ सभी कार्य गणेश-पूजा से प्रारम्भ होते है । वैवाहिक कार्यों को सुखद सम्पन्नता का तो पूरा भार गणेश पर ही रहता है । राजस्थान का 'विनायक' लोक-गीत यहाँ के वैवाहिक गीतो मे सर्वप्रथम है । इसके गायन के साथ विवाह-कार्य प्रारम्भ होता है । गीत कुछ बडा सा है और उसका ऐसा होना भी सकारण है, जो आगे प्रकट होगा । सर्वप्रथम मूलगीत हिन्दी अर्थ सहित प्रस्तुत किया जाता है । साथ ही विषय की स्पष्टता के लिए प्रसगानुसार गीत के विभाग[1] प्रकट कर दिए गए है और रूपान्तरो को कोष्ठो मे दिखलाया गया है ।

विनायक

१.　गढ रणतभँवर सै आवो विनायक,
करो ए नचीती विडदडी ।
विडद विनायक दोनू जी आया,
आय पवस्या सीळै वड तळै ।
बूजत बूजत नगर पहेठ्या,
पोळ वतावो लाडेला रै वाप की ।
ऊची सी मैडी लाल किंवाडी,
केळ झवरकै लाडेला रे वारणै ।

२.　पहलो तो वासो काकड वसियो,
काँकड निपजै मोठर वाजरो ।
(दूजो तो वासो सरवर वसियो,
सरवर भरियो ठडै नीर सै ।
भरियो तो सरवर लेवै हिलोळा,

1. 'राजस्थान के लोकगीत' प्रथम भाग मे इस गीत के दो विभाग कर दिए गए है और उनको दो गीत मान लिया गया है ।

नीर भरै जी पणिहारियाँ ।)
दूजो तो वासो बाडी जी बसियो,
वाडी भरी ए खिजूर सैं ।
फळ फूल वाडी सो फळ फळिया,
कुंजा जी मरवा केवडा ।
(अगणो तो बासो बड तळै वसियो,
बड नारेळा जी छाइयो ।)
अगणो तो वासो नगरी जी वसियो,
नगरी मे बैठ्या बामण-बाणिया ।
चोथो तो वासो तोरण वसियो,
तोरण छायो रूडी चिडकल्या ।
ये तो एवड-छेवड सात चिडकली,
विच हरियाळो जी सूबटो ।
ये तो चग-चग बोलै सात चिडकली,
इमरत बोलै हरियो सूवटो ।
पँचवो तो वासो फेरा जी वसियो,
फेरा मे बैठ्या लाडो-लाडली ।
म्हारी लाडली को चीर वधज्यो,
राईवर को वागो बीटळी ।
वधज्यो वधच्यो ए लाडी गोत तुमारो,
एक पिवर-दूजो सासरो ।
छट्ठो तो वासो थापै जी वसियो;
थापै मे बैठ्या देई-देवता ।
सतवो तो वासो ओवरै वसियो,
ओवरडो घी गुड भर्‌यो ।

२ एक कोथळडी जस देई विनायक,
लाडलै कै ताऊ-वाप नै ।
ये तो खाय खरचै सो धन विलसै,
जस रैवै परवार मे ।

एक बाहडली बळ देई विनायक,
लाडलै कै चाचै वीर नै ।
एक जीभडली जस देई विनायक,
लाडलै की दादी माय नै ।
ये तो मीठी सी बोलै नै कर चालै,
ज्यू सरसै परवार मे ।
एक भात मे जस देई विनायक,
लाडलै कै नानै-मामा नै ।
एक ग्रारतै जस देई विनायक,
लाडलै की भूवा–भेरण नै ।

४. एक गाजत घोरत ग्रावो बिनायक,
सावरिणयाॅ रै मेह ज्यू ।
एक भरचो–बथूलो ग्रावो विनायक,
बिरणजारै कै बैल ज्यू ।
एक माडयो–चूडयो ग्रावो विनायक,
सरव सुहागरण कै हाथ (सीस) ज्यू ।
ये तीन बसत निवारी विनायक,
पून ज पारणी बसन्नरा ।
एक ग्रळी–गळी मत जाई विनायक,
सीधो ई ग्राई सामी साळ मे ।

५. एक ग्रावै गूगळियाँ री वास सुगधी,
कूरण सुहागरण गरणपत पूजियो ।
गरणपत पूजै लाडेलै री माय सुहागरण,
जा धर विडद उतावळी ।

(१)

(हे विनायक, रणथभौर गढ से ग्राग्रो ग्रौर ग्राकर हमारे विवाह के कार्य को सर्वथा चिन्ता-रहित करो'।

वृद्धि ग्रौर विनायक दोनो ही ग्राए ग्रौर ग्राकर ठडे वड के नीचे ठहराव किया ।

वे नगर मे यह पूछते-पूछते प्रविष्ट हुए कि कोई हमे दुलहे के पिता की 'पोळ' (घर का प्रधान दरवाजा) बतलावे।

उन्हे ऐसा उत्तर मिला—"दुलहे के घर की 'मैंडी' ऊँची सी है, उसके किवाड लाल रग के है और दरवाजे के पास केला हवा मे लहलहा रहा है।"

(२)

उन्होने पहला ठहराव सीमान्त पर किया। वहाँ के खेतो मे मोठ और बाजरा प्रचुर मात्रा मे उत्पन्न होता है।

(उन्होने दूसरा ठहराव सरोवर के पास किया। वह सरोवर ठडे पानी से भरा हुआ है। उसमे लहरे उठ रही है और पनिहारिने जल भर रही है।)

उन्होने दूसरा ठहराव 'बाडी' (वाटिका) मे किया। बाडी खजूर से भरी पूरी है। उसमे अन्य भी नाना प्रकार के फल है और कुँज, मरवा तथा केवडा आदि फूले हुए है।

(उन्होनें अगला, अर्थात् तीसरा ठहराव वड के नीचे किया। वह वड नारियलो से छाया हुआ है।)

उन्होने अगला, अर्थात् तीसरा ठहराव नगरी मे किया। नगरी मे स्थान-स्थान पर ब्राह्मण और बनिये वैठे हुए हैं।

उन्होने चौथा ठहराव 'तोरण' के पास किया। 'तोरण' सुन्दर चिडियो से छाया हुआ है। उसमे इधर-उधर सात चिडियाँ है और बीच मे हरा सुग्गा है। वे चिडियाँ चहचहा रही है और वह सुग्गा अमृत वाणी बोल रहा है।

उन्होने पाँचवा ठहराव 'फेरो' मे (भावर) मे किया। वहाँ दुलहा और दुलहिन वैठे हुए है। हमारी दुलारी दुलहिन का 'चीर' (औढना) तथा 'राईबर' (दुलहै) का 'बागा' और 'बीटळी' (पगडी) वृद्धि को प्राप्त हो। हे दुलहिन, तुम्हारे पीहर और ससुराल के दोनो के ही 'गोत' (गोत्र) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो।

उन्होने छठा ठहराव 'थापे' के पास किया। 'थापे' मे समस्त देवी और देवता विराजमान है।

उन्होने सातवाँ ठहराव 'ओवरे' मे किया। 'ओवरा' गुड और घी से भरपूर है।

(३)

हे विनायक, दुलहे के ताऊ और पिता की 'कोथळी' (थैली) को यश

देना अर्थात् उसे सदैव भरी पूरी रखना। वे अपने धन का अच्छी तरह आनन्द लेवे, उसे खावे और खरचे, जिससे पूरे परिवार मे उनको यश प्राप्त हो।

हे विनायक, दुलहे के चाचा और भाइयो को भुजा का वल देना।

हे विनायक दुलहे की दादी और मा को जीभ सम्बन्धी यश देना। वे मधुर वाणी बोले और नम्रता का व्यवहार करे, जिससे पूरे परिवार मे सरसता का प्रचार रहे।

हे विनायक, दुलहे के नाना और मामो को 'भात' (मामेरा) मे यश देना।

हे विनायक, दुलहे की बूआ और बहिन को 'आरते' मे यश देना।

(४)

हे विनायक, सावन के मेघ के समान घोर गर्जना करते हुए आना।

हे विनायक, बनजारे के बैल की तरह सब प्रकार से भरे-पूरे होकर आना।

हे विनायक, सर्वसुहागिन स्त्री के हाथ जिस प्रकार मेहदी के 'माडनो' से सुन्दर बन जाते है, उसी प्रकार सब तरह से मडित होकर आना।

हे विनायक, पवन जल और अग्नि इन तीनो की बाधा का निवारण करना।

हे विनायक, इधर-उधर की गलियो मे न चले जाना, सीधे हमारे घर की सामने वाली 'साळ' मे ही आना।

(५)

गूगल की सुगन्ध फैल रही है। किसी सुहागिन ने गणपति की पूजा की है।

(दुलहे की माता सुहागिन गणपति की पूजा कर रही है जिसके घर मे वैवाहिक कार्य के लिए उतावली हो रही है।)

लोक-गीत के प्रथम विभाग मे विनायक का रणथभौर गढ से आह्वान किया गया है। रणथभौर का गणेश अत्यन्त प्रसिद्ध है, अत गीत मे इस स्थान के महत्व का प्रकाशन हुआ है। यह स्थान जिस प्रकार 'हठीले हमीर' के कारण प्रसिद्ध है, उसी प्रकार यहा के गणेश के लिए भी विख्यात है। लोकविश्वास मे गणेश वहा साक्षात् विराजमान रहते है। उनसे प्रार्थना की गई है कि वे स्वय पधार कर 'विडदडी' को चिन्ता रहित करे। लोक-गीतो

मे 'बिडद' का अर्थ सामान्यतया 'विवाह' लिया जाता है। वैसे 'बिडद विनायक' यह प्रचलित है। बोलचाल मे 'गणेश-स्थापना' को भी 'बिडद बिठावणो' कहा जाता है। विवाह का गणेश से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अत 'बिडद' शब्द विवाह के लिए प्रयुक्त होने लगा प्रतीत होता है। कुछ अन्य उदाहरण देखिए—

१. रुकमण, उठो धण करो सिणगार, थारै बाबुल घर रळी ए बधावणा। रामजी, झूठा थे झूठ न बोल, सावण मासा किसी जी बिडदडी। (दातण गीत)

२ कपडा तो बोलै दरजी घरा,
कद चडस्या परवार वनै रै अग बिडद बधावणा। (स्नान का गीत)

३. मा का रै जाया मेरै वेगो रै आए,
म्हा घर विडद उतावली। (भात का गीत)

'बिडद विनायक दोनू जी आया' प्रयोग मे 'बिडद' को सामान्यतया 'विरुद्ध' का विकसित रूप बतलाया जाता है। परन्तु यहा यह 'वृद्धि' का विकसित रूप प्रतीत होता है। बोलचाल मे 'वृद्धि' का विकसित रूप 'बिडद' है। गणेश के चित्र मे उनके दोनो तरफ दो स्त्रिया दिखलाई जाती है और उनको ऋद्धि तथा सिद्धि कहा जाता है। पुराणकथा के अनुसार गणेश का विवाह विश्वकर्मा की दो पुत्रियो सिद्धि और बुद्धि के साथ हुआ था, जिनसे उनको 'लक्ष्य' और 'लाभ' दो पुत्र प्राप्त हुए। स्पष्ट ही यह कथा प्रतीकात्मक है। यहाँ गीत मे प्रयुक्त 'बिडद' अर्थात् वृद्धि का अभिप्राय सिद्धि से लिया जा सकता है, जो सब प्रकार की सम्पन्नता पर आधारित रहती है और सम्पूर्ण गीत मे यही भाव व्याप्त है।

गीत के इसी भाग मे मार्ग पूछे जाने की चर्चा है। यह प्रसग राजस्थानी लोकगीतो मे स्थिर सा है और एक 'साहित्यिक अभिप्राय' वन गया है। प्रस्तुत गीत मे यह अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे प्रकट हुआ है।[1]

---

1 पूरे रूप मे यह प्रसग इस प्रकार देखा जाता है—
बूज्यो भँवरजी गाया रो गुवाळ, बूज्यो भँवरजी गाया रो गुवाळ,
ओजी राज, मारगियो वतावो म्हारै सुसराजी रो कूणसो जी राज।
बायो मारग जाळापर नै जाय, बायो मारग जाळापर नै जाय,
ओजी राज, सीधो तो जासी थारै सुसराजी रै देस नै जी राज।

'केळ भवरखै लाडेलै रै वारणै' प्रयोग सहज ही कालिदास के यक्ष के द्वारा मेघ के प्रति कहे गये।

इस वचन का स्मरण करवा देता है—

तत्रागार धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीय
दूराल्लक्ष्य सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्ते कृतकतनय. कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्य स्तवकनमितो वालमदारवृक्ष ॥ (मेघदूतम् २।१२)

लोकगीत के दूसरे विभाग मे राजस्थान की धरती और यहा के जनजीवन की विस्तृत भाकी प्रकट हुई है। इममे विनायक के विभिन्न सात 'वासो' (ठहरावो) का विवरण दिया गया है जिनमे 'बोल' की दृष्टि से अनेक रूपान्तर हैं। ये सात 'वासे' क्रमश काकड, वाडी, नगर, तोरण, फेरा, थापा और ओवरी है। इनके रूपान्तरो मे सरोवर तथा वड की चर्चा है। इममे यहा की धरती, वृक्ष, फल, फूल आदि का प्रसग तो आता ही है, साथ ही निवास स्थान, भोजन, वस्त्र, प्रथाएँ एव लोकविश्वासो तक की चर्चा हुई है। विवाह का तो लगभग पूरा ही रूप इस गीत मे प्रकट हुआ है।

ध्यान रखना चाहिए कि यह गीत वर और कन्या दोनो ही पक्षो से सम्वन्धित है परन्तु प्रधानता इसमे कन्यापक्ष की प्रकट हुई है। लडकी के

बूज्यो भँवरजी पाणी री पणिहार, बूज्यो भँवरजी पाणी री पणिहार,
ओजी राज, देस वताओ म्हारै सुसराजी रो कूणसो जी राज।
यो ई भँवर थारै सुसराजी रो देस, यो ई भँवर थारै साळांजी रो देस।
ओ जी राज, सालर थोडा जी सरवर भी घणा जी राज।
बूज्यो भँवरजी माळीडा रो पूत, बूज्यो भँवरजी माळीडा रो पूत।
ओ जो राज, वाग वतावो म्हारै सुसराजी रो कूणसो जी राज।
यो ई भँवर थारै सुसराजी रो वाग, यो ई भँवर थारै साळाजी रो वाग
ओ जी राज, आमा तो पाक्या निमु वा रस भरचा जी राज।
बूज्यो भँवरजी चेजारै रो पूत, बूज्यो भँवरजी चेजारै रो पूत,
ओ जी राज, पोळ वतावो म्हारै सुसराजी री कूणसो जी राज।
या ई भँवर थारै सुसराजी री पोळ, या ई भँवर थारै सुसराजी री पोळ,
ओ जी राज, केळा भवरखै थारै सुसराजी रै वारणै जी राज,
ओ जी राज, जाळी तो झिरोखा वारी झुक रया जी राज।
(जँवाई गीत)

विवाह मे 'लाडेला' की जगह 'लाडली' शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है। विनायक जहा कही 'वासा लेते' है, वही सुख, समृद्धि एव सम्पन्नता दिखाई देती है। यह उनके प्रभाव एव शक्ति की सूचक है। उनका एक 'वासा' तोरण के पास बतलाया गया है। राजस्थान मे इस प्रथा को विशेष महत्व प्राप्त है और इसे 'ढुकाव' कहा जाता है। तोरण मुख्यद्वार का नाम है परन्तु राजस्थान मे खाती के द्वारा अलकरण के रूप मे एक छोटा सा 'तोरण' इस अवसर के लिए बनवाया जाता है। उसके ऊपर काठ की बनी हुई सात चिडियॉ बिठाई जाती है और मध्य मे सुग्गे की आकृति रहती है। कही-कही सुग्गे के स्थान पर मोर दिखलाया जाता है। इनके अतिरिक्त फूल पत्तियो का अलकरण प्रकट किया जाता है। इस तोरण को दरवाजे के ऊपर लगा दिया जाता है और दुलहा इसे हरी डाली से छूता है, जिसे 'तोरण मारना' कहा जाता है। असल मे यह तोरण अथवा तोरण के देवता की वदना है। राजस्थान मे घर के प्रवेशद्वार की ताक पर गणेश प्रतिमा स्थापित करने की विशेष प्रथा भी हे। यह घर के आरक्ष-देवता की सूचक है। राजस्थान मे राजाओ अथवा ठाकुरो के यहाँ बरात आती थी तो कई बार 'तोरण' को गढ के प्रवेशद्वार पर बहुत ऊँचा जानबूझ कर लगा दिया जाता था, जिससे कि वर की शक्ति-परीक्षा हो सके। ऐसे अवसर पर वर अपनी घोडी को दूर से दौडाते हुए तोरण के पास ऊँची छलाग लगवाता था और तोरण को अपनी तलवार से छूता था। यही कारण है कि तोरण-वदना के स्थान पर जनसाधारण मे 'तोरण-मारना' प्रयोग प्रचलित हो गया। कही-कही प्रवेश-द्वार पर एक वृक्षाकृति भी खडी की जाती है। उसमे भी कृत्रिम सुग्गा और चिडिया बिठाई जाती हैं। इसे 'माणिक थभ' कहा जाता है। तोरण के पक्षी एव लता आदि 'वृक्ष-पूजा' की ओर सकेत करते है, जो भारतीय प्रजा मे प्राचीन काल से प्रचलित है। आरक्ष देवता यज्ञ का स्थान वृक्ष ही था और अब भी भारत मे और विशेष रूप से राजस्थान मे यज्ञपूजा परिवर्तित रूप मे प्रचलित है[1]। गणेश भी आरक्ष देवता के रूप मे ही पूजित है।

तोरण-वदना के बाद 'फेरे' होते है और तदनतर वर वधू 'थापे' के सामने ले जाए जाते हैं। 'थापा' विवाह के घर मे एक अलग स्थान पर बनाया जाता हे जिसमे दीवार पर 'मागलिक चिन्ह' अकित किया जाता है। यह देव-स्थापना है। यहाँ सभी देवी देवता विराजमान माने जाते है।

---

1. इस विषय मे 'वरदा' वर्ष २ अक २ मे विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा चुकी है।

इस प्रकार विवाह को यज्ञ का रूप मिलता है। इसमे भारतीय प्रजा का वैदिक जीवन कुछ परिवर्तित रूप मे प्रकट होता है। थापे का दीपक ज्योति, जीवन एव सत्य का प्रतीक है। वर वधू थापे के सामने 'धोक देते' है अर्थात् वन्दना करते है। विवाह के घर मे 'थापा' सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। 'रातीजगा' (रात्रिजागरण) भी थापे के पास ही होता है, जिसमे प्रधान रूप से देवी देवताओ सम्बन्धी गीत गाये जाते है। ध्यान रखना चाहिए कि इनमे उन 'लोक देवताओ' के गीत भी सम्मिलित है, जिनको जनसाधारण मे विशेष मान्यता प्राप्त है।

गीत मे सातवा और अतिम 'वासा' ओबरे मे बतलाया गया है। ओबरा (अपवरक) शब्द राजस्थानी लोकगीतो मे अनेकश देखा जाता है। इसका अर्थ शयनागार अथवा विशेष रूप से सजा हुआ कमरा होता है। उदाहरण देखिए—

१ उड रै म्हारा हरियल बन का काग,
जाय बोलो ठाकुर हर कै ओवरै। (दातणगीत)

२ लीप्यो–चाक्यो ओबरो जी माय बिछाई सेज।
(कातिग का हरजस)

३ अठवो तो मास गोरी धण मैं लाग्यो,
तो ओबरडै जिय जावै, ए म्हारी नई ए बिहायी।
(बिहायी गीत)

आजकल देहातो मे 'ओबरे' का एक नया रूप भी है, जिसमे घर का सामान रखा जाता है।

लोकगीत के इस अश मे प्रयुक्त 'राईवर' शब्द भी विशेष ध्यान देने योग्य है। राजस्थानी लोकगीतो मे दूलहे को 'राईवर' कहा जाता है। यह श्री कृष्ण का नाम है। लोक-गीतो के अनुसार 'राई' एक गोपी थी, जिसका श्री कृष्ण के साथ विवाह हुआ था[1]। परन्तु यह सामग्री लौकिक है। राई-दामोदर पद प्रसिद्ध है। दुलहे को श्रीकृष्ण का नाम देना विशेष महत्व-पूर्ण है।

गीत के तीसरे विभाग मे धनसम्पन्नता, भुजाबल, मधुर व्यवहार, पारस्परिक सहयोग एव सद् भावना की चर्चा की गई है और ये सब प्रदान

---

1. इस विषय मे 'वरदा' वर्ष ४ अक १ मे विस्तार से प्रकाश डाला जा चुका है।

करने के लिए विनायक से विनय की गई है। यहा परिवार का अत्यत उज्ज्वल एव सुखपूर्ण चित्र प्रकट हुआ है। यह भारतीय लोक-जीवन का आदर्श है, जो यहा वैदिक काल से चला आता है। राजस्थान के बहु-सख्यक 'वधावा' गीतो मे यही आदर्श प्रकट हुआ है[1]। इस मे एक ऐसे गृहस्थ जीवन की झाकी है, जो सब प्रकार से सम्पन्न, शक्तिशाली एव सौहार्दपूर्ण है। भारतीय गृहस्थ इसी आदर्श को प्राप्त करना चाहता है और इसी के लिए गीत मे विनायक से प्रार्थना की गई है, जो निम्न वैदिक मत्रो का स्मरण करवाती है—

> आब्रह्मन्, ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
> आराष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
> दोग्ध्री धेनु , वोढानड्वान्, आशु सप्ति , पुरन्धिर्योषा,
> जिष्णूरथेष्ठा , सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जातयाम् ।
> निकामे निकामे न पर्ज्जण्या वर्षतु ।
> फलवत्यो न ओषधय· पच्यन्ताम् ।
> योगक्षेमो न कल्पताम् । (यजु · २२।२२)

गीत के चतुर्थ विभाग मे विनायक के दो रूप बतलाये गये है। एक रूप मे वह 'गाजत घोरत' है और दूसरे मे 'भरयो-वथूलो' और 'माड्यो-चू ड्यो' है। प्रथम विनायक का कठोर रूप है और दूसरा उनका सौम्य रूप है। विनायक निघ्नकर्ता और विघ्नहर्ता दोनो है। विद्वानो ने गणेश के वर्तमान लोकपूजित रूप पर गहरी छानबीन की है। तदनुसार प्रारभ मे उनका क्रूर रूप था[2] और कालान्तर मे वे सौम्य रूप को प्राप्त हुए। राजस्थानी महिला-समाज की एक व्रतकथा मे एक स्त्री विनायक की मनौती बोल कर पुत्र प्राप्त करती है और फिर वह अपनी मनौती को पूरा नही करती तो विनायक उसके पुत्र को उठा कर ले जाते है और एक वृक्ष पर रख देते है। अत मे मनौती पूरी करने पर ही वह स्त्री अपना पुत्र प्राप्त कर पाती है। इस प्रकार विनायक के लिए 'गाजत-घोरत' का प्रयोग सार्थक

---

1 इस विषय में मरुभारती वर्ष ६ अक २ मे विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

2 डाकिन्यो यातुधान्यश्च, कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहा ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च, यक्षरोविनायका (भागवत १०।६।२८)

है । वे असन्तुष्ट होकर विघ्न पैदा करने वाले है और प्रसन्न होकर विघ्नो का नाश करने वाले है । इसीलिए गीत मे पवन, एव अग्नि के प्रकोप से बचाये रखने के लिए विनायक से प्रार्थना की गई है क्योकि इन बाधाओ को पार करना मनुष्य की शक्ति को देखते हुए महाकठिन है ।

गीत के अन्त मे गणपति-पूजा की चर्चा की गई है और गूगल की सुगन्ध फैली हुई प्रकट की गई है। यह पूजा दुलहे (अथवा दुलहिन) की माता करती है क्योकि उसके हृदय मे इस बात की बडी व्यग्रता है कि कही विवाह के कार्य मे कोई विघ्न न आ पडे । यह भारतीय नारी का परमोज्ज्वल रूप है । वह त्यागमयी है और तपस्यामयी है । उसकी तपस्या पर ही गृहस्थ जीवन का मगल आधारित है । वह स्वय तप कर प्रकाश प्रदान करती है । वह मगलकामना की साक्षात् देवी है । नारी का इससे अधिक सम्मान और क्या हो सकता है ।

इस प्रकार विचार करने से प्रकट होता है कि राजस्थान के 'विनायक' लोकगीत मे भारतीय सस्कृति के अनेक तत्व व्याप्त है ।

राजस्थान का लोकगीत 'पीलो'

प्रकृति सगीतमय है और लोकगीत प्रकृति के गीत है। उनमे लोक-गगा के हृदय का कलकल निनाद है। वहाँ रस है, मस्तिष्क का प्रपच नही। वहाँ परम स्वाभाविकता है, कृत्रिमता का नाम भी नही। लोकजीवन का अध्ययन करने के लिए लोकगीतो से उत्तम साधन कोई वस्तु नही। लोकगीत जनसाधारण के सुख दु ख के अकृत्रिम उद्गार है। जब जनता का हृदय तरग मे आता है तो लोकगीत की अवतरणा होती है। इस प्रकार लोकगीत के पीछे लोकहृदय का सामूहिक गान रहता है। ये गीत जन-मन के समवेत स्वर को वायुमडल मे भरते है। इनके साथ वायु भी गाने लगती है। यही कारण है कि लोकगीत अपना रूप बदल कर भी युगो तक चलते हैं और उनके आदि उद्गम् का पता नही लग सकता। न उनके कर्त्ता का ही ज्ञान हो सकता है क्योकि उनके पीछे जनता का सामूहिक कर्तव्य इस रूप मे रहता है कि वे किसी व्यक्ति द्वारा जनता जनार्दन को भेट स्वरूप प्राप्त होकर जनता की ही वस्तु बन जाते है। लोकगीतो का अधिकार क्षेत्र भी लोक-हृदय बनता है।

हमारा भारत भी कई जनपदो मे विभक्त है और इसके प्रत्येक जनपद की कुछ अपनी विशेष्ताएँ भी है। फिर भी सारे देश का समवेत स्वर एक ही है। भारतीय सस्कृति एक है। हमारे पूर्वज अति प्राचीन काल से जो पुनीत सास्कृतिक निधि सचित करते चले आ रहे है उसपर सबका समानाधिकार है। वह प्रत्येक जिज्ञासु विदेशी के लिए भी सुलभ है। भारत गावो का देश है। इस गावो के देश के गीत भी निराले है। इन गीतो मे भारतीय

सस्कृति रमी हुई है। लोकगीतो की यही सबसे वडी महिमा है। प्रत्येक जनपद का अर्न्तनाद एक ही है और यही कारण है कि भारतीय लोकगीत भी एक प्राण है। हमारे देश के ये गीत हमारे प्राचीन मनीषी जीवननिर्माताओ के सुर मे सुर मिलाकर बोलते है।

राजस्थान लोकगीतो का भण्डार है। यहाँ हर प्रकार के एव हरेक अवसर के अगणित लोकगीत प्रचलित है। इस जनपद मे ऐसे लोगो की भी बहुत वडी सख्या है, जिनका पेशा ही विविध प्रकार के लोकगीत गाना है। यहाँ के लोकगीत बहुत वडे एव बहुत छोटे दोनो प्रकार के हैं। बहुत से लोकगीत महिलाओ के गाने के है और बहुत से पुरुषो के। यहाँ धार्मिक, ऐतिहासिक सभी प्रकार के प्रचुर गीत लोक-प्रचलित है, इन सव का समुचित परिचय देने के लिए एक विशाल ग्रन्थ की आवश्यकता है। अभी तक राजस्थानी लोकगीतो की एक झलक सी ही दिखाई गई है। इनके समुचित सकलन सम्पादन के लिए कठोर तपस्या की जरूरत है। इस लेख मे राजस्थानी महिलाओ के एक गीत की सास्कृतिक विशेषता पर विचार किया जाता है। इस गीत का नाम "पीळो" है और यह राजस्थान का मागलिक गीत है।

राजस्थान मे पीळो शब्द का सामान्य अर्थ "पीले रग का" है। परन्तु यहाँ इस शब्द का अर्थ कुछ विशेष है पीळो[1] राजस्थानी महिलाओ के ओढने के उस वस्त्र का नाम है जिसे केवल पुत्रवती स्त्रियाँ ही ओढती हैं। राजस्थानी महिलाओ के ओढने कई प्रकार के होते है। उनके नाम पीळो, पोमचाँ, चूनडी, लैरियो,[2] धनख, इकरग, पँवरी डुपट्टो, धनसवाण, रूपेरी आदि है। इनमे भी रग, बँधाई एव छपाई के हिसाव से कई प्रकार के होते है। राजस्थान मे इनसे सम्वन्ध रखने वाले लोकगीत भी वहुत गाये जाते है। उन लोकगीतो के नाम भी वे ही है जो कि वस्त्रो के है। जैसे चूनरी सवल्यो ही कहलाती हैं। इसी तरह लेरियो गीत सम्वन्धी जनगीत लैरियो कहा जाता है। इन सव मे पीलो और चूनडी के पीछे जन-जीवन की झाँकी है। पुत्रवती स्त्री पीलो ओढती है। भात के समय भाई अपनी वहिन को चूनडी ओढाता है। सावण मे हर

---

1 (प्रकृत रूप, कम से कम मेवाड मे तो, इस शव्द का पीळो नही पीळियो है। पीळो शव्द गुण वाचक विशेषण मात्र है उसमे सज्ञा वनाने के लिए इयो प्रत्यय जोड जाना हमारे विचार मे राजस्थानी व्याकरण के अनुसार आवश्यक है।)

2 (शुद्ध प्रकृति रूप लहरियो। पृ० मे०)

राजस्थानी महिला 'लैरियो' ओढना चाहती है। पुत्रजन्म के पूर्व 'पोमचो' ओढ़ा जाता है। इन वस्त्रो की बँधाई एव छपाई तथा रगाई भी एक कला है। यह कला राजस्थान की एक विशेष चीज है। साथ ही राजस्थान का यह एक प्रमुख गृह भी है।

सबसे पहले यहाँ राजस्थान का लोकगीत पीळो हिन्दी सहित प्रस्तुत किया जाता है। इस गीत की धुन भी इसी के नाम पर है। पूरा गीत इस प्रकार है।

(१)

साँवण वाडी बाइया जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, भादूडै करचो छे निनाण जी,
वाई का वीरा, पीलो धण नै केशरी रँगाद्यो जी ।।१।।
आस्योज वाडी फूल भरी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, कातिग करचो छे कपास जी,
वाई का बीरा, पीलो धण नै नारगी रँगाद्यो ।।२।।
लोढणहालो लोढगो जी गडमारू जी,
गुण सायर ढोला, पीनी चतरसुजान जी,
वाई का बीरा, पीलो धण नै केसरी रँगाद्यो जी ।।३।।
कात्यो छै नानी मावसी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, माय अटेरचो छै सूत जी,
बाइ का वीरा, पीलो धण नै केशरी रँगाद्यो जी ।।४।।
ताणो तो तणियो मेडतै गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, नळा ए भरचा अजमेर जी,
वाई का बीरा, पीलो धण नै नारगी रँगाद्यो जी ।।५।।
बणियो तो गड तलहटी जी गडमारू जी,
सुण सायर ढोला, रगियो तो जैसलमेर जी,
वाई का वीरा, पीलो धण नै केशरी रँगाद्यो जी ।।६।।
माय लखीणी बूँदडी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, जीरै हदी भात जी,
वाई का वीरा, पीलो धण नै नारगी रँगाद्यो जी ।।७।।
अल्ला तो पल्ला घूघराजी गडमारू जी,

गुणसायर ढोला, विघ विच चाद छपाय जी,
वाई का वीरा, पीलो घण नैं केशरी रँगाद्यो जी ॥८॥
रग्यो-रँगायो म्हे सुण्यो गठमारू जी,
गुणसायर ढोला, जच्चा कै महल पहुचाय जी,
वाई का वीरा, पीलो घण नैं नारगी रँगाद्यो जी ॥९॥

(२)

हरिए किसव को घाघरो जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, चणनूठ्या रो चीर जी,
वाई का वीरा, पीलो घण नैं केशरी रँगाद्यो जी ॥१०॥
गल मैं कसूमल काचवो जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला ग्रौर मोतियन का हार जी,
वाई का वीरा, पीलो घण नैं नारगी रँगद्यो जी ॥११॥
पँ'र ग्रोढ जच्चा नीसरी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, सहर बिसाऊ कै वजार जी,
बाई का वीरा, पीलो धण नैं नारगी रँगाद्यो जी ॥१२॥
लोग महाजन पूछियो जी गडमारू जी,
गुण सायर ढोला, कुण्या जी री कुलबहू जाय जी,
वाई का बीरा, पीलो घण नै नारगी रँगाद्यो जी ॥१३॥
सुसरा जी री जच्चा कुळवहू जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, कोटण समधी री धीय जी,
वाई का बीरा, पीलो धण नैं केशरी रँगाद्यो जी ॥१४॥
रामलाल घर चँदरावली जी गड मारू जी,
गुणसायर ढोला, छोटै गोगै री माय जी,
बाई का बीरा, पीलो घण नैं नारगी रँगाद्यो जी ॥१५॥
हाट मोही हटवा मोह्या जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, वलद गुमाया झेदू जाट जी,
वाई का बीरा, पीलो घण नैं केशरी रँगाद्यो जी ॥१६॥
लेखो तो करता कायथ मोह लिया जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, सरवर मोही पणिहार जी,

बाई का वीरा, पीलो धण नै नारगी रँगाद्यो जी ।।१७।।
राजा की राणी यू ँ कवै जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, जच्चा की बणस्या म्हे भाण जी,
बाई का वीरा, पीलो धण नै केशरी रँगाद्यो जी ।।१८।।
जच्चा की कूख सुलाखणी जी गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, नित उठ जलमै या पूत जी,
बाई का वीरा, पीळो धण नै नारगी रँगाद्यो जी ।।१९।।
जलवा तो पूजार पाछी वावडी जी, गडमारू जी,
गुणसायर ढोला, लागै सासू जी कै पाय जी,
बाई का बीरा, पीळो धण नै केशरी रँगाद्यो जी ।।२०।।
सीळी हो ए सपूतियाँ जी गडमारू जी,
बाई की भाभी, नित उठ जणज्यो थे पूत जी,
बाई का वीरा, पीळो धण नै केशरी रँगाद्यो जी ।।२१।।

हिन्दी भावार्थ

(१)

सावण मास मे खेत मे वीज डाला गया और भाद्रपद मे उसे निराया गया । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग के पीले ओढने का वडा चाव है । हे मेरी ननद के भाई, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।१।।

आश्विन मे खेत मे फूल निकले और कार्तिक मे कपास तैयार हुआ । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, हे मेरी ननद के भाई, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।२।।

कपास लोढने वाले ने कपास लोंढी और चतुर सुजान ने उसकी पिनाई की । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का ओढना मँगवा दो ।।३।।

नानी और मौसी ने उसकी कताई की तथा माता ने सूत को अटेरा । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।४।।

मेडते मे उसका ताना तना गया और उसकी नाळ अजमेर में भरी गई । हे मेरे गुणी एव चतुर पति मुझे केशरी रग का पीला ओढ़ना मँगवा दो ।।५।।

वह गढ (चित्तौड) की तलहटी मे वुना गया और जैसलमेर मे उसकी रँगाई हुई। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥६॥

उसमे लखीणी वूँदो की वँधाई हुई वह जीरे की भाँति का तैयार हुआ। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥७॥

उसके पल्लो पर घुघरू लगाए गए और उसके वीच के भाग मे चाँद वनाए गए। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥८॥

पीळा तैयार होकर आया और उसे चच्चा के महल मे पहुचाया गया। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥९॥

(२)

हरे रग का घाघरा पहिना और पीले रग का ओढना ओढा। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥१०॥

कसुमल रग की (लाल) काचली पहिनी और गले मे मोतियो का हार पहिना। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥११॥

जच्चा वस्त्राभूपण धारण करके तैयार हुई और वह जलाशय पूजन के लिए अपने शहर के वाजार मे होकर वाजे तथा मगल गीत के साथ (जलवा के लिए) निकली। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥१२॥

महाजन लोगो ने उसे देखकर पूछा, यह किसकी कुलवधू जा रही ? हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥१३॥

यह अपने श्वसुर की कुलवधु है और कोट वाले समधी की वेटी है। हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥१४॥

यह अपने पति की चन्द्रावली है और छोटे शिशु की माता है। मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ॥१५॥

उसे देखकर दुकाने प्रसन्न हो गई, दुकानदार प्रसन्न हो गए और जाट इतना प्रसन्न हुआ कि उसे अपने वैलो तक की सुध न रही

और वे कही खोए गए । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।१६।।

उसे देखकर हिसाब की फैलावट करते हुए कायस्थ प्रसन्न हो गए और कुए की पनिहारियाँ प्रसन्न हो गई । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।१७।।

राजा की रानी ने उसे देखकर कहा, मैं जच्चा की (धर्म) बहिन बनूँगी । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।१८।।

इस जच्चा की कूख सुलक्षणवती है । यह हर समय पुत्र को जन्म देती है । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे नारगी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।१९।।

जच्चा जलाशय का पूजन करके वापिस घर आई और उसने अपनी सास के चरण छूए । हे मेरे गुणी एव चतुर पति, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।२०।।

उसकी सास ने कहा तेरा चित्त सदा प्रसन्न रहे । (मूल मे शब्द 'सीकी' पडा है जिसका जो सभवत सस्कृत शीलवती बनादे स०) तू सुपुत्रवती हो । हे मेरी बेटी की भावी, तू सदा पुत्र को ही जन्म देना । हे मेरी ननद के भाई, मुझे केशरी रग का पीला ओढना मँगवा दो ।।२१।।

इस लोकगीत के दो भाग है । पूर्वार्द्ध मे पीलो ओढने की सारी प्रक्रिया कपास की बुनाई से लेकर उसके गोटा किनारी लगाने तक का पूरा विवरण दिया है । उत्तरार्द्ध मे उसे ओढ कर प्रसूना के जलाशय पूजन का वर्णन है, जो कि राजस्थान का एक प्रसिद्ध एव महत्वपूर्ण लोकाचार है । विषय-वर्णन गीत की महत्ता के अनुसार ही है । मेडता, अजमेर, गढ तथा जैसलमेर के साथ पीळो ओढने का सम्बन्ध दिखाकर राजस्थान जनपद का एकात्म्य प्रकट किया गया है । जलाशय पूजन के लिए जाते हुए प्रसूता की साज सज्जा को देखकर लोगो का प्रसन्न होना इस विषय की सर्वजनोपयोगिता प्रकट करता है । इसमे भारतीय जीवन का उच्चादर्श है, "न रूप पापवृत्तए" राजा की रानी तक पुत्रवती को देख उसकी बहिन बनने की अभिलाषा करती है । गीत मे ढोला एव चन्द्रावली शब्द व्यक्तिवाचक होकर भी जातिवाचक के रूप मे प्रयुक्त हुए है । राजस्थान मे ढोला एव चन्द्रावली के जीवन के गीत भी बहुत ज्यादा गाये जाते है । इनके व्यक्तित्व की विशेषता के कारण ये नायक

और नायिका के रूप मे प्रयुक्त हुए है। गीत के बाडी, बीरो, धरण, बून्दी, चरणतूठियो, काचवो, जलवा आदि शब्दो मे राजस्थानी जनजीवन का राग है।

राजस्थान मे पीलो नामक यह एक ही गीत नही है। यहाँ इस नाम के विविध ढालो मे अनेक गीत है। उनका विषय वर्णन भी लगभग एक ही है। यहाँ उनमे से कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है जिससे कि राजस्थानी जनता ने इस विषय को कितना महत्वपूर्ण माना है इसका कुछ अनुमान हो सके।

(१)

दिल्ली ए सहर सै सायबा पोत मँगावो जी,
तो हाथ इकीसी गज बीसी गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥१॥

दिल्ली ए सहर सै सायबा मोडी बुलावो जी,
तो नान्ही-सी बूदी बँधावो गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥२॥

अल्ला तो पल्ला सायबा मोर पपैया जी,
तो बिच बिच चाँद छपावो गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥३॥

राय आगरण विच सायबा रणी ए घलावो जी,
तो छज्जा की छाँय रँगावो गडमारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी॥४॥

आप सरीसा दोय छैल बुलावो जी,
तो दे फटकार सुकावो गड मारू जी,
पीळो रँगाद्यो जी ॥५॥

रँग्यो ए रँगायो सायबा होयो ए सँजोतो जी,
तो जच्चा कै म्हैल पूँचावो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥६॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा पाटै पर बैठी जी,
तो द्योर–जिठाण्या मुखडो मोड्यो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी॥७॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा पाटै पर बैठी जी,
तो सास नणद भोत सरायो गड मारू जी,
पीळो भल ओढो जी॥८॥

के बहुअड धारी माव रँगायो जी,
तो के ननसालाँ सैं आयो वहुअड म्हारा जी,
पीळो भल ओढो जी ॥९॥

ना सासू जी म्हारी माय रँगायो जी,
तो ना ननसाळा सैं आयो सासू म्हारा जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१०॥

सासू को जायो नणद बाई को बीरो जी,
तो पीळो म्हारो मनभरियो रँगायो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥११॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा सरवर चाली जी,
तो सगळो सहर सरायो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१२॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा म्हैल पधारी जी,
तो पीळो म्हारो मारू जी सरायो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१३॥

पीळो तो ओढ म्हारी जच्चा म्हैल पधारी जी,
तो कूण निरासी नजर लगाई जच्चा म्हारी जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१४॥

आख्याँ ना चोधै म्हारी जच्चा मुखडै ना बोले जी,
तो जच्चा को राजन बिलख्यो डोलै गडमारू जी,
पीळो भल चोढो जी ॥१५॥

दिल्ली ए सहर सैं सायबा बैद बुलावो जी,
तो जच्चा को हाथ दिखावो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१६॥

झाडै तो झाडै सायबा म्हारे रुपैया जी,
तो हाथ दिखाई म्हारे पचासा गड मारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१७॥

आप चढण को सायबा घुडलो बकसावो जी,
तो जच्चा कै जी की बधाई गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१८॥

आख्या भी चोधै म्हारी जच्चा मुखडै भी बौले जी,
तो जच्चा को राजन हरख्यो डालै गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥१९॥

तूँ छै बैदण का बेटा असल ठगोरो जी,
तो म्हारो भोलो सो राजिन ठग लीन्यो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥२०॥

तूँ छे साजन की बेटी असल चिरताळी जी,
तो छल कर बैद बुलायो जच्चा राणी ए,
पीळो भल ओढो जी ॥२१॥

इण बैदा नै सायबा सीख दिरावो जी,
तो जतॉ नै मेडतो बकसावो गडमारू जी,
पीळो भल ओढो जी ॥२२॥

(२)

धण बोलै ढोलो सुणै जी,
सुण म्हारा भँवर सुजान ।
मोय चनणूठ्यॉ री मन रली जी,
लेद्यो म्हारी लाल नणद रा बीर ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन बसै जी ॥ १ ॥

गै'ली ए मूरख बावली जी,
थे धण असल गँवार ।
बिन जार्या क्यूँ ओढिया जी,
हँसै ए महाजन लोग ॥
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायव,
म्हारै मन वसै जी ॥ २ ॥

मन कुमली म्हैला चढी जी,
हरख नही मन माय ।
राजिन मानी नही बीनती जी,
तो झट जलम्या ए म्हारी माय ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ३ ।।

कुण्या रै आगै बीनती जी,
कूण सुणैगो पुकार ।
कुण्या रै आगै बीनती जी,
तो कूण सुणैगो पुकार ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ४ ।।

वेमाता आगै बीनती जी,
राम सुणैगो पुकार ।।
वेमाता आगै बीनती जी,
तो राम सुणैगो पुकार ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ५ ।।

सूती छी सुख नीद मैं जी,
तो सुपनो भयो ए जजाल ।।
सूती छी सुख नीद मैं जी,
तो सुपनो भयो ए जजाल ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ६ ।।

साळा रै देख्या सोवन साथिया जी,
तो आगण पूरचो जी चौक ।
गोदी मैं देख्यो गीगलो जी,
तो सिर चनणूठ्या रो जी चीर ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ७ ।।

ये नो ये दस लागिया जी,
होई ए होलरिया री आस ।
पुन्यू तो पछै पड़वा च्यानणी जी,
जायो घण लाडण पूत ।।
यो चनणूड्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ८ ।।

म्हे चनणूठ्यो गोरी लायस्या जी,
थे म्हानै भाँति वताय ।
म्हे चनणूठ्यो गौरी लायस्या जी,
तो थे म्हानै भात बताय ।।
यो चनणूठ्य जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ९ ।।

ताणो तो तणियो मेडतैं जी,
नळा ए भरचा अजमेर ।
बणियो तो गढ री तलहटीजी,
तो रँगियो सायब जैंसलमेर ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन वस्यो जी ।। १० ।।

अल्ला तो पल्ला घूघरा जी,
विच विच चाद छपाय ।
माय लखीणी बूँदडी जी,
तो जीरैं हदी जी भात ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायव,
म्हारै मन वस्यो जी ।। ११ ।।

हरिए किसव को घाघरो जी,
सिर चनणूठ्यो रो चीर ।
गळ मैं कसूमल काचवो जी,
तो गळ मोतियन को जी हार ।।
यो चनणूठ्या जी केसरिया ओ सायव,
म्हारै मन वस्यो जी ।। १२ ।।

पैर ओढ जच्चा नीसरी जी,
सहर विसाऊ कै वजार ।
लोग महाजन पूछियो जी,
तो कूण्या जी री कुळबहू जाय ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायव,
म्हारै मन वस्यो जी ।। १३ ।।
सुसरा जी री कुल वहू जी,
कोटण समधी री धीय ।
रामलाल घर चँदरावळी जी,
तो छोटै गीगै की जी माय ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायव
म्हारै मन वस्यो जी ।। १३ ।।
हाट मोही हटवा मोह्या जी,
सरवर मोह्या जी हस ।
लेखो तो करता कायथ मोह लिया जी,
तो वलद गुमाया भेदू जाट ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायव
म्हारै मन वस्यो जी ।। १५ ।।
राजा की राणी यूँ कवै जी,
जच्चा की वणस्या म्हे भाण ।
जच्चा की कूख सुलाखणी जी,
जो नित उठ जलमैगी पूत ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायव,
म्हारै मन वस्यो जी ।। १६ ।।
जळवा तो पूजर पाछी वावडी जी,
लागै सासू जी कै पाय ।
सीली तो हो ए सपूतिया जी,
तो नित उठ जणज्यो थे पूत ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायव,
म्हारै मन वस्यो जी ।। १७ ।।

मन हरखी म्हैला चढी जी,
हरख घणो मन माय ।
राजिन मानी म्हारी वीनती जी,
तो भल जलस्या ए म्हारी माय ।।
यो चनणूठ्यो जी केसरिया ओ सायब,
म्हारै मन बस्यो जी ।। १८ ।।

इनके अतिरिक्त और भी कई लय मे ये गीत गाये जाते है । इन गीतो के बोल प्राय समान ही रहते है फिर भी इनकी धुने कई प्रकार की होती है । यह लोक सगीत की विशेपता है । एक पीलो गीत राजस्थान के प्रसिद्ध लोक गीत "कू जा" की लय पर है । उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

धण बोलै ढोलो सुणै जी,
सुण म्हारा भँवर सुजान ।
म्हे चनणूठ्या री मन रळी जी,
लेद्यो नणद वाई रा वीर ।।
भँवर पीळो हळदी को ल्याद्यो जी,
चतर पीळो केसरिया ल्याद्यो जी ।। १ ।।

इसी प्रकार एक पीलो लोक गीत राजस्थान के डफ की राग पर भी गाया जाता है । उसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है ।

पहलो मास गोरी धण नै लाग्यो
दूजो मास प्यारी धण नै लाग्यो
वालभोल जिय जावै रसिया
पीलो हलदी को,
पीलो हलदी को रगाद्यो जी वालम रसिया
पीलो हलदी को ।। १ ।।

राजस्थान का एक पीलो लोक गीत यहा के प्रसिद्ध गीत घूघरी की राग मे गाया जाता है । उसके प्रारम्भ के बोल इस प्रकार है—

घर घर मारूजी गावै छै गीत,
अनोखो पीलो म्हे सुण्यो जी म्हारा राज ।
घर घर सायधण जाया छै पूत,
कोई थे धण जाई डीकरी जी म्हारा राज ।

एक ही लोकगीत का इतनी ढालो मे गाया जाना प्रकट करता है कि इसमे राजस्थानी महिला समाज का कितना गहरा आकर्षण है। असल मे यह लोकगीत राजस्थानी नारी का शुद्ध स्वाभाविक उद्‌गार हैं। इसके साथ ही प्रसूता एव नवजात शिशु के सम्बन्ध मे भी बहुत बडी सख्या मे लोकगीत प्रचलित है। ये सब ऊँची श्रेणी के मागलिक गीत है। इनमे भी जो शिशु सम्बन्धी गीत हैं उनमे तो रस की धारा बडी ही वेगवती है। जब ये गीत गाये जाते है तो मानो वात्सल्य रस का प्रवाह सा उमड पडता है। बडे-बडे कवियो के बाललीला सम्बन्धी काव्य मे भी वैसी रसधारा मिलनी कठिन है। यही जनकाव्य की सब से बडी विशेषता है। इन गीतो मे हमे लोक सगीत का अमृत पीने को तो मिलता ही है साथ ही लोक हृदय का उज्ज्वल चित्र भी प्रत्यक्ष होता है। मानव हृदय-तत्री के अत्यन्त सुकोमल तार इन गीतो की धुनो मे झकृत होते हे। ये सब गीत राजस्थानी महिला समाज के पीलो नामक गीत से सम्बन्धित है क्योकि इस गीत मे नारी समाज की अन्यतम कामना फलवती होती है।

इस गीत मे भारतीय नारी के अन्तरतम की अभिलाषा प्रगट हुई। वह कुलवधू बनना चाहती है, वह माता का गौरवमय पद पाना चाहती है। पुत्रवती बनना ही उसके जीवन की चरम सफलता है। पूर्व और पश्चिम का यही विभेद है। पश्चिम की नारी परम सुन्दरी बनना चाहती है। उसके लिए वधु एव माता बनना उतना महत्व नही रखता। इसके विपरीत भारतीय नारी के अन्तरतम की अभिलाषा है, मातृपद पाना। भारतीय नारी की इसी अभिलाषा का प्रतीक है "पीलो ओढना।" वह अपना सर्वाधिक सौन्दर्य भी पीलो ओढने मे ही अनुभव करती है। यही इस लोकगीत मे भी प्रकट हुआ है। जब जच्चा पीलो ओढ कर जलाशय पूजन के लिए जाती हे, तो सभी उसे देख कर परम प्रसन्न होते है। इससे भारतीय प्रजा के हृदय की भावना प्रकट होती हे। यही भावना भारतीय साहित्य मे भी स्थान-स्थान पर प्रकट की गई। साहित्य समाज का दर्पण होता है। नीचे इस विषय के उदाहरण देखिए। थोडे से शब्दो मे कितनी गहरी बात कही गई है—

माता भवतु समना —अथर्ववेद
मातृदेवो भव —तैत्तिरीयोपनिषद्
या देवो सर्वभूतेषु मातृरूपेण सस्थिता—दुर्गासप्तशती

भारत के विधि निर्माता मनु ने भारतीय नारी का जो यशोगान किया है उसके पीछे भी भावना काम कर रही है। यह यशोगीत भारतीय सस्कृति के प्राणो का स्पन्दन है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतान्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया ।।
तस्मादेता' सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनै. ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्य सत्कारेषुत्सवेषु च ।।
सतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यास्पन्नेव कुले नित्य कल्याण तत्र वै ध्रुवम् ।।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमास न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात्यपुन पु स प्रजन न प्रवर्त ते ।।
स्त्रियाँ तु रोचमानाया सर्व त द्रोचने कुलम् ।
तस्या त्वरोचमानायाँ सर्वमेय न रोचते ।।

साथ ही मनु के निम्न वचन भी इस विषय मे विशेष ध्यान देकर मनन करने योग्य है ।

एतावानेव पुरुषा यज्जायाऽऽत्मा प्रजेति है ।
विप्रा प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृतागना ।।
ऋणानि त्रीण्ययाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्ष तु सेवामानो व्रजत्यध. ।

ऊपर कहा गया है कि भारत का समवेत स्वर एक ही है । जो विचार धारा हमारे साहित्य मे प्राचीन काल से चली आ रही है, उसी की राग अब भी भारतीय प्रजा गाती है । भारत के सभी जनपदो के लोक गीत इस दृष्टि से एक प्राण है, ऊपर पोली गीत के विविध रूपो मे भारतीय नारी की जो अमर अभिलाषा रमी हुई है उसकी गू ज सारे देश मे पाई जाती है । पुत्र की कामना के गीत भारत के सभी जनपदो मे मगल के साथ गाये जाते है । यहाँ इस विषय मे एक उदाहरण आगे प्रस्तुत किया जाता है ।

उत्तर प्रदेश का एक लोग गीत देखिए । इस गीत की वस्तु के अनुसार एक भारतीय नारी पुत्र की कामना से तपस्या करती है और फिर अपनी मनोकामना सिद्ध करती है । इस गीत का भाव बडा गभीर है । पूरा गीत इस प्रकार है—

गगा जमुनवाँ के बिछवा,
तेइवयाँ एक तपु करइ हो ।
गगा अपनी लहर हमे देतिउ,
मैं माँझाधार डूवित हो ।।१।।

की तोंहि सास ससुर दुख,
कि नैहर दूरि बसै ।
तेवई की तोरे हरि परदेस,
कवन दुख डूबउ हो ।। २ ।।
गगा ना मोरे सास ससुर दुख,
नाही नैहर दूरि बसै ।
गगा ना मोरे हरी परदेस,
कोखि दुखि दुख डुबब हो ।। ३ ।।
जाहु तेवइया घर अपने,
हम न लहर देवर हो ।
तेवई आजु के नवए महिनवा,
होरिल तोरे होई है हो ।। ४ ।।
गगा गहवरि पिअरी चढउबे,
होरिव जब होइ है हो ।
गगा देहु भगीरथ पूत,
जगत जस गावइ हो ।।५ ।।

लोकगीत भात का सांस्कृतिक अध्ययन

लोकगीतो मे जनजीवन का स्वाभाविक एव सरल रूप प्रकट होता है। वहा किसी प्रकार की कृत्रिमता का निशान भी नही रहता। अत किसी प्रदेश की जनता के हृदय को पहिचानने के लोकगीत उत्तम साधन सिद्ध होते है। ऐसे गीतो मे लोक हृदय की आशा-अभिलाषा, चाव-उमग एव दु ख-दर्द आदि सभी कुछ परिलक्षित होते है।

राजस्थान तो लोकगीतो का रत्नाकर है। यहा अगणित लोकगीत है। साथ ही उनमे रूप तथा विषय की दृष्टि से वैविध्य भी है। इसी प्रकार विवाह के गीतो की सख्या भी काफी बडी है। वैवाहिक आयोजन से सम्बन्धित एक भी ऐसा दस्तूर नही, जिसके विषय मे एक अथवा अनेक गीत न हो। सभी परम्पराए गीत गाकर पूर्ण मागलिक रूप मे निभाई जाती है।

विवाह के गीतो मे ही एक विशिष्ट वर्ग 'भात' के गीतो का है। भाई अपनी बहिन के पुत्र अथवा पुत्री के विवाह के समय भात भरता है। भात भरना बडा ही पुण्य कार्य माना गया है। इस अवसर पर भाई अपनी बहिन को वस्त्र, आभूषण एव रुपये आदि भेट करता है। राजस्थानी गृहस्थ जीवन मे यह एक विशेष अवसर है। इसके सम्बन्ध मे अनेक लोकगीत प्रचलित है। ये गीत बडे ही सरस तथा मार्मिक है। इनमे से एक गीत का सास्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। यह गीत कुछ बडा सा है और भात भरने का अच्छा

चित्र प्रकट करता है। साथ ही इसमे साधारण सा कथासूत्र भी है। सर्व-प्रथम गीत अपने मूल रूप मे दिया जाता है—

भात

काळी काळी ओ वीरा काजळिया री रेख,
घटा प पचाधी बीरा ऊमटी जी।
जेठा रै ओ वीरा पहलै जी मास ज ओ,
मिरघा पीया ओ वीरा छाक लिया जी।
साढा रै ओ बीरा दूजै जी मास ज ओ,
हाळीडा हळ बीरा जोडिया जी।
सावणियै रै ओ वीरा अगणै जी मास ज ओ,
घोरा धामण ओ बीरा झुक रयो जी।
भादूडै रै ओ वीरा चोथै जी मास ज ओ,
वेलडियाँ ओ बीरा फळ लागिया जी,
गहरा वाजै ओ बीरा बिलोवणा जी।
आसोजा रै ओ बीरा पचवैं जी मास ज ओ,
लाख सिट्टै ओ वीरा वाजरो जी।
कातिगडै रै ओ वीरा छट्ट जी मास ज ओ,
लुण चुण कोठा ओ बीरा सै भरया जी।

(२)

मगसरिया रै ओ बीरा सतवैं जी मास ज ओ,
धण मुडलै पिव पालिगै जी।
आपणै ओ सायव सात वरस की धीय ज ओ
थानै न्यूत्या ओ सायव क्यू सरै जी।
नूतो ए गोरी थारो जळहरजामी वाप ज ए,
राता देई थारी माय ने ए,
नूती ए गोरी थारो कान्ह कवर सो वीर ज ए,
राई रुकमण थारी भावजा जी,
नूतो ए गोरी थारा ताऊ-चाचा की जोड ज ए
चाची-ताया को ए गोरी झूमखो ए।
नूतो ए गोरी थारी मा की जायी भैण ज ए,
स्यू रै भणेई गोरी भाणजा ए।

म्हानै ओ सायब बैल जुडाय ज ओ,
थे थारा करला पलाण ल्यो जी ।
ल्यावो ओ सायब चावळिया मुलाय ज ओ,
गुड की तो भेली पूरी पाच जी ।

(३)

रळक्या ए गोरी ढळती सी रात ज ए,
दिन तो उगायो थारै पी'र मे जी ।
आई आई ओ सायब-बाप-दादा री पोळ ज ओ,
भेली वधारू बीरा भीत सै जी ।
मिलगो ओ बीरा जामण जायो बीर ज ओ,
किसडै हरख बाई थे आइया जी ।
म्हारै ओ बीरा सात बरस की धीय ज ओ,
वै की बिडद उतावळी जी ।
राधा ए बाई थानै जिनवा रा भात ज ए,
हरिया मूग मरोड मे जी ।
जीमा ए बाई बीरो-भैनड साथ ज ए,
जीम्या-जूठ्या बाई रस रया जी ।
बैठ्या ए बाई तखत बिछाय ज ए,
बीरो भैनड दोनू वतळाइया जी ।
करल्यो ए बाई लोका जी चार ज ए,
किसी ए करा बाई उढावणी जी ।
सुसरै नै ओ बीरा खुल्ला ए कबाण ज ओ,
सासू नै तील पचास की जी ।
देवर-जेठा नै बीरा पिचरग पाघ ज ओ,
ग्रोर जिठाण्या नै बीरा पोमचा जी ।
धीयां रो ओ बीरा भर-भर भात ज ओ,
कवरा जोगी बीरा बीटळी जी ।
नूत्यो ए बाई सो परवार ज ए,
नूत चली घर आपणै जी ।

(४)

सूती ओ बीरा निस भर नीद ज ओ,

देवर मसलो बीरा राळियो जी ।
करती ए भावज वीराँ रो गुमान ज ए,
बीर बतीसी थारा ले रया जी ।
मनडै मे ओ वीरा आई छै रीस ज ओ,
ले घडलो सरवर गई जी ।
सरवरिये री ओ बीरा ऊची-नीची पाळ ज ओ,
एक चढू दूजी ऊतरू जी ।
झीणी झीणी ओ वीरा उडें छै गुलाल ज ओ,
म्हारै पीवर रै बीरा मारगाँ जी ।
रथ को ओ वीरा हो यो झिणकार ज ओ,
वळदा का वाज्या वीरा घूघरा जी ।
वायण को ओ वीरा भळक्यो छै सेल ज ओ,
वळदा की चिलकी वीरा सीगटी जी ।
वीरा री ओ वीरा चिलकी पिचरग पाघ ज ओ,
भावजाँ रा चिलक्या चूडला जी ।
आवै ओ वीरा कीडी को सो नाळ ज ओ,
किरत्या को ओ वीरा झूमखो जी ।
मनडै मे ओ वीरा धीरज धार ज ओ,
ले घडलो भर वावडी जी ।

(५)

घडलो ओ वीरा दियो ए उतार ज ओ,
जाय'र चढ गई बीरा डागळै जी ।
वजारा मे ओ वीरा डेरा जी ढाळ ज ओ,
लाल तम्बू वीरा ताणिया जी ।
के कोई ओ वीरा मुगल-पठाण ज ओ,
के सोदागर वीरा ऊतरयो जी ।
ना कोई ए बाई मुगल-पठाण ज ए,
ना सोदागर वीरा ऊतरयो जी ।
म्हे छा ए बाई वसदेवजी रा सीव ज ए,
राजीडै अरजन जी रा वड-भातई जी ।
म्हे छा ए बाई सोदरा रा बीर ज ए,
कवर लाडेल डै रा वाई मामला जी ।

एक वर ओ देवर बायर आव ज ओ,
थाँनै ओ दिखावू मेरा भातई जी।
बिसारो ए भावज मनडै रो रोस ज ए,
वै परवाराँ आगळा जी।

(६)

भात ज ए बाई भरस्या बिसवा वीस ज ए,
सहर बजारा बाई उढावणी जी।
बजारा मे ओ बीरा नारेळा रो भात ज ओ,
छैल-सुपारी बीरा बोधणी जी।
पहली ओ बीरा काकडियो उढाय ज ओ,
पाछै उढाई कूवा-बावडी जी।
पहली ओ बीरा पोळ उढाय ज ओ,
पाछै गिगन पहरावणी जी।
सुसरै नै बीरा खुल्ला ए कबाण ज ओ,
सासू नै तीळ पचास की जी।
देवर-जेठा नै बीरा पिचरग पाघ ज ओ,
द्योर-जिठाण्या नै बीरा पोमचा जी।
धीया रो ओ बीरा भर भर भात ज ओ,
कवरा जोगी बीरा बीटळी जी।
सायब नै ओ बीरा पाचूँ जी घोक ज ओ,
हम घण मोली बीरा चूनडी जी।
देस्या ए बाई म्होर पचास ज ए,
रिपिया तो देस्या बाई ड्योढ सै जी।
भाणजी नै ए बाई चोळा-चूनड ल्याय ज ए,
म्हे परवारा बाई आगळा जी।

स्पष्ट ही इस गीत की वस्तु कई भागो मे विभक्त है। इन विभागो को ऊपर सख्या द्वारा प्रकट कर दिया गया है। प्रथम विभाग मे जलागम से लेकर खेती का सम्पूर्ण विवरण है। इस कार्य मे सात मास का समय लगा है। गीत मे प्रत्येक मास के लिए एक 'कडी' है। द्वितीय विभाग मे पति-पत्नी का वार्तालाप है। वे दोनो अपनी पुत्री का विवाह करने का निश्चय करते है और पत्नी के पीहर निमन्त्रण देने की चर्चा होती है। तृतीय विभाग मे गीत की नायिका अपने पीहर पहुच कर अपने भाई को

पुत्री-परिणय हेतु निमन्त्रित करती है। वहा भात की भेट का विवरण है। चतुर्थ विभाग मे नायिका अपने घर लौट आती है। विवाह का दिन निकट आ जाता है तब उसका देवर उसे ताना देता है कि उसका भाई नही पहुच पाया है। इस ताने से वह दुखी होकर सरोवर चली जाती है और वहा चिन्तित अवस्था मे अपने पीहर के मार्ग की ओर देखती है। उसे दूर से अपना भाई सपरिवार आता हुआ नजर आता है और प्रसन्न चित्त होकर वह अपने घर लौट आती है। पाचवे विभाग मे उसके भाई के आने और उसके द्वारा देवर के ताने का उत्तर दिए जाने की चर्चा है। अन्त मे छठे विभाग मे भात भरने की क्रिया का वर्णन किया गया है। इस प्रकार सक्षिप्त रूप मे विविध दृश्य प्रकट करके गीत की कथावस्तु सपूर्ण होती है।

प्रस्तुत लोकगीतिका की प्रस्तावना ध्यान देने योग्य है। उसमे कृषि कर्म द्वारा गृहस्थ-जीवन की सम्पन्नता का चित्र प्रकट किया गया है। इसके बाद पुत्री के विवाह की चर्चा आती है। गावो के लोग खेती मे अच्छी पैदावार होने पर ही इस प्रकार के आयोजन करते हैं। अकाल के समय वहा विवाह-शादी का कार्य-क्रम भी मद सा ही रहता है। राजस्थान के बहुसख्यक 'वधावा' गीतो मे घर की जो समृद्धि चित्रित की जाती है, उसी की एक झलक प्रस्तुत गीत के प्रारम्भ मे दिखलाई देती है।

विवाह-प्रस्ताव के समय हम पति को पलग पर और पत्नी को छोटे से 'मुढ्ढे' पर विराजमान देखते है। यह चित्र बडा सुन्दर है। इसमे विचार-विमर्श की मुद्रा स्वय ही बन जाती है और दाम्पत्य जीवन का एक विशेष पक्ष उभर कर सामने आता है। गीत मे पीहर और ससुराल के अनेक सम्बन्धो की चर्चा की गई है। इन सभी सम्बन्धो मे सौहार्द की भावना व्याप्त है। असल मे राजस्थानी लोकगीतो मे सम्मिलित-परिवार के रस की राग समाई हुई है। यह राग बडी सरस और मधुर है। इसके पीछे समवेत स्वरो की शक्ति भी है। भारतीय गृहस्थ-जीवन का यह ध्येय रहा है कि विविध सम्बन्धो के लोग सुमधुर-बधन के द्वारा शक्ति सम्पन्न बने रहे।

प्रस्तुत गीत 'ओ बीरा' और 'ए बाई' के सबोधनो से आद्यन्त भरा-पूरा है। अनेक 'कडियो' (पक्तियो का समूह) मे तो ऐसा प्रयोग गीत को गति देने के लिए अथवा 'धुन' को बनाए रखने के लिए हुआ है। इन प्रयोगो पर ध्यान देने से सहज ही स्पष्ट होता है कि इस गीत मे भाई बहिन के प्रबल प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित है। असल मे भात भरने की प्रथा ही भाई-बहिन के प्रेम का उज्ज्वल रूप है। जब गीत-नायिका को देवर ताना देता

है तो उसको बडी मानसिक पीडा होती है और वह भाई का मार्ग देखने के लिए सरोवर की ओर चली जाती है। वेदना की इस तीव्रता मे भी भाई-वहिन के प्रेम की वास्तविक स्थिति सामने आती है। पुत्री अथवा पुत्र के विवाह मे उसका अपना भाई उपस्थित न हो, यह असहनीय है। राजस्थान मे भाई के लिए 'वीर' शब्द का प्रयोग प्रचलित है। गीत मे भी सर्वत्र 'वीर' शब्द ही ग्रहण किया गया है। यह प्रयोग सर्वथा सार्थक है। नारी के लिए पति रक्षा करने वाला है तो उसका वीर सुरक्षा करने वाला है। इन दोनो के वल से वह स्वय भी सवला है।

गीत मे मध्यकालीन राजस्थान का वातावरण चित्रित है। इससे गीत की प्राचीनता प्रकट होती है। कन्या के विवाह के लिए सात वर्ष की अवस्था समुचित मानली गई है और घर मे तैयारी होने लगी है। कन्या का विवाह गृहस्थ-जीवन के लिए विशेष महत्व का विषय है। यह पुण्य कार्य है। फिर भी यह पुण्य कार्य समय की विचारधारा के अनुसार जल्दी ही कर लिया गया है। लोकगीतो मे यह स्थिति अप्रकट नही रह सकती। इसके अतिरिक्त जव 'भतई' (भात भरने वाला) पूरे दल-वल के साथ अपनी वहिन के यहा आता है तो उसे देखकर किसी ससैन्य डेरा करने वाले सेनापति (मुगल–पठान) या सौदागर को स्मरण किया गया है। यह भी राजस्थान का मध्यकालीन चित्रण है। सेनापतियो का डेरा उस जमाने मे जहा-तहा होता ही रहता था और मैदान मे तम्वू तन जाते थे। व्यापारी लोग भी उन दिनो पूरे दलवल के साथ यात्रा करते थे। वे एक स्थान से माल खरीदते और दूसरे पर वेचते थे। कई वनजारो अथवा सौदागारो का तो राजस्थानी लोककथाओ मे वडा नाम है। इनमे 'लक्खी विणजारा' तो सुप्रसिद्ध है।

गीत का एक पक्ष और भी विशेष ध्यान देने योग्य है। भात के दस्तूर मे भाई अपनी वहन के सव ससुराल वालो को वस्त्र भेंट करता है। इसके पहिले काकड, कूवा-वावडी और पोळ (दरवाजा) को वस्त्र ओढाने के लिए भाई को कहा गया है। काकड (सीमा) मे क्षेत्र विशेष के आरक्ष देवता का निवास माना जाता है। यह प्राचीन काल का यक्ष है, जो आज भी राजस्थान मे अनेक नामो से लोक पूजित है। इसे वर्तमान मे खेतरपाळ अथवा 'खेडै को भोमियो' कह दिया जाता है। किसी क्षेत्र विशेष मे प्रवेश करते समय उसके आरक्ष देवता का सम्मान करना आवश्यक है। कूवा–वावडी का भी आरक्ष देवता होता है। वर्तमान मे इस पद पर हनुमान की प्रतिष्ठा है। इसी प्रकार घर का आरक्ष देवता दरवाजे पर स्थापित रहता है। इसका वर्तमान

रूप गणेश है। गीत मे इन तीनो स्थानो के आरक्ष देवताओ को वस्त्र भेट करने के वाद अन्य किसी व्यक्ति को मम्मिलित करने का कार्य होता है। यह प्रसग भारतीय जनजीवन के अति प्राचीन पूजा-विधान की ओर सकेत करता है। कहा जाता है कि जब लाखा फूलाणी भात भरने के लिए चला तो उसने मार्ग के प्रत्येक वृक्ष को वस्त्र भेट किया था। प्राचीन काल मे यक्ष देवता का निवास स्थान प्राय कोई वृक्ष या जलाशय ही माना जाता था। राजस्थान मे अब भी वृक्ष-पूजा का वडा प्रचार है। इससे प्रकट होता है कि भारतीय सस्कृति समयानुसार ऊपरी रूप परिवर्तित करके अपनी मूल-आत्मा को सुरक्षित रखती रही है।

गीत मे कुल चार पात्र प्रकट है–पति, पत्नि, भाई और देवर । पति विचारशील और गम्भीर है । पत्नि आदर्श गृहणी है। भाई उदार तथा स्वाभिमानी है। देवर थोडा सा चचल एव विनोदी हे। पात्रो का वार्तालाप गीत को गति प्रदान करता है। इस प्रकार जीत का नाटकीय तत्व वडा आकर्षक एव रोचक वन गया है। भात सम्बन्धी अन्य गीतो मे भी लगभग ऐसा ही वार्तालाप मिलता है। प्रस्तुत गीत के प्रारम्भिक अश को छोडकर उसका शेप भाग इस गीत मे सहज ही देखा जा सकता है—

ओ वीरा, भेरचो–मेरचो वरसँलो मेह, जामणजाया,
नान्ही सी वूँद सुहावणी जी।
ओरा वीरा, तूँ कित लाई छँ वार, जामणजाया,
सारा पहली नूतियो जी।

इस प्रकार अन्य लोकगीतो मे भी विपय के अनुसार कडियो की समानता देखी जाती है। इस सम्वन्ध मे 'पीळो' (पुत्रवती के ओढने का वस्त्र) नामक अनेक गीतो की तुलना विशेप उपयोगी है । वर्ग विशेष के गीतो की यह आन्तरिक एक प्राणता लोकहृदय की सरलता के साथ स्वर-सौन्दर्य के विशेष रूपो के प्रति अभिरुचि का भी परिचय देती है।

इस गीत मे कई शब्द इस प्रकार के प्रयुक्त है, जिनका प्रचलन आजकल सामान्य व्यवहार मे कम है। साथ ही अनेक प्रयोग ऐसे भी हैं, जो विशेप रूप से अर्थपूर्ण हैं। आगे ऐसे प्रयोगो का स्पप्टीकरण किया जाता है—

१ पचाधी—राजस्थान मे दिशाओ के अलग–अलग सोलह नाम है। उनमे एक दिशा का नाम 'पचाध' है। उत्तर और वायव्य कोण के बीच की दिशा को पचाध कहते हैं।

२. घामण—एक प्रकार की घास।

३. जळहरजामी वाप—जामी शब्द जन्म देने वाले पिता के लिए प्रयुक्त होता है। इसकी समता जीवनदाता एव पोषणकर्त्ता जलधर (वादल) से की जाती है। लोकगीतो मे इसका प्रयोग अत्यधिक है। वाप शब्द समानार्थक होने पर भी इसके साथ अतिरिक्त जुड गया है।

४. रातादेई माय—माता को रात्रि देवी विशेष कारण से कहा गया है। माता वहुत अधिक देती है। अत. उसे रात्रि की देवी वतलाया है। परन्यु यहाँ उसे कार्तिक की रात्रि के रूप मे ग्रहण करना चाहिए। कार्तिक की रात्रि मे किसान अपनी फसल घर लाता है और उससे घर भर जाता है। इसलिए कार्तिक की रात को विशेष महत्व प्राप्त है। स्पष्टीकरण हेतु निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं.—

कोयल आज मेरी रतादेई चायजै,
रातादेइ कातिगडा री रात,
अमल्या ऊणा-कूणा सै भरै : (भात का गीत)

५ राई-रुकमण— भाई को कान्हकँवर कहा गया है और भाभी के लिए राई तथा रुकमण का प्रयोग है। राई एक गोपी का नाम है, जो राधा, रुक्मिणी तथा सत्यभामा आदि से भिन्न है। 'हरजसो' मे राई की चर्चा अनेकश आती है। गीतो मे दुल्हे को 'राईवर' कहा जाता है। व्रतकथाओ मे 'राई-दामोदर' का स्मरण होता ही है। प्रयोग द्रष्टव्य है—

नारायण कै आरतै जी च्यार जणी रखवाळ,
राई, रुकमण, राधकाजी, चोथी जशोदा हर की माय,
नारायण को आरतो, हरे राम। (कातिग को हरजस)

६ बिड़द—राजस्थानी मे 'विरुद' के अतिरिक्त वृद्धि का विकसित रूप भी 'बिडद' ही है। वृद्धिवाचक प्रयोग देखिए—

बिडद-विनायक दीनू जी आया,
आय पवास्या सीळै बड तळै।

यही विनायक के साथ वृद्धि का प्रसग है। विवाह की सानन्द सम्पन्नता का श्रेय आरक्ष देवता विनायक को ही दिया जाता है। उसके साथ वृद्धि का रहना आवश्यक है। ऐसी स्थिति मे बिडद शब्द का प्रयोग 'विवाह' के अर्थ मे हो चला है। विवाह के प्रारम्भ मे विनायक की स्थापना करने को 'बिडद बैठाणो' कहा जाता है।

७ कवाण—'कवा' लम्बे और बडे कोट को कहा जाता था। बादशाहो की पोशाक से 'कवा' का मुख्य स्थान था। उनकी नकल पर अन्य लोग भी इसे पहिनते रहे हैं। यह गीत 'भात' के दस्तूर का है। अत इसमे अन्य भी कई मर्दाना तथा जनाना वस्त्रो के नाम आये है उनके नाम इस प्रकार हैं—तीळ (जनाना पोशाक इसमे ओढणो कबजो, तथा लहगो या घाघरो तीनो सम्मिलित रहते है), पाघ (मर्दाना वस्त्र, सिर पर धारण करने का। पाघ इज्जत की निशानी है), पोमचो (स्त्री की ओढणी पुत्रवती महिला 'पीळो' ओढती है और अन्य 'पोमचो'), बीटळी (चादर या डुपट्टा, बागो-बीटळी का सयुक्त प्रयोग बोलचाल मे प्रचलित है), चूलडी (ओढणी, यह लाल रग की होती है और इसमे बँधाई का काम पूरे स्थान पर रहता है। अन्य ओढणी के समान इसमे 'चोक' नही होता), चोळो (घाघरा अथवा लहगा, चोळो-चूनडी तथा घाट-चोलो प्रयोग भी प्रचलित है। मीरा की यह पक्ति प्रसिद्ध है-पचरग चोळा पहर सखी मै झिरमिट रमवा जाती।)

८. उडै छै गुलाल—मार्ग मे जब जनसमूह तेज सवारी पर आता है तो धूल उडती है और आकाश मे छा जाती हैं। गीत मे मागलिकता को ध्यान मे रखकर उसे गुलाल उडाना कहा गया है। राजस्थानी के पुराने साहित्य मे एक मुहावरा 'गुडी ऊछळी' भी अनेकश. देखा जाता है। 'गुडी' छोटी ध्वजा और गुलाल दोनो को कहते हैं। विवाह आदि मागलिक अवसरो पर रग और गुलाल का प्रयोग होता है। अत 'गुडी ऊछली' मुहावरा आनन्द मनाने के अर्थ मे लिया जाता है। जहाँ ध्वजा का प्रयोग होता है, वहाँ यह मुहावरा न बनकर अभिधेय अर्थ मे ग्रहण किया जाता है।

९. बतीसी—भात के निमन्त्रण-स्वरूप भाई को 'बत्तीसी' भेट की जाती है। इसमे रोळी, मोळी, चावळ, गुड, खोपरा, नारेळ, वस्त्र तथा कुछ नकद रखा जाता है। सभवत. वस्तुओ की सख्या के अनुसार इस भेट का ऐसा नाम पडा है।

१० किरत्या को झूमको—कृतिका नक्षत्र। सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए महिला समूह की उपमा कृतिका नक्षत्र से दी जाती है। यह उपमान बडा ही सुन्दर है। इसी प्रकार गीत मे लम्बी कतार को 'कीडी को सो नाळ' कहा गया है।

११ भेली वधारूँ—गुड के चपटे और गोलाकार खण्ड को भेली कहते है। मागलिकता के विचार से 'भेली' को फोडना या तोडना न कहकर

'वधारणा' (अर्थात् वढाना) कहा है। इस प्रकार गीत मे सर्वत्र मागलिकता को दृष्टि मे रखा गया है। गीत मे नायिका सरोवर पर से अपने घडे को भर कर घर लौटती है क्योंकि खाली घडा लेकर आना अशुभ माना जाता है।

प्रस्तुत गीत के प्रारम्भ मे वर्षागम, कृषि-कार्य, घर की समृद्धि और कन्यादान रूपी यज्ञ के आयोजन का प्रसग है। इसमे प्राचीन भारत की इन्द्र-पूजा की झलक है। पौराणिक सदर्भ तो गीत मे स्पष्ट ही है। साथ ही इसमे बौद्धकालीन भारत की अति विस्तृत यक्षपूजा भी अपने परिवर्तित रूप मे प्रकट है। मुसलमानी शासनकाल के भारतीय जीवन का सकेत भी इस गीत मे प्राप्त है। इस प्रकार भारतीय सस्कृति के अनेक तत्वो का सुन्दर समन्वय इस राजस्थानी लोकगीत (भात) मे दर्शनीय है।

———
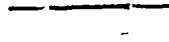
महाकवि कालिदास वर्णित शकुन्तला की विदाई और राजस्थानी लोकगीत

भारतीय सस्कृति का मूल मत्र है लोके वेदे च । जो चीज वेद अर्थात् शास्त्र मे है वही लोक मे भी है । यह सत्य ही कहा गया है कि भारतीय सस्कृति का एक चरण वेद (शास्त्र) मे है तो उसका दूसरा चरण लोक है । यही कारण है कि यहाँ का लोक साहित्य और आभिजात्य साहित्य परस्पर घुले-मिले है । यह विषय विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखता है ।

महाकवि कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक विश्वविख्यात है । इस नाटक के चौथे अ क मे पारिवारिक जीवन का एक अत्यन्त सुकोमल प्रसग चित्रित है । यही प्रसग विविध लोक गीतो मे भी अनेकश वर्णित है । लोक गीत तो है ही प्रधानतया पारिवारिक जीवन के रस की राग । ऐसी स्थिति मे महाकवि वर्णित इस प्रसग की लोक गीतो से तुलना करना एक रोचक विषय है । प्रस्तुत लेख मे राजस्थानी लोक गीतो के सन्दर्भ मे इस विषय पर कुछ विस्तार से चर्चा करने की चेष्टा की जाती है ।

ध्यान रखना चाहिए कि कालिदास की शकुन्तला एक आश्रम मे निवास करती है और साधारण गृहस्थ का वातावरण इससे भिन्न प्रकार का होता है । इन दोनो मे स्थान भेद और काल भेद अवश्य है परन्तु इनकी अन्तर्धारा लगभग समान ही है । देश-काल की भिन्नता को दृष्टि मे रखते हुए इस

तुलनात्मक अध्ययन पर विचार करना उचित है। लेख मे विषय के स्पष्टीकरण हेतु राजस्थानी लोक गीत अपने पूरे रूप मे दिये गये है।

म्हारैं आगरा चिरमठडी रो रूख, म्हारा पिवजी
कोई समधी रैं आगरा केवडो जी।
फूल्यो फूल्यो चिरमठडी रो रूख, म्हारा पिवजी,
कोई इब गरणायो केवडो जी।
दोनू समधी बैठ्या तखत बिछाय, म्हारा पिवजी
कोई चोपड-पासा ढाळिया जी।
बूजैं बूजैं राजकवर री माय, म्हारा पिवजी,
कोई कुछ हारचो कुरा जीतियोजी।
हारचो-हारचो राजकवर को बाप, धरा गोरी,
कोई कोटरा समधी जीतियो जी।
हसत्या मायला हसती क्यू ना हारर्या, म्हारा पिवजी,
म्हारी लाडकवर क्यू हारिया जी।
घुडला मायला तेजी क्यू ना हारचा, म्हारा पिवजी,
म्हारी लाडकवर क्यू हारिया जी।
बुगचा मायला कपडा क्यू ना हारचा म्हारा पिवजी,
म्हारी सदाकवर क्यू हारिया जी।
थैली मायला रिपिया क्यू ना हारचा म्हारा पिवजी,
म्हारी वडगोतरा क्यू हारिया जी।
डब्बा मायला गहराँ क्यू ना हारचा, म्हारा पिवजी,
म्हारी लाडकवार क्यू हारिया जी।
हस्ती देस्याँ राजकवर की दात, धरा गोरी,
कोई ज्यू घर सोव्है आपराो जी।
घुडला देस्या वडगोतरा की दात, धरा गोरी,
कोई ज्यू घर सोव्हे आपराो जी।
गहराा देस्या लडकवर की दात, धरा गोरी,
कोई ज्यू घर सोव्है आपराो जी।
कपडा देस्याँ सदाकवर की दात, धरा गोरी,
कोई ज्यू घर सोव्है आपराो जी।

रिपिया देस्या राजकवर की दात, धण गोरी,
कोई ज्यू घर सोव्है आपणो जी ।
उठ बाई सीता, पैर पटोळो, कर गठजोडो,
थारा बाबोजी वचना हारिया जी ।
उठ बाई सीता, पैर पटोळो, कर गठजोडो,
थारा बापूजी वचनाॅ हारिया जी ।
उठ बाई सीता, पैर पटोळो कर गठजोडो,
थारा बीरोजी वचना हारिया जी ।
कोट तळो कर बाई सीता, म्हारा पिवजी,
म्हारो जिवडो कायर हो रैयो जी ।
पाळी पोसी प्यायो काचो दूध, म्हारा पिवजी,
कोई आयो समधी ले गयो जी ।
राजकवर छी सात भाया की भैण, म्हारा पिवजी,
कोई ऊभी सोव्है आॅगणै जी ।
तू धण इतरी कायर मतना होय, म्हारी गोरी,
कोई होती आई ससार मे जी ।
पहली हारयो तीन भवन को राजा, धण गोरी,
कोई पाछै देई–देवता जी ।
पहली हारयो थारो जी बाप, धण गोरी,
कोई पाछै म्हे भी हारिया जी ।
ल्यावा ल्यावा वडै ए साजन की धीय, धण गोरी,
कोई पाछो वदलो म्होडस्या जी ।

यह गीत कथात्मक है । इसमे एक कथा के रूप मे सगाई से लेकर विवाह तथा विदाई तक की चर्चा है । लडकी का पिता और लडके का पिता चौपड खेलते है, जिसमे लडकी वाला अपनी पुत्री को हार जाता है फिर वह घर लौटता है तो उसकी पत्नी के साथ उसका वार्तालाप होता है, जो बडा ही हृदय-द्रावक हे । लोक मानस मे वेटी की सगाई के प्रसग को चौपड के खेल के रूप मे उपस्थित करके एक नवीन तथा रोचक उद्भावना की गई है ।

इस गीत से माता के हृदय की वेदना टपकी पडती है और वह सहज

ही महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के निम्न श्लोक का स्मरण करवा देती है—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तस्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजड दर्शनम् ।
वैक्लव्य मम तावदीदृशमिद स्नेहादरण्यौकस.
पीड्यन्ते गृहिण कथ न तनयाविश्लेषदु खैर्नवै ॥५॥

श्लोक मे म्हामुनि का यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है कि मुझ वन-वासी को ही इस प्रसग पर इतनी पीडा अनुभव हो रही है तो गृहस्थ लोगो को न जाने बेटी को विदा करते समय कितना दु ख होता होगा ! यही वेदना लोक गीत की इस एक पक्ति मे बह चली है–'म्हारो जिवडो कायर होय रैयो जी ।' अन्त मे यह कहकर बेटी की मा को धीरज दिया गया है कि समय पर पुत्री को ससुराल भेजना तो सदा की परम्परा है। वह स्वय किसी घर की पुत्री है और वहाँ पत्नी के रूप मे आई है । अब उस घर मे इसी प्रकार पुत्र वधू भी लाई जाएगी । महाकवि कालिदास के निम्न श्लोक मे भी परम्परा की ओर सकेत है—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
सुत त्वमपि सम्राज सेव पूरुमवाप्नुहि ॥६॥

मैंदी

मैंदी निपजै माळवै, आई ऊमरकोट,
मैंदी म्हे वाई रे लाळ ।
लाय उतारी चौक मे, सौदागर फिर फिर जाय,
मैदी म्हे वाई रे लाल ।
लेसी बामण-बाणिया, लेसी धीवडिया री माय,
मैदी म्हे वाई रे लाल ।
सोवन सिलाड़ियाँ वाटस्या झीणै कपड़ै छाण,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
रतन कचोळै ओळस्याँ, माँय गगा जळ नीर,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
दो बायाँ दो बैनडिया, दो भोजाया रो साथ,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।

वीरै री चिटली आगळी, वाई रो डावो हाथ,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
राची वीरै री आगली, सुरगा वाई रा हाथ,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ काकौसा विलोवणो, कर लीन्यो दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ वाभीजी हालरौ, हिलाय दीनौ दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ माताजी रसोवडो, कर लीनौ दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ वाई जी मालियो, पोढ लिया दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ साथणिया चोवटौ, हस खेल्या दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ भोजायाँ ढूलिया, रम लीनी दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ वाभौसा चानणी, घूमर लीनी दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।
औ लौ वीरोसा गलियारौ, दौड लिया दिन च्यार,
मैंदी म्हे वाई रे लाल ।

(दोरी धीया नै सासरो)

प्रथम गीत मे जिस प्रकार 'चिरमठडी' के पौधे को प्रधानता दी गई है, इसी प्रकार उपर्युक्त गीत मे मैंहदी को प्रमुख स्थान दिया गया है। मैंहदी प्रेम और सुहाग की सूचक है। अत वैवाहिक गीत मे उसे प्रधानता दिया जाना स्वाभाविक ही है।

गीत का पूर्व भाग मैंहदी वोने से लेकर उसके माडने तक की क्रिया को प्रकट करता है, जो स्पष्ट ही कन्या-जीवन की एक सरल झाकी सी दिखलाता हे। इसका उत्तर भाग वडा ही मार्मिक है। स्थान एव स्वजनों के मोह का वधन वडा मजवूत होता है। उसे सहज ही नही छोडा जा सकता। यही वेदना इस लोकगीत मे ओत-प्रोत है। विदा लेती हुई वेटी के उपर्युक्त

वचन भिन्न वातावरण मे स्थित कालिदास की शकुन्तला के निम्न वाक्य सहज ही याद दिला देते हैं–

१ ताद, लतावहिणिअ वणजोसिणि दाव आमन्तइस्स । (तात, लताभगिनी वनज्योत्स्ना तावदामत्रयिष्ये ।)

२ वयजोसिणि, चूदसगता वि म पच्चालिङ्ग इतोगदाहि साहावाहाहि । अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी भविस्म । (वनज्योत्स्ने, चूतसगतापि मा प्रत्यालिङ्गतोगतामि शाखाबाहुभि । अद्यप्रभृति दूर परिवर्तिनी भविष्यामि ।

३ ताद, ऐसा उडजपज्जन्त चारिणी गब्भमन्थरा मअ वहू जदा अणघप्पसवा होइ तदा मे कपि पिअणिवेदइत्तअ विसज्जइस्सह ।

(तात, एपोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदानवप्रसवा भवति तदा मह्य कमपि प्रिय निवेदयितृक विसर्जयिष्यथ) ।

४ वच्छ, किं सहवास परिच्चाइणि म अणुसरसि । अचिरप्पासूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व । दाणि पि मए विरहिद तुम तादो चिन्तइस्सदि । णिवत्तेहि दाव ।

(वत्स, किं सहवासपरित्यागिनी मामनुसरसि । अचिर प्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव । इदानीमपि मया विरहित त्वा तातश्चिन्तयिष्यति, निवर्तयस्व तावत् ।)

तपोवन मे निवास करने वाली शकुन्तला के उपर्युक्त वचनो मे वही मनोवेदना व्याप्त है, जो एक साधारण गृहस्थ की विदा लेती हुई बेटी के वचनो मे इस गीत मे समाई हुई है।

सूवटो

ओवरा ऊपर सूवटो जी बोल्यो
घण कतवारी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग वन मे सूवटो जी बोल्यो ।
रोट्या तो पोवन्ती माता बाई री बोली,
बाट्या री जीमाणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग वन मे सूवटो जी बोल्यो ।
भैस्या तो दूवन्ता भाभा बाई रा बोल्या,
पाडा री पकडाणी घरे चली, म्हारी माय,

बाग बन मे सूवटो जी बोल्यो ।
पाणी ने जावन्ती भाभी बाई री बोली,
घडा री भराणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग वन मे सूवटो जी बोल्यो ।
महीडो घमोडता वीरो बाई रो बोल्यो,
माखण री सवराणी घरे चाली, म्हारी माया,
बाग वन मे सुवटो जी बोल्यो ।
ढूल्या तो रमन्ती साथण बाई री बोली,
ढूल्या री रमाणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग वन मे सूवटो जी बोल्यो ।

(राजस्थानी-लोक गीत)

इस गीत मे एक सरल और सुखी ग्रामीण गृहस्थ के जीवन का चित्रण है। पुत्री की विदाई ने इसके समस्त वातावरण मे हलचल पैदा कर डाली है और घर के सभी लोग इस पीडा को अनुभव कर रहे है। पिछले गीत मे जहा पुत्री के हृदयोदगार प्रकट हैं, वहा इस मे घर के अन्य सभी लोगो की वियोग-वेदना वह चली है। वे सभी उसके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले दैनिक कार्यो का स्मरण करते हैं, जिनके कारण वह उनके जीवन मे रमी हुई और एकरस बनी हुई थी। यह गीत अनेक चित्रो की सरल झाकी प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही अभिज्ञान शाकुन्तलम् का निम्न श्लोक ध्यान देने योग्य है—

पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये व कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव
सेय याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम् ।।

इस श्लोक मे जहा शकुन्तला के द्वारा तपोवन मे किये जाने वाले कार्यो की ओर सकेत है, वहाँ गीत मे एक साधारण गृहस्थ के दैनिक जीवन मे पुत्री को विविध कार्य करते हुए प्रस्तुत किया गया है। मानव हृदय दोनो जगह समान ही है।

मिजन्यो

म्हारो मिजन्यो ए रुणझुण, बाह्यो बालू जी रेत
चाली बाई सीता ए सासरै, भल भल सूण मनाय

देई म्हारा बाबुल बोलावणी, थोडी थोडी जी दूर
आलै छोडी ए गूडिया, दीज्यो म्हारी सहेल्या नै बाॅट
छीकै छोड्यो ए चूरमो, दीज्यो म्हारै भाई-भतीजा बाट
बाबुल छोड्यो ए आपणो, जिसो ए गड गुजरात
मायड छोडी ए आपणी, जिसी ए कातिगडा री रात
काका-ताऊ छोड्या ए आपण, जिसा ए आसोज्या रा मेह
काकी-ताई छोडी ए आपणी, जिसी ए बजाजा री धीय
वीरो छोड्यो ए आपणो, जिसो ए सावणिया रो मेह
भावज छोडी ए आपणी, जिसी ए गाधीडा री धीय
भैनड छोडी ए आपणी, जिसी ए साॅवणिया री तीज
आडा डूगर किण करचा, किण रो पीवर दूर
आडा डूगर धण करचा, धण री पीवर दूर

झीझलीयो

अरणा रे लागोडा हे फूल,
राये बगडी रे छाई झाझे मोतीये रे।
झाझलीया रे, तूं तो पग पग पाछल फोर,
राये रू खडला बताये रे डाडाणे रे देस रा रे।
झीझलीया रे, तू तो खच कर पाणीडो पीव,
राये सरवरीया सुणीजे रे बाई रे बाप रो रे।
झीझलीया रे, तू तो रे कोण जो असवार,
राये कवर साले रे सिगरत प्रोमणा रे।
झीझलीया रे, तू तो रे पीतलीये हे पलाण,
राये सरब सोने रा रे थारे पागडा रे।
झीझलीया रे तू तो रे कसण कसूम्बल डोर,
राये लाल लोगी रो रे झाझलीये रे घासीयो रे।
झीझलीया रे तू तो रे झपटो देवतो आयो,
राय जाय न मिलाई रे माजी मायना रे।
झीझलीया रे, तू तो रे खरसणीयो रे मत खाय,
राये हाले तो तना नीरो रे डोडा-एलची रे।

कवि कालिदास वर्णित शकुन्तला की विदाई राजस्थानी लोकगीत

> झीझलीया रे, तू तो रे घोडलीयो घोडो रे ठाण,
> राये करेहेलीया झुकावा रे सुसरेजी री प्रोल मा रे।
> (सगीत रत्नाकर, पहला भाग)

ये गीत विवाह के समय बेटी को विदा करती हुई महिलाओ द्वारा गाये जाते है और बडे ही मार्मिक है। इस समय सब की आखे भरी आती हैं और हृदय उलझता है। राजस्थान मे बेटी को रथ मे या ऊँट पर विदा किया जाता रहा है। अत गीतो मे इनका वर्णन मिलना स्वाभाविक है। विदा लेते समय बेटी का हृदय अपने पीहर के लोगो के स्नेह को याद करके उनके वियोग की पीडा मे फटा पडता है। गीत मे सभी लोगो के लिए जो भिन्न-भिन्न विशेषण या उपमान प्रकट किए गए है, वे पूर्णतया सार्थक हैं। ये उपमान उन सब की विशेषताओ को प्रकट करते हैं और पारिवारिक गीतो मे 'वर्णनात्मक-रूढि' के रूप मे प्रयुक्त हो चले है। इस अवसर की पीडा को कालिदास के निम्न शब्दो मे स्मरण किया जा सकता है—

ण केवल तवोवण विरहकादरी सही एव्य। तुए उवट्ठिद-विओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीस—

> उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।
> ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ ॥११॥

(न केवल तपोवनविरहकातरा सख्येव। त्वयोपस्थित-वियोगस्य तपोवनस्यापि तावत्समवस्था दृश्यते—

> उद्गलितदर्भकवला मृग्य परित्यक्तनर्तना मयूराः।
> अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लता : ॥)

तपोवन की सम्पूर्ण प्रकृति ही जब शकुन्तला की विदाई के समय वेदनामयी है तो फिर गीत मे प्राकृत-जन की स्थिति तो पुत्री की विदा के समय दु खमयी होगी ही। यही वेदनाधारा इस गीत मे तीव्ररूप से प्रवाहित है, जो सहज ही हृदय को पानी-पानी कर देती है।

बायरो

> बायरिया रै तू झीणो-झीणो चाल,
> चढतै ओ जवाया री उडसी पिचरग पागडी जी म्हारा राज।
> पून ज ए बैरण मधरी मधरी चाल,
> चढती ओ बाई री उडसी बोरग चूनडी जी म्हारा राज।
> तीतरिया रै तू बायो-दैणो बोल,

चढतै ओ जवाया नै सूरा भला होया जी म्हारा राज ।
डूगरिया रै तू नीचो झुक जाय,
चढतै ओ जवाया री दीखै पचरग पागडी जी म्हारा राज,
बाई ओ लाडेसर री दीखै वोरग चूनडी जी म्हारा राज ।
सूरज राजा मोडो मोडो ऊग,
चढतै ओ जवाया नै होसी स्वामी तावडो जी म्हारा राज ।
कोयलडी ए तू मघरी-मघरी बोल,
ज्यू चित आवै म्हारै लाडजवाई नै सासरो जी म्हारा राज ।

इस गीत मे पुत्री की ससुराल-यात्रा सुखमय होने की कामना प्रकट की गई है, अत: इस मे मानव-हृदय प्रकृति के साथ एकप्राण बन गया है। गीत मे व्यक्त भावो को अभिज्ञानशाकुन्तलम् के निम्न श्लोको मे सहज ही देखा जा सकता है—

अनुमतगमना शकुन्तला
तरुभिरिय वनवासवन्धुभि ।
परभृतविरुत कल यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥९॥
रम्यान्तर कमलिनीहरितै सरोभि
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखताप :
भूयात्कुशेशयरजो मृदुरेणुरस्या :
शान्तानुकुलपवनश्च शिवश्च पन्था. ॥१०॥

ओलयू

करला मारूजी, पाछा जी म्होड,
मारूजी, ओलयूडी तो आवै म्हारै जलवल जामी बाप की जी राज ।
करला गोरी धरा, म्होडचा ए न जाय,
गोरी ए, बावोजी भरोसै सुसरो जी थारा मानल्यो जी राज ।
करला मारूजी, पाछा जी म्होड,
मारूजी, ओलयूडी तो आवै म्हारी रातादेई माय की जी राज ।
करला गोरी धरा, म्होडचा ए न जाय,
गोरी ए, मायड रै भरोसै सासूजी थारा मानल्यो जी राज ।

करला मारूजी, पाछा जी म्होड,
मारूजी, ओल्यू डी तो आवै म्हारै कान्हकवर सै बीर की जी राज।
करला गोरी धण, म्होड्या ए न जाय,
गोरी ए, बीरां रै भरोसै जेठजी थारा मानल्यो जी राज।
करला मारूजी, पाछा जी म्होड,
मारूजी, ओल्यू डी तो आवै म्हारी राई-रुकमण भावजा जी राज।
करला गोरी धण, म्होड्या ए न जाय,
गोरी ए, भाभी रै भरोसै जिठाणी थारा मानल्यो जी राज।

राजस्थानी शब्द 'ओल्यू' का अर्थ 'याद' (स्मृति) है। पति-पत्नी ऊँट पर चढ कर आगे बढ रहे है और पत्नी अपने पीहर वालो को याद करके ऊँट वापिस लौटाने के लिए कहती है परन्तु ऐसा किया जाना उचित नही है, अत पति उसे समुचित शिक्षा देताहै। यही शिक्षातत्त्व अभिज्ञान शाकुन्तलम् मे दूसरे रूप मे दिया गया है, जो द्रष्टव्य है—

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने
भर्तु विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीप गम
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येव गृहिणीपद युवतयो वामा कुलस्याधय ॥१७॥

स्पष्ट ही राजस्थानी लोकगीत और इस श्लोक मे एक ही बात दो प्रकार से कही गई है और वह गृहिणी-पद प्राप्त करने के लिए परमोपयोगी है।

बधाव

राजस्थान मे प्रत्येक मागलिक अवसर पर बधावा-गीत अनिवार्यत गाए जाते है। इन गीतो की सख्या बडी है और इनमे सुखी तथा समृद्ध गृहस्थ-जीवन का चित्रण मिलता है। पुत्री को ससुराल के लिए विदा करके लौटते समय महिलाएँ निम्न बधावा गीत गाती है—

पहलै बधावै ए सैयो मोरी म्हे गया राज
गया म्हारै बावाजी री पोल मोरी सैयो ए,
चढती बाई नै ए सूण भला होया राज।
लाड-जवाई नै ए सूण भला होया राज।
बावोजी सतोख्या ए सैयो मोरी आपणा राज
दीनी म्हानै मडपी छवाय मोरी सैयो ए,

चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज ।
लाड-जवाई नै ए सूरा भला होया राज ।
दूजै बधावै ए सैयो मोरी म्हे गया राज ।
गया म्हारै ताऊजी री लोज मोरी सैयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज,
ताऊजी सतोख्या ए सैंयो मोरी आपरा राज
दीनी म्हानै दोवड दात मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होय राज ।
अगरा बधावै ए सैयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारै बीराजी री पोल मोरी सैयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज ।
बीरोजी सतोख्या ए सैंयो मोरी आपरा राज,
दीनी म्हानै भूरोडी झोट मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज ।
चौथै बधावै ए सैयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारै सुसराजी री पोल मोरी सैंयौ ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज ।
सुसरोजी सतोख्यो ए सैयो मोरी आपरा राज,
ल्याया म्हानै दोम दल जोड मोरी सैंयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज ।
पचवै बधावै ए सैयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारै जेठजी री पोल मोरी सैयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा होया राज,
जेठजी सतीख्या ए सैया मोरी आपरा राज,
दीन्यो म्हानै आधो धन बाट मोरी सैयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज ।
छट्ठै बधावै ए सैंयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारै देवरिये री पोल मोरी सैयो ए,
चढती बाई नै ए सूरा भला होया राज ।
देवरियो सतोख्यो ए सैंयो मोरी आपरो राज,

दीन्या म्हानैं नीवूडा मगाय मोरी सैंयो ए,
चढती वाई नैं ए सूरण भला होया राज,
सातवैं वधावैं ए सैंयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारैं मारूजी री सेज मोरी सैंयो ए,
चढती वाई नैं ए सूरण भला होया राज ।
मारूजी सतोख्या ए सैंयो मोरी आपरणा राज,
दीन्यो म्हानैं सरव सुहाग मोरी सैंयो ए,
चढती वाई नैं ए सूरण भला होया राज ।
स्यामी तो मिलगी ए सात सहेलडी जी राज,
हरी हरी दूव मनाय मोरी सैंयो ए,
चढती वाई नैं ए सूरण भला होया राज,
लाड जवाई नैं ए सूरण भला होया राज ।

यह वधावा गीत वडा सरस और जनप्रिय है । इसका एक गेय रूपान्तर भी द्रष्टव्य है—

पहलैं वधावैं म्हे गया ए हेली,
गया म्हारैं वावाजी री पोल,
चुडला पर सोव्है वाला चूनडी जी ।
वावाजी सतोख्या आपरणा ए हेली,
दीनी म्हानैं मडपी छवाय,
चुडला पर सोव्है वाला चूनडी जी ।

इस गीत की आगे की सभी 'कडियाँ' उपर्युक्त गीत के समान ही गाई जाती हैं, केवल इस की 'धुन' उससे भिन्न प्रकार की है ।

इस वधावा गीत मे उस शिक्षातत्व का व्यावहारिक रूप प्रकट हुआ है, जो ऊपर के एक गीत मे दिया गया है । एक घर की सुकन्या दूसरे घर मे कुलवधू के रूप मे अपने गुणो के कारण सम्मानित होती है । इस प्रकार वह दो कुलो (पीहर और ससुराल) को प्रकाशमान करके आदर्श गृहिणीपद प्राप्त करती है । नारी जीवन की यही सुन्दर सफलता गीत मे प्रकट है । महाकवि कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तलम् मे यही भावधारा दूसरे रूप मे प्रकाशित हुई है, जो ध्यातव्य है—

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभि कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षरणमाकुला ।

तनयमचिरात्प्राचीवार्क प्रसूय च पावन
मम विरहजा न त्व वत्से शुच गणयिष्यसि ।।१८।।

पीहर से विवाह के बाद ससुराल के लिए विदाई लेते समय नारी-जीवन एक विशेष मोड है, अत अवसर के विविध गीतो मे मगल कामना तथा शुभ शकुन की अभिलाषा का विशेष रूप से प्रकट होना स्वाभाविक है, जैसा कि इन मे देखा जाता है। ऊपर श्लोकसख्या १० मे अनेक शुभ शकुनो की ओर सकेत है। गीत मे लौकिक शकुनो की सख्या वढी हुई है।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट होता है कि आश्रमनिवासिनी शकुन्तला की विदाई का वर्णन करते समय महाकवि कालिदास अपने सयय के सामान्य जन-जीवन से भी पूर्णतया प्रभावित हुए है और यही कारण है कि उनकी रचना का यह अश इतना अधिक मार्मिक वन पडा है। कालिदास-कालीन लोकगीत इस समय प्राप्त नही है परन्तु निश्चय ही आधुनिक लोकगीत तत्कालीन लोकगीतो के प्रतिनिधि है और उनकी भावधारा मे अन्तर नही आया है क्योकि लोकसाहित्य मे प्राचीन तत्व समाप्त न होकर प्राय समयानुसार ऊपरी रूप-परिवर्तन ही करता चलता है और उसमे लोकहृदय की सरल अभिव्यक्ति देखी जाती है। एक तो यह जीवन प्रसग स्वय ही मर्म को छूने वाला है और दूसरे लोकगीतो ने इसके रहस्य को सर्वथा खोलकर रख दिया है। इसमे किसी प्रकार की कृत्रिमता अथवा ऊपरी साजसज्जा न होकर मात्र स्वाभाविकता और सरलता है। इसी हृदयस्पर्शी तत्व ने महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ-अक को इतना अधिक महत्व प्रदान किया है कि वह आज भी विश्वसाहित्य मे एक बेजोड चीज के रूप मे समादृत है।

राजस्थानी लोकगीतों में महिला-विनोद

राजस्थान लोक कलाओ का रत्नाकर है। यह कलात्मक सामग्री अति-विस्तृत एव बहुविध है। ऊपर से राजस्थान सूखा तथा फीका सा दृष्टिगोचर होता है परन्तु यहाँ की सौष्ठव-अभिरुचि आश्चर्यजनक है। विशेषता यह है कि यह सौष्ठव-प्रियता जनजीवन मे रमी हुई है और इसने सरसता का वातावरण बनाए रखने मे वडा योग दिया है।

लोककलाओ का प्रधान अग लोक सगीत है, जो शब्द और स्वर दोनो की विशेषताओ से मण्डित है। सगीत मे नृत्य, वाद्य तथा गायन तीनो तत्व सम्मिलित है। इनका अमृत जन-जीवन को सरसरता प्रदान करने के अतिरिक्त प्रेरणा भी देता हे। इस सरस-प्रेरणा से जीवनधारा गतिमान होकर राष्ट्र को सवल तथा ससुस्कृत बनाती है।

राजस्थान मे अनेक प्रकार के अगणित लोकगीत प्रचलित है। इन मे समाज की आशा-अभिलाषा, उमग-तरग, सुख-दु.ख सभी परिलक्षित हैं। किसी जनपद विशेष के जीवन का आन्तरिक अध्ययन करने के लिए सवसे अच्छा साधन वहाँ के लोकगीत होते हैं। राजस्थान की लोकगीतात्मक सामग्री अति विस्तृत एव चित्रमयी है। उस मे चित्रित जनजीवन के स्वाभाविक चित्र देखते ही वनते हैं। लोकहृदय की सरल अभिव्यक्ति का ऐसा निर्मल प्रकाशन किसी कवि या लेखक की वाणी मे मिलना दुर्लभ है।

राजस्थानी लोकगीतो मे प्रधानतया नारी-हृदय का स्वर मुखरित हुआ है। ऐसी स्थिति मे यहाँ के नारी-जीवन की व्याख्या हेतु उनकी ओर

ध्यान जाना स्वाभाविक है। लेख मे इस वर्ग के विविध पक्षो मे से केवल एक पहलू पर ही प्रकाश डालने की चेष्टा की जा रही है जो अनुरजनात्मक है। राजस्थानी लोकगीतो मे महिला-विनोद की तीव्र रसधार प्रवाहित है। आमोद-प्रमोद का मानव-जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है। यदि जीवन मे से विनोद तत्व को निकाल दिया जाय तो वह सर्वथा नीरस एव निरर्थक हो जाएगा। जहा जीवन है, वहा विनोद अवश्य है।

विनोद के भी अनेक रूप हो सकते हैं। कई विनोद केवल चित्त को अनुरजित करने वाले होते है तो अनेक ऐसे है, जिनसे चित्तानुरजन के साथ साथ शारीरिक स्फूर्ति भी प्राप्त होती है। इन मे द्वितीय प्रकार के विनोद का विशेष महत्व है क्योकि उससे रस के साथ ही बल भी मिलता है। नारी-समाज का यह विनोद उसे अवला न बना कर सवला का रूप देता है। दूसरे शब्दो मे इसे खेल कहा जा सकता है। आगे राजस्थानी लोकगीतो मे नारी-समाज के खेलो की व्यापकता द्रष्टव्य है।

सर्वप्रथम वालिकाओ के अनेक खेल-गीतो की ओर ध्यान जाता है। ये गीत अवस्था के विचार से अत्यत सरल शब्दो एव सीमित स्वरो मे गाए जाते है। अनेक राजस्थानी लोकगीतो मे जो स्वर-प्रस्तार देखा जाता है, वह इन गीतो मे नहीं मिलता। एक उदाहरण देखिए—

चाद चढ्यो गिगनार, किरत्या ढल रहियाजी, ढल रहिया।
उठ वाई इमरत घरा पधार, माऊजी मारैगाजी मारैगा।
वावोजी देगा गाल वीरोजी वरजैगा जी, वरजैगा।
मत द्यो वाई नै गाल, वाई म्हारी चिडकोली जी चिडकोली।
आज उठै परभात, तडकै सासरियेजी, सासरिये।
होली का दिन च्यार, वाई नै खेलण द्यो जी, खेलण द्यो।

गीत छोटा सा है परन्तु इसमे वालिका का खेल-विनोद के प्रति जो हार्दिक आग्रह है, उसकी तीव्रता ध्यातव्य है। वालिका काफी रात वीत जाने पर भी अपनी सहेलियो के साथ खेल मे व्यस्त है और इतनी देर तक घर मे न पहुँचने के कारण उसके माता, पिता और भाई अप्रसन्न है परन्तु फिर भी वह सरल विनोद-रस मे आप्लावित है। इस गीत को गली की वालिकाएँ एक स्थान पर इकट्ठी होकर होली के दिनो मे नियमित रूप से समवेत-स्वर मे गाती है।

राजस्थान मे होली, गणगौर और तीज महिला-वर्ग के तीन विशिष्ट त्यौहार है। इनमे होली तो पुरुष वर्ग के लिए भी समान रूप से अनुरजनात्मक

है परन्तु अन्य दोनो त्यौहार तो केवल नारी वर्ग से ही सम्बन्धित है। होली-गीतो की सख्या बडी है। उनमे भी महिला-विनोद की महिमा व्याप्त है। सर्व प्रथम बालिकाओ का एक गीत द्रष्टव्य है—

होली आई ए फूला की झोली, झिरमटियो ले।
यो कुण खेलै ए केसरिये बागा झिरमटियो ले।
सिरी राम खेलै ए केसरिये बागा झिरमटियो ले।
लाडेल खेलै ए केसरिये बागा, झिरमटियो ले।

यह भी एक छोटा सा सरल-गीत है। इसमे प्रयुक्त 'झिरमटियो' शब्द विशेष रूप से विचारणीय है। 'झिरमिट' एक पुराना खेल है। इसमे हाथो से ताली बजाते हुए महिलाएँ गोलाकृति मे नृत्य करती हुई गीत गाती है। एक प्रकार से इसे 'ताल-रास' समझना चाहिए। मीराबाई के गीतो मे भी इस नृत्य-विनोद के प्रति नारी-हृदय का आकर्षण प्रकट हुआ है—"पचरग चोळा[1] पहर सखी मैं झिरमट रमबा जाती।"

राजस्थानी महिला-समाज मे होली की 'लूहर' के प्रति बडा चाव है। इसमे नृत्य और गीत दोनो साथ चलते हैं—

आज म्हानै रमती नै लाडूडो सो लाद्यो ए माया,[2]
लूहर रमवा म्हे जास्या।
आज म्हानै देवरिये सै रग खिलादे ए माय,
लूहर रमवा म्हे जास्या।

गीत बडा है और सुप्रसिद्ध है। इसका प्रचार राजपूत घरानो मे विशेष है। जन साधारण मे गाने के 'लूहर' गीत अन्य भी अनेक है। एक उदाहरण देखिए—

बोल्या बोल्या ए, ए सईयो मोरचा ए बोल्या।
भल होसी होसी ए, ए सईयो बेटी ए होसी।
जाई जाई ए, ए सईयो बेटी ए जाई।

गीत मे आगे नारी-जीवन के विविध प्रसग क्रमिक रूप से आते है और विवाह का वर्णन विशेष विनोदपूर्ण तथा हास्यरसात्मक होता है। उसमे अपने सम्बधियो पर कटाक्ष करते हुए चुटकी ली जाती है—

---

1 यह शब्द राजस्थानी बोलचाल के 'घाट-चोलो' तथा 'चोळो-चूनडी' युग्मो मे भी अर्थ विचार से ध्यातव्य है।

2 ध्यान रखना चाहिए कि यहा 'माय' शब्द सखी का वाचक है।

डेरा दिवाद्यो ए, ए सईया ढैरा ए वाडै ।
पून झिकोळै ए, ए सईयो वा'ळ झिकोलै ।
डेरा दिवाद्यो ए, ए सईयो मिसरा कै घर मे ।
मिसर भला छै ए, ए सईयो मिसराणी है खोटी।
आये-गये की ए, ए सईयो पाड लेवै चोटी ।
वा घालैगी राव, गिणावैगी रोटी ।

इस 'लूहर-विनोद' मे महिलाओ के दो वर्ग आमने-सामने खडे होकर अपनी अपनी बारी के 'बोल' सस्वर प्रकट करते हुए एक विशेष प्रकार-के अभिनय का प्रदर्शन करते है ।

आगे होली के दिनो का एक कथात्मक राजस्थानी गीत दिया जाता है, जो विनोदपूर्ण होनेके साथ ही चारित्रिक विशेषता से भी सम्पन्न है—

चाद्या जी तेरै च्यानणैं, खेलण जोगी छै रात,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
नणद भौजाई खेलण नीसरी, खेली छै सारी जी रात,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
खेल-माल्ह घर बावडी, पोळीडा पोळ उघाड,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
ढकिया जी फळसा ना खुलै, जित आई जित जाय,
ओ ए थे तो जावो ए गोरी थारै बाप कै ।
उपराडै होय डाकीया, टूट्यो छै नोसर हार,
ओ जो म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
सोनचिडी ए मेरी भायली चुग दे तू नौसर हार,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
पटुवै की बेटी भायली, पो दे तू नौसर हार,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
खेल—माल्ह घर बावड्या, राजिन खोलो किवाड,
ओ जी म्हारा भँवर बालम होळी आई ।
ढकिया जी आगळ ना खुलै, जित आई जित जाय,
ओ ए थे तो जावो ए गोरी थारै बाप कै ।
सोड भराई मेरा बापजी, पिलग दियो बड वीर,

ओ जी म्हे तो क्यू कर जावा ढोला बाप कै ।
सोड बगाई च्यानण चोक मे, पिलग दियो सरकाय,
ओ ए थे तो जावो ए गोरी थारै बाप कै ।
सोड ज लीनी काख मे पिलग लियो लटकाय,
ओ जी म्हे तो चाल्या जी हजारी ढोला बाप कै ।
आडा सासूजी[1] होय रया, रुसडी वहवड कितजाय,
ओ जी थे तो रग कर जावो बहू बाप कै ।
आडा मारूजी होय रया, रुसडी गोरी कित जाय,
ओ ए थे तो रग कर जावो गोरी बाप कै ।
दातण फाडा कूवा वावडी, जीमा म्हारा माऊजी रै हाथ,
ओजी म्हे तो चाल्या जी हजारी ढोला बाप कै ।
आडा मारूजी होय रया, रूस्या नै जाण न द्याय,
ओ ए थे तो रग कर जावो गोरी बाप कै

इस गीत मे कथासूत्र नायिका की विनोद प्रियता से प्रारभ होता है । वह अपनी सहेलियो के साथ घर से बाहर खेल मे सारी रात व्यतीत करके लौटती है तो भीतर आने के लिए दरवाजा नही खोला जाता । इस पर वह दीवार फाद कर घर मे प्रवेश करती है । यह प्रक्रिया उसकी शारीरिक शक्ति का परिचय देती है, जो उसे खेलो के कारण प्राप्त हुई मानी जा सकती है । भीतर आने पर उसका पति रुष्ट होता है और उसे अपने पिता के घर जाने को कहता है । परन्तु जव वह जाने के लिए तैयार होती है तो उसे रोक लिया जाता है । गीत के कथासूत्र का सार इतना सा ही है परन्तु यह राजस्थानी नारी जीवन का एक अनोखा चित्र उपस्थित करता है । गीत की नायिका बलवती तो है ही, साथ ही वह ओजमयी भी है ।

होली के दूसरे दिन से राजस्थान मे सोलह दिनो तक गणगौर का त्यौहार चलता है । इस पर्व मे कुमारी कन्याए श्रेष्ठ वर की प्राप्ति के लिए और विवाहिता महिलाए सुखी दाम्पत्य-जीवन हेतु गौरी की पूजा करती हैं । इन दिनो मे वातावरण बडा ही उत्साहपूर्ण एव उल्लासमय रहता है तथा गीतो की रसधारा तीव्र वेग से प्रवाहित होती है । इन गीतो की सख्या वहुत वडी है । उनमे धार्मिकता के साथ दाम्पत्य जीवन के रस

1 आगे गीत मे परिवार के अन्य भी कई लोगो के नाम लिए जाते हैं ।

की राग समाई रहती हैं। चाव मे भरकर महिलाएँ गरणगौर के आगे नृत्य भी करती है। आगे इस प्रकार के एक नृत्य-गीत का उदाहरण दिया जाता है—

म्हारै दादोजी रै जी, म्हारै दादोजी रै जी,
म्हारै दादसराजी रै माडी गरणगोर ओ रसिया,
घडी दोय खेलवा नै जायवा द्यो।
घडी दोय आता व, पलक दोय जावतां,
पलक दोय साथण्या मे लागै ए मिरगानैणी,
थारै विना जीवडो भर्‌यो डोलै।
म्हारी हाबी हवकै, म्हारी झाबी झबकै,
म्हारी नौगरी जडावू झोला खाय ओ रसिया,
घडी दौय खेलवा नै जायवा द्यो।

यह गीत नाच के साथ गाया जाता है और इसे अन्य पारिवारिक सम्बन्धो के नामो के साथ बढा लिया जाता है। इन नामो मे पीहर और ससुराल दोनो की चर्चा एक साथ चलती है। गीत मे नायिका अपने पति से निवेदन करती है कि उसे अपनी सहेलियो मे खेलने के लिए जाने की अनुमति दी जावे। पति प्रेमाधिक्य के कारण उसका इतना वियोग भी सहन नही कर सकता तो वह अपनी इच्छा की उत्कटता प्रकट करती है। इस गीत मे सबसे बडी चीज उसकी अभिलाषा की तीव्रता ही है।

राजस्थानी महिला-समाज का एक विशिष्ट त्यौहार तीज (श्रावण शुक्ला तृतीया) है। यह पार्वती के जन्म-दिवस के रूप मे मनाया जाता है परन्तु साथ ही इसे वर्षा-मगल भी कहा जा सकता है। राजस्थान मे वर्षा का बडा महत्व है। गाव गाव मे तीज के मेले लगते है। ये मेले प्राय तालाब के पास भरते है।

तीज के पर्व पर महिलाओ मे बडा उत्साह देखा जाता है। राजस्थानी लोक गीतो मे इसका अनेकश सकेत है—

(१)

सावण सुरगो भादवो, यो तो बरसै च्यारु कूट,
म्हारा मुरला सावणियो सुरगो जी।
बाई तो इमरत बाप कै,

वाई तीजा खेलरण जाय,
म्हारा मुरला सावरिणयो सुरगो जी। (मुरलो गीत)

(२)

ओर सहेली मा तीजा खेलरण जाय,
मन्नै भेजी मा सासरै ए।
ओर सहेली मा हीडै हीडरण जाय,
मन्नै जोयो मा पीसरणो ए। (सावरण का गीत)

सावन मे राजस्थानी महिलाए समुराल से पीहर आने की इच्छा करती है और उनकी यह अभिलाषा अनेक गीतो मे प्रकट हुई है। पीहर मे वहिन के लिए भाई हीडा (झूला) जरूर डलवाता है और वह अपनी सहेलियो के साथ उस पर झूलती हुई गीत गाती है। उस समय आनद-विनोद की रसधारा सी वह चलती है।

तीज के अवसर पर महिलाए अपनी ससुराल मे भी झूले पर झूलती है। इस समय उनका एक विशेष विनोद भी है। जव कोई महिला अपनी वारी से झूले पर वैठती है, तो उसके साथ ही अन्य महिलाए उसकी रस्सी पकड कर उससे अपने पति का नाम वतलाने के लिए आग्रह करती हैं। सामान्यतया राजस्थानी महिला अपने पति (या जेठ, श्वसुर आदि) का नाम अपने मुख से उच्चारण नही करती। परन्तु इस अवसर पर वह अपनी सहेलियो के सामने इस वधन को ढीला करके कविता रूप मे अपने पति का नाम प्रकट करती है। इसके वाद उसे झूलने दिया जाता है। यही क्रिया अन्य भी सव झूलने वाली सहेलियो के साथ की जाती है और वडा सरस वातावरण रहता है।

महिलाए झूलते समय अनेक प्रकार के गीत गाती है और ये प्राय दाम्पत्य-जीवन से सम्वन्धि होते है। एक गीत का प्रारभिक अश उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है—

हा जी म्हारा साहवा, इरण सरवरिया री पाळ हीडोळो,
हीडोळो राजन घाल द्यो जी म्हारा राज, हीडळो।
हा जी म्हारा सायवा, हीडैगी घर की जी नार झोटा दे,
झोटा दे गोरी को सायवो जी म्हारा राज, झोटा दे।

गीत लम्वा है और यह लम्वी ढाळ (ठाह) मे ही गाया जाता है। इसकी प्रत्येक 'कड़ी' मे एक ही शब्द की तीन वार आवृत्ति होती है जो विशेप

ध्यान देने योग्य है। ऊपर प्रथम कडी मे 'हींडोलो' की द्वितीय कडी मे 'झोटा दे' की आवृत्ति हुई है। इससे गीत की रसधारा तो तीव्र होती ही है, परन्तु साथ ही इसका स्वर-सौन्दर्य भी विशेष वृद्धि को प्राप्त करता है।

विशेष त्यौहारो के अतिरिक्त राजस्थानी महिला-वर्ग मे विनोद का एक अवसर और भी अनेकश आता रहता है। जब मौहल्ले मे किसी के यहा 'जँवाई' आता है तो वहाँ पास-पडौस की सभी महिलाए इकट्ठी होती हैं और गीत गाती है। इसके अतिरिक्त जँवाई से पहेलिया भी पूछी जाती है। कई तो गीत ही पहेलीमय होते है। कई प्रदेशो मे या विशिष्ट घरो मे जँवाई के सामने महिलाएँ नृत्य भी करती है। उस समय नृत्य-गीतो की रसधारा उमड चलती है। उदाहरणार्थ एक गीत द्रष्टव्य है—

आओ जी नणदोईजी आपा बिणज करा,
आओ जी नणदोईजी आपा बिणज करा,
म्हारै सुसराजी रो खेत रुखाळोजी,
मतीरो थानै म्हे देस्या। म्हारै सुसराजी० ॥
आओ जी नणदोई जी आपा बिणज करा,
आओजी नणदोईजी आपा बिणज करा,
म्हारै जेठजी री भैंस दुहाओ जी,
महीडो थानै म्हे देस्या। म्हारै जेठजी ॥
आओ जी नणदोईजी आपा बिणज कराँ,
आओजी नणदोईजी आपा बिणज करा,
म्हारे देवरिये रो रेवडियो चराओ जी,
अळगोजा थानै म्हे देस्या। म्हारै देवरिये।
आओजी नणदोईजी आपा बिणज करा,
आओजी नणदोईजी आपा बिणज करा,
म्हारै मारूजी री सेज बिछाओ जी,
लाडूडो थानै म्हे देस्या। म्हारै मारूजी।
आओ जी नणदोईजी आपा बिणज करा,
आओ जी नणदोईजी आपा बिणज करा,
म्हारी गोदी रो गीगलो खिलाओ जी,
भू भणियो थानै म्हे देस्या ॥ म्हारी गोदी ॥

उपर्युक्त गीत मे विशेषता यह है कि इसमे नृत्य के साथ अभिनय भी है। यहा सरस और सम्पन्न गृहस्थ-जीवन का अनुपम चित्रण हुआ है। साथ ही इसमे जँवाई (या नणदोई) के प्रति सरल विनोद भी किया गया है।

आगे के गीत मे ननद-भावज की विभिन्न परिस्थितियो के सम्बन्ध मे जो विनोदात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह बडा ही लुभावना है। गीत का नाम नीमोळीडो है। पूरा गीत इस प्रकार है—

वाईजी कै वा'यो रे आमूलो,
कोई म्हारै वा'यो नीम रै, नीमोळीडो।
बाईजी सीचै रै आमूलो,
कोई म्हे सीचा म्हारो नीम रै, नीमोळीडो।
वाईजी कै ऊग्यो रै आमूलो,
कोई म्हारै ऊग्यो रै, नीमोळीडो।
वाईजी कै लाग्या रै आमूला,
कोई म्हारै लाग्या गुटका रै, नीमोळीडो।
वाईजी चूसै रै आमूला,
कोई म्हे चूसा म्हारा गुटका रै, नीमोळीडो।
वाईजी चढगा रै आमूलै,
कोई म्हे चढगा म्हारै नीम रै, नीमोळीडो।
वाईजी को दीखै रै सासरियो,
कोई म्हारो दीखै पीर रै, नीमोळीडो।
बाईजी को दीखै रै देवरियो,
कोई म्हारो माइ–जायो वीर रै, नीमोळीडो।
वाईजी कै आयो रै देवरियो,
कोई म्हारै माइ–जायो वीर रै, नीमोळीडो।
वाईजी कै आयो रै गाडूलो,
कोई म्हारै रुणभुण बैल[1] रै, नीमोळीडो।
बाईजी चूरै रै चूरमो,

---

1 बैल=बैली (छोटा रथ, जिसे, दो बैल खैंचते हैं)।

कोई म्हारै गुदळी सी खीर रै, नीमोळीडो ।
बाईजी कै जीमै रै देवरियो,
कोई म्हारै माई–जायो वीर रै, नीमोळीडो ।
बाईजी चाल्या रै सासरिये,
कोई म्हे चाल्या म्हारै पो'र रै, नीमोळीडो ।
बाईजी कै चाल्या रै आसूडा ।
कोई म्हारा चाल्या दांत रै, नीमोळीडो ।
बाईजो बैठ्या रै गाडलै,
कोई म्हे म्हारी रुणझुण बैल रै, नीमोळीडो ।
बाईजी को आयो रै सासरियो,
कोई म्हारो आयो पी'र रै, नीमोळीडो ।
बाईजी उतरळा रै सासरिये,
कोई म्हे उतरचा म्हारै पी'र रै, नीमोळीडो ।
बाईजी कै आगै रै सासूडी,
कोई म्हारै आगै माय रै, नीमोळीडो ।
बाईजी सारचो रै घू घटियो,
कोई म्हे मारचो गुरमाट[1] रै, नीमोळीडो ।
बाईजी नै ढाळयो रै पीडळडो,
कोई म्हानै ढाळी खाट रै, नीमोळीडो ।
बाईजी बैठ्या रै पीडळडै,
कोई म्हे बैठ्या म्हारी खाट रै, नीमोळीडो ।
बाईजी नै राध्यो रै खीचडलो,
कोई म्हानै जिनवा रा भात रै, नीमोळीडो ।
बाईजी जीमै रै खीचडलो,
कोई म्हे जिनवा रा भात रै, नीमोळीडो ।

इस गीत मे 'आटै-साटै' विवाही गई दो लडकियो का चित्रण है। इस रीति के अनुसार एक घर की लडकी दूसरे घर मे वहू बनती है। दोनो

---

1. गुरमाट=ओढने के पल्ले को मुख खुला रखते हुए कधे पर डालना ।

लडके परस्पर साला-बहनोई का रिस्ता रखते हैं। जो घर एक लडकी का पीहर होता है, वही दूसरी का ससुराल समझिए। क्रमिक विवरण के कारण गीत लम्बा हो गया है। इसमे प्रत्येक 'कडी' के साथ 'नीमोळीडो' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ 'नीमोळी'[1] फल वाला (अर्थात् नीम) होता है। यह प्रयोग 'कडी' की पूर्ति करने के लिए हुआ है, जैसा कि अन्य भी कई गीतो मे देखा जाता है। सम्पूर्ण गीत से सरल विनोद रस टपका पडता हे।

ऊपर राजस्थानी महिला-समाज मे व्याप्त विनोद रस पर सोदाहरण प्रकाश डाला गया है। इन गीतो मे सामान्य जीवन का वातावरण उपस्थित है, जो सर्व साधारण के उल्लास का परिचायक है। पुरुषो के समान ही महिलाओ के लिए भी आनद-विनोद की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके बिना जीवन नीरस हो जाता है। हमारी पुरानी परम्पराओ मे यह तत्व सुन्दर रूप मे समाविष्ट है। ऐसी सशक्त परम्पराओ का सरक्षण सर्वथा उपयोगी एव आवश्यक है।

---

1 नीमोळी=नीम का कच्चा फल। पकने पर इसे 'गुटका' कहा जाता है।

लोकधुनों के अनुकरण की प्रवृत्ति

शास्त्रीय सगीत अपनी विषयगत जटिलता के कारण सामान्यतया कला मर्मज्ञो के विवेचन अथवा रसग्रहण की वस्तु होता है, जब कि लोक सगीत जन-जीवन मे रमे हुए होने के कारण समाज के एक अविच्छेद्य अग के रूप मे सामने आता है। शास्त्रीय सगीत आयोजन की चीज है और उसका अपना अलग महत्व है परन्तु लोक सगीत लोक हृदय की उमग का स्वाभाविक प्रकाशन है। समय को सरल बनाने के लिए अथवा श्रम को सरल करने के लिए ही लोक सगीत का सहारा नही लिया जाता परन्तु प्रसग आने पर अथवा अवसर उपस्थित होने पर वह स्वय लोक हृदय से अमृतधारा के समान फूट पडता है। लोक सगीत की इन्ही कुछ विशेषताओ को हृदयगम करके विद्वानो ने इसके यथार्थ महत्व को अनुभव किया है और इस दिशा मे शोध कार्य की प्रवृत्ति प्रारभ हुई है, जो असाधारण रूप से आशापूर्ण है।

सरलता लोकसगीत का प्राण है और वह जनजीवन मे समाया हुआ है, अत जो गीतकार अपनी वाणी को लोकवाणी के रूप मे प्रतिष्ठित करने की अभिलाषा करता है, उसके लिए यह स्वाभाविक है कि वह लोकधुनो का आश्रय ग्रहण करे। अनेक लोकधुने अपनी जनप्रियता के विस्तार के कारण विशेष पद-प्रतिष्ठा-प्राप्त करके सम्मानित होती हैं और विद्वानो के आकर्षण का विषय सहज ही बन जाती हैं। गुजरात-राजस्थान मे यह प्रवृत्ति असाधारण रूप से प्रकट हुई है और काफी पुराने समय से चली आरही है। जैन विद्वानों

ने तो इसे बहुत ही अधिक अपनाया है और अपने उपदेशो को जन साधारण मे फैलाने के लिए इसका सहारा लेकर सुख माना है। इस प्रकार इन विद्वानो के द्वारा लोकगीतो के क्षेत्र मे जो कार्य अनायास ही सम्पन्न हो गया, उसके लिए लोकसगीत अथवा लोकसाहित्य मे अनुसधान कार्य करने वाले व्यक्ति उनके चिर-ऋणी रहेगे। जैन विद्वानो ने लोक प्रचलित 'देशियो' के आधार पर गीत-रचना करके साथ ही उनका नाम सकेत भी कर दिया है, जिससे उनकी प्राचीनता का पुष्ट प्रमाण सहज ही सामने आ जाता है। ऐसी बहुसख्यक 'देशियो' की एक अति विस्तृत एव सुसम्पादित सूचि स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने 'जैन गुर्जर कवियो' ग्रन्थ के तृतीय भाग के द्वितीय खण्ड मे प्रस्तुत करके सराहनीय एव सर्वथा सफल श्रम किया है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए इस सूची के कुछ चुने हुए उदाहरण द्रष्टव्य हे —

५४. **अलवेलानी**—(धनजी कृत सिद्धदत्त स० १६६५ आस, समय सुन्दर कृत प्रियमेलक. ५ स० १६७२ काफी, पुण्यसागर कृत अजना १–२ स० १६८९, जयरग कृत अमरसेन १३ स० १७००, केसरकुशलकृत वीशी १९ मु स्त० स० १७०६ आस, सौजन्यसुन्दरकृत द्रौपदी ६ स० १८१८) ११७–(१) **आबरीड नइ वरसइ रे ऊमादे वड चूअइ रे–सिधु आस्या** (जिन हर्ष कृत उपमित ६७ स० १७४५ तथा शत्रुजय रास २-२६ स० १७५५) या (२) अवरीओने काइ गाजे हो भटीआणी राणी वड चुइ–ए भटियाणीनी (मोहनविजयकृत रत्नपाल ३-५ स० १७६०)

३४६—**काछवानी**–राग सोरठी (समय सुन्दरकृत मृगा १-१३ स० १६६८) काछिवा काछ तणा हो राणा, काछिव हो काछ तणा, वसे तो वासो साहिव म्हे दीआ-ए जाति (ज्ञानकुशल कृत पार्श्व० ३-२ स० १७०७) काछवानी (जिनपर्षकृत कुमारपाल १०१ स० १७०२, उदयरत्नकृत सुदर्शन १३ स० १७८५)

७३५—(१) **झुबखडानी**—वेलाउल (पुण्यसागरकृत अजना ३–१ स० १६८९) झुमखडानी (ज्ञानसागर कृत श्रीपाल ४ स० १७२६) झुम्वखडानी (कनक सुन्दर कृत हरिश्चन्द्र, ४–७ स० १६९७) (२) झूवखरानी (मालदेव कृत पुरन्दर चौ० ७ स० १६५२, समयसुन्दर कृत प्रत्येक, ३–४ स० १६६५, धनजी कृत सिद्धदत्त स० १६६५ आस।)

यहाँ कुछ थोडे से उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। सूचि अत्यन्त विस्तृत है। इससे प्रकट होता है कि किस जैन विद्वान ने किस समय अपने किस ग्रन्थ मे कहाँ किस 'देशी' का प्रयोग किया है। इन पुराने लोकगीतो मे से बहुत अधिक अब सर्वथा विलुप्त हो चुके है और उनके नाम अथवा प्रथम पक्तियाँ

मात्र प्राप्त है। फिर भी लोकगीतो मे अनुसधान कार्य के लिए यह सूचि अपने आप मे एक उपयोगी क्षेत्र है। इसके द्वारा अनेक वर्तमान लोकगीतो की प्राचीनता का पता भी सहज ही लग जाता है। इस सम्बन्ध मे भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है.—

(१) राजस्थान मे ऊँटो की कतार लादने वाले लोग 'बिणजारो' नामक गीत बडे चाव से लम्बी 'ढाळ' मे गाते है। इस गीत की प्राचीनता सूचि के अनुसार स्पष्ट होती है।

१७६३–बणजारानी—विणजारा रे[1] लोक देसाउरि धाय, तु घर बेठो क्या करे, विणजारा रे। राग गोडी (समयसुन्दर कृत प्रत्येक ३–७ स० १६६५, जिनराज सूरि कृत शालि १४ स० १६७८ तथा गजसुकुमार १६ स० १६९९, ज्ञानकुशल कृत पार्श्व ३–११ स० १७०७, ज्ञानसागर कृत शातिनाथ ७ स० १७२०, जिनहर्ष कृत कुमारपाल १०८ स० १७४२ तथा महावल। ३ २३ स० १७५१, जिनोदयसूरि कृत हसराज. २८ स० १६८०, नेमविजय कृत शीलवती ५–७ स० १७५०) इस गीत की आजकल गाई जाने वाली प्रथम कडी का सामान्य रूप इस प्रकार है—

"बिणजारा रैं लोभी, लोग दिसावर जाय, तन्नै बठ्या क्यू सरैं, बिणजारा ओ।" इससे सिद्ध होता है कि राजस्थान का 'बिणजारो' नामक गीत अपनी एक ही 'धुन' मे और लगभग समान शब्दो मे सतरहवी शताब्दी मे गाया जाता रहा है।

(२) विवाह के बाद जब लडका वधू सहित अपने घर लौट कर आता है, तब नियमित रूप राजस्थान मे 'टोडरमल्ल' गीत गाया जाता है। इस गीत की प्राचीनता भी सूचि से सिद्ध होती है—७३८ ख टोडरमल्ल जीतीयो रे। (दयाशीलकृत इलाची ४ स० १६६६) आजकल भी 'टोडरमल्ल' गीत की आद्य पक्ति लगभग इसी प्रकार गाई जाती है—'टोडरमल्ल जीत्याजी।' इससे प्रकट होता है कि वर्तमान लोकगीत सतरहवी शदाव्दी मे भी प्रचलित था।

जेन विद्वानो द्वारा लोक प्रचलित 'देशियो' के आधार पर विरचित रचनाओ की सूचना सुरक्षित है। अब भी जैन-समाज मे गाए जाने वाले ऐसे गीतो की सख्या काफी बडी है। इस प्रकार के गीतो मे धार्मिक भावना व्याप्त रहती है। इसी भावना से निर्मित एव लोकगीतो की विविध 'ढालो' पर आधारित गीत अन्य समाजो, मे भी कम नही है। इनको 'हरजस' अथवा 'भजन' के रूप मे गाया जाता है और इनका मुख्य विषय भक्ति रहता है। कुछ उदाहरण देखिए—

१. वोल वोल, म्हारा नन्दजी का लाला,
वोल्या थानै सरसी ओ, मोहन मुखडै वोल ।
(वोल वोल, म्हारै हिवडै रा जिवडा,
वोल्या थानै सरसी ओ, पनजी मुखडै वोल ।)

२ छैल छबीलो म्हारो नन्दजी को लालो हे,
म्हारै मन वस रह्यो गिरधारी ।
(सात सहेल्या रो आयो हलकारो ए,
अरज सुणो सासूजी म्हारी ।)

३ कठै सै आया कान्ह, कठै सै राधा प्यारी ।
कठै सै आया ए, शिवशकर नेजाधारी ।
(कठै सै आई सूठ, कठै सै आयो जोरो ।
कठै सै आयो ए, भोळी वाई थारो वीरो ।।)

४. वन मे देख्या दोय वनवासी,
ज्या रो मुख देख्या दुख जासी, ए माय ।
घूमर रमवा म्हे जास्या,
आज म्हानै रमना नै लाडूडो सो लाद्यो, ए माय ।

५ सूत्या राणोजी सुख भर नीद, ओ राणेजी,
कोई सूते राणोजी नै सुपनो आइयो जी म्हारा राज ।
(चादडलो भँवरजी चढियो गिगनार ओ भवरजी,
कोई किरत्या झुक गढ रै कागरै जी म्हारा राज ।)

६ माता ए देवकरणजी री पाघ सलामत राखोए,
वागोरा री माय, म्हारी सेडळ माय,
वहू ए नोरग थारै चुडलै राखी वाधो, मोरी माय ।

7 आम्वाजी, सगता मायला ओ सगत वडा किरिणयाणीजी
गढ देसाणा री राय, म्हारा करणळ माय,
सगता मायला ओ सगत वडा किरिणयाणी, मोटा माय ।
(जल्ला मारू म्हे तो थारा डेरा निरखण आई ओ,
म्हारी जोडी रा जलाल, मिरगानैणी रा जलाल,
म्हे तो थारा ओ डेरा निरखण आई, ओ जलाल)

इसी प्रसग मे जोधपुर के महाराजा मानसिंह के दो गीतो के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं, जो लोकगीतो की तर्ज पर वनाए गए हैं—

१ प्यालो भर दे सुघड कलाळ, ओ कलाळी,
कोई चौथी भट्टी रो दारू पायदी, ओ राज ।
म्हारो मद मू घो घणो अणमोल, ओ मस्ताना,
कोई सीस उतारै यो मद पीवसी, ओ राज ।

(तर्ज कलाळी की)

२ उठो म्हारी सइया, प्रीतम प्रेम लगावो ए,
उठ्या दुख मिट ज्याय,
उठो म्हारी सइया, प्रीतम प्रेम लगावो हो राज ।

(तर्ज जल्लै की)

ऊपर जिन गीतो की चर्चा की गई है, उनका वातावरण धार्मिक है और वे पुण्य के क्षणो मे गाए जाते है । परन्तु लोकगीतो की 'ढाल' पर सामाजिक गीत भी बहुत अधिक बने है और वे स्वय लोकगीतो का रूप धारण किए हुए है । ऐसे गीतो का नामकरण 'ढाल' के आधार पर हुआ है और ये मागलिक अवसरो, सस्कार विपयक उत्सवो एव पारिवारिक सम्बन्धो के उल्लासमय वातावरण मे गाए जाते है । इन गीतो के कुछ विशिष्ट वर्ग-विभाजनपूर्वक उदाहरण जापे के गीत प्रस्तुत किए जाते है—

जापे के गीत

१ घर घर मारूजी गावै छै गीत,
अनोखो पीळो म्हे सुण्योजी म्हारा राज ।

(घूघरी की ढाल)

(सूती धण सुख भर नीद,
सुपनै मे बॉटी घूघरी जी म्हारा राज ।)

२ पहलो मास ज लागियो जी,
आळ भोल जिय जाय,
भवर पीळो हलदी को ल्यायोजी ।

(कु जा की ढाल)

तू छै कू जा भायली ए,
तू छै धरम की ए भाण,
कू जा ए म्हारो पीव मिलादेए ।

३. थीरी धण नै लाग्यो पहलो मास,
पीळो तो रगाद्यो जी, मारूजी म्हानै केसर्या ।

(सजना की ढाळ)

(बैठ्या बावोजी तखत बिछाय,
कागदिया तो आयाजी, बावोजी रै हाडै राव का ।)

४ पहलो मास गोरी धण नै लाग्यो,
दूजो मास प्यारी धण नै लाग्यो,
आळ भोळ जिय जावै रसिया,
पीळो हलदी को,
पीळो हळदी को रगाद्यो जी, बालम रसिया,
पीळो हळदी को ।

(डफ की ढाळ)

(थारो डफ बाजै म्हारो इन्दरगढ गाजै,
तो सूती नार चिमक जागै
डफ काहे को,
डफ काहे को बजाओजी बालम रसिया,
डफ काहे को ।)

५ पैलो तो मास ज जी जचा राणी नै लागियो,
जी कोई आळ भोळ जिय जाय,
पीळो रगाद्योजी, जचा नै केसर्‌या जी ।

(चन्दणा की ढाळ)

६ पैलो मास ज जी, जच्चा राणी नै लागियो,
आळ भोळ जिय जाय,
पीळो रगाद्यो धण नै केसर्‌या ।

(बीडलो की ढाळ)

(पाच पाना को जी, पनर मारू बीडलो,
दे भेज्यो म्हारी माय,
यो बिडलो म्हारै मन सयो ।)

७ पलो तो मास जचा नै लागियो जी,
कोई आळ भोल जिय, ए जी ए जाय,
पीळो रँगाद्यो ढोला केसरचा जी ।

(सुपनो की ढाळ)

(सुपनों तो आयो सरब सुलाखणो जी,
म्हारी बैया ए तळो कर, ए जी ए जाय
सुपनै मे देख्या भँवर जी नैं आवता जी ।)

८ सूती धण निस भर नींद,
सुपनो तो आयो ढळती रात को
जी लसकरिया, जी ओ,
सूती धण निस भर नींद ।

(लखपत की ढाळ)

(सावणिया रे पहलै जी मास
लखपत धुडला सायब मोलिया,
ओ उळगाणा, जी ओ,
सावणिया रै पहलै जी मास ।)

९ धण बोलै ढोलो सूणं,
सुणो म्हारा भवर सुजान, जी ढोला,
हम चणगूठ्या री ढोला मन रळी,
लेद्यो म्हारी लाल नणद का बीर, जी ढोला ।

(ओळ्यू की ढाळ)

(ओ जी गोरी रा लसकरिया,
घडी दोय लसकर थामो, जी ढोला)

१० पैलो तो मास जचा राणी नैं लागियो जी,
हा जी कोई, आळ भोळ जिय जाय,
पीळो रँगाद्यो जचा नै केसरया जी ।

(पीपळी की ढाळ)

(बाय चल्या छा भँवरजी पीपळी जी,
हा जी ढोला, होय गई घेर घुमेर,
बैठण की रुत चाल्या चाकरी जी)

११ पहलो मास ज लागियो जी, धण नैं भावै सरदो,
ए जी म्हारो आळ भोळ जिय जाय, जचा नैं भावै सरदो,
जावो ना दिल्ली, ल्यावो ना सरदो ।

(सीठणाँ की ढाळ)

१२ सुसराजी आगे सात सलाम जी,
कोई चँह्वारी मगाद्यो हरिये बाग की ।
देस्या ए बहवड अघड घडाय ए,
कोई चह्वारी ना पाकी हरिये बाग की ।

(मुरळँ की ढाळ)

(चादा थारी चकमक रात जी,
कोई चाँद उजाळँ पाणी नीसरी ।
आगँ आगँ नणदळ बाई रो साथ जी,
कोई लँरा नखराळी भावज नीसरी ।)

१३ पँलो तो मास ज ढोला, गोरी धण नँ लाग्यो,
तो आळ भोळ जिय जावँ जी,
ढोला, पीळो रगाद्यो ।
अल्ला तो पल्ला जी ढोला, मोर पपँया,
तो बिच बिच चाँद घलाद्यो जी,
ढोला, पीळो रगाद्यो ।

(जकडी की ढाळ)

(बारा ए बरसा सँ अम्बा पियो घर आयो
तो हरिये बागा बिच डेरा ढाळ्या जी ।
ढोला आवो ना महल मे ।)

बनड़ा गीत

१ बनडो म्हारो दाऊदी को फूल,
कोई बनडी कळी ए अनार की, जी म्हारा राज ।

(घूघरी की ढाळ)

२. हसती थे ल्याज्यो कजळी देस रा,
घुडला रँ धमकँ थे आज्यो, जी बनडा ।

(ओळ्यूं की ढाळ)

३ हसती कजळी देसा रा ल्याय,
घुडला थे ल्याज्यो जी बना जी धुर खुरसाण रा,
करला थे ल्याज्यो जी बना जी मारू देस रा ।

(सजना की ढाल)

४. बना हसती ल्याज्यो,
घुडला थे ल्याज्यो जी धुर खुरसाण रा,
बना कित तो गया हा,
मोडा क्यू आया जी बादळ—म्हैल मे
बनी बाग गया हा,
फिर घिर देख्यो चम्पा बाग नैं।
चम्पा कुमलाई,
जळ बिन मुरझावै ए फूल गुलाब को।
रुत आई हरियाली,
सीचैं बन माळी ए फूल गुलाब को।

(निहालदे की ढाळ)

(तनै कुण बिलमाई,
मोडी क्यू आई ए कवर निहालदे।
इन्दर झडी तो लगाई,
च्यारू डस छाई ए बैरण बादळी।
मेहा भल बरसो,
माता उडीकै ए सुख कै म्हैल मे।
मेहा भल बरसो,
माता उडीकै ए मुख की गोद मे।

५ हसती थे ल्याज्यो कजळी देस रा,
घूडला रै घमकै थे आव,
नवल बना मोडा पधारचा जी।

(कूजां की ढाल)

६. हा जी म्हारा बनडा, हसती थे भल ल्याय,
घुडलां रै, घुडलां रै घमकै आयज्यो जी,
म्हारा राज घुडला रै।

(हिंडोळै की ढाळ)

(हा जी म्हारा सायवा, इस सरवरिया री पाळ,
हिंडोळो, हिंडोळो राजिन घालद्यो जी,
म्हारी राज हिंडोळो।)

७ हसती थे ल्याज्यो कजळी देस रा जी,
हांजी वना घुडला रै घमकै थे आय,
वनी न रगाद्यो राजलसाही लैरियो जी ।

(पिपळी की ढाल)

हसती थे ल्याज्यो जी वना जी कजळी देस रा जी,
कोई घुडला रै घमकै थे आय,
वनडो वुलावै ए, वनी जी रग म्हैल मे जी ।

(चनणा की ढाळ)

(तीजण चुगरो ए क चनणा म्हे सुण्यो जी,
कोई सहेल्यां मे पड्यो रमझोळ,
अम्वा तेरी पूछै ए, क चनणा के हुयो जी ।)

६ हसती कजळी देसा रा ल्याय ।
घुडला थे ल्याज्यो धुर खुरसाण रा,
ओ गुल वनडा, जी, ओ,
हसती कजळी देसा रा ल्याय ।

(लखपत की ढाळ)

१० हसती कजळी देसा रा ल्याय ओ,
नवल वनाजी ओ, म्हारा चतर वनाजी ओ,
कोई घुडला थे ल्याज्यो धुर खुरसाण रा जी म्हारा राज,
नवल वना, करला थे ल्याज्यो मारु देस रा जी म्हारा राज ।

(भूमादे की ढाळ)

(चादडलो तो चढ्यो ए अकास ए
भूमादे कलाळी ए, मदछकियां री प्यारी ए,
कोई चाद उजाळै पाणी नीसरी जी म्हारा राज
विलाली ढोला, चाद ऊजालै पाणी नीसरी जी म्हारा राज)

११ नवल वनाजी हसती थे भल ल्याय,
नवल वनाजी घुडला थे भल ल्याय,
करला थे ल्याज्यो मारु देस रा जी राज ।

(सीकरी की ढाळ)

(सूत्या भवर जी निस भर नींद,
सुपनो तो आयो राणी सीकरी रै देस को जी राज)

१२, हसती जी कजळी देसा रा ल्याय,
घुडला जी धुर खुरसाण रा ल्याय,
करलॉ रै रळकै थे आयज्यो जी राज ।

(जच्चा की ढाळ)

(ऊंची ऊंची मैड्या रा सजड किंवाड
झबर झवर दिवलो जगै जी राज ।)

१३ हसती कजळी देसा रा ल्याय,
ओ जी म्हारा बाळक बनडा,
घुडला थे, ल्याज्यो धुर खुरसाण,
म्हारा बाळक बनडा,
मजल मजल परण पधार ।

(लोटण करलो की ढाळ)

(क्या सै बुहावा डोडा एलची,
आ म्हारा लोटण करला,
क्या सै बुहावा नागर बेल,
सुसरा जी रा प्यारा
मजल मजल घर आव ।)

१४ हसती तो कजली देसा रा ल्याज्यो,
घुडला थे भल ल्याज्यो जी,
करला तो मारू देसा रा ल्याज्यो,
बायण लाज्यो जी, नोवत भारी जी,
नोबत भारी जी, दशरथ जी रा छावा
जान अटारी ल्यायाजी, नोवत भारी जी ।

(देवर का ढाळ)

(आमी सामी बाग देवरिया,
नित उठ तुररा टागो जी,
इण तुररा कै कारणै देवर,

प्यारा लागो जी, देवर म्हारा जी,
देवर म्हारा जी, सीतारामजी देवर,
भाभी नै प्यारा जी, देवर म्हारा जी ।)

१५. हसती थे भल ल्यायज्यो जी बना सुणो म्हारी,
ए जी बना घुडला रै रळकै थे आय,
बनाजी सोभा भारी, बनडै नै बनडी प्यारी ।

(सीठणाँ की ढाळ)

१६ हा जी बना, रात गई अधरात,
मोडा क्यू पधारिया जी म्हारा राज ।

(जँवाई की ढाळ)

(हारे वाला, इण सरवरिया री पाळ,
जँवाई धोवै धोतिया जी म्हारा राज)

१७ हसती कजळी देसा रा ल्याय जी,
कोई घुडला थे ल्याज्यो धुर खुरसाण रा ।

(मुरळै की ढाळ)

१८ हसती थे भल ल्यावो म्हारा बनडा,
घुडला थे भल ल्यावो जी,
करला मारू देस रा बना, वाहण ल्यावो जी,
बनो म्हारो लाखा रो,
लाखा रो बाबाजी रो प्यारो, घणो पियारो जी,
बनो म्हारो लाखा रो ।

(पनजी की ढाळ)

१९ हा जी बना, हसती थे भल ल्याय,
घुडला रै घमकै आज्यो जी,
हा हा रै, घुडला रै घमकै आज्यो जी ।

(गीगै की ढाळ)

(हा ओ गीगा, गीगै का ताउजी दलाल,
दलाली टोपी ल्याया जी,
हा हा रै, दलाली टोपी ल्याया जी ।

२० बना जी, थे तो हसती थे भल ल्याज्यो,
घुडला रै घमकै आज्यो जी,
म्हारा लाडला बनड़ाजी ।

(भात की ढाल)

(वीराजी म्हारै माथै नै मैमद ल्याज्यो,
म्हारी रखडी बैठ घडाज्यो जी,
म्हारा रिमक झिमक भती आज्यो)

घोड़ी गीत

१, घोडी तो कचल बनडा च्यानणी जी,
हा जी बना गड मुलतान सै आय,
नवल बनै की घोडी जौ चरै जी ।

(पीपळी की ढाळ)

२ घोडी तो कहिये चचल च्यानणी,
गड मुलतान सै आवै जी बनडा ।

(ओळयू की ढाळ)

३. घोडी ऊभी घर कै जी वा'र,
मोल मुलावो जी बनाजी घोडी नौलखी ।

(सजना की ढाळ)

४ घोडी तो चचल जी क बनडा च्यानणी जी
कोई गड मुलतान सै आय,
नवल वनै की जी क घोडी जौ चरै जी ।

(चनणा की ढाळ)

५ घोडी तो चचल वनडा च्यानणी जी,
कोई गड मुलतान सै ए जी ए आय,
नवल वनै की घोडी जौ चरै जी ।

(होळी की ढाळ)

(गड सै तो होळी जी ऊतरी,
मारू, हाथ कँगण माथै मोड,
जी होली आई सायव घन घडी ।)

६　घोडी तो चचल च्यानणी जी,
कोई गड मुलतान सैं आवैं राज,
घोडी जी चरैं ।

(लहरिये की ढाळ)

(लैंहरचो तो लेद्यो गोरी रा सायवाजी,
थारी गोरी धण नै लैंहरचो रो चाव राज,
लैंहरचो लेद्यो जी ।)

वनड़ी गीत

१　वनडी ऊभी छाजलियाँ री छाह,
वावुल आगै ए म्हारी वाळक वनडी री वीनती ।

(सजना की ढाळ)

२　वनडी ऊभी सरवरिया री पाळ,
वावोजी आगै वीनती जी म्हारा राज ।

(घूघरी की ढाळ)

३　हा ए म्हारी वनडी माथा नै मैंमद पैर,
रखडी की, रखडी की छिव न्यारिया जी,
म्हारा राज रखडी की ।

(हिडोलै की राग)

४　माथा नै मैंमद ए नवल वनी पैरल्यो जी,
थारी रखडी रो हद सिणगार,
वनडो वुलावै ए वनीजी रग म्हैल मे जी ।

(चनणा की ढाळ)

५　माथा नै मैंमद वनडी पैरल्यो,
रखडी रतन जडावो ए वनडी ।

(ओळयू की ढाळ)

६　माथा नै मैंमद वनडी पैरल्यो ए,
हा ए वनी, रखडी रो हद सिणगार,
वनी नै मिलाद्यो व्रिरज को सावरो जी ।

(पीपळी की ढाळ)

७. माथा नै मैंमद पैंरल्यो ए,
रखडी रो अधक बणाव,
बनी ए म्हानै प्यारा थे लागो ए ।

(कूजा की ढाळ)

८ बनडी ऊभी सरवरिया री पाळ,
बाबोजी आगै कर रही बीनती,
ओ म्हारी बनडी, जी ओ,
बनडी ऊभी सरवरिया री पाळ ।

(लखपत की ढाळ)

९ बाबा जी रै गोखा बैठी बनडी कागद लिख रही जी,
घणै घमड सै आवो रायजादा, दादी कामण गारी जी,
करडा कामण करसी बना, थानै कामण करसी ली,
बनो म्हारो लाखा रो ।

(पनजी की ढाळ)

१० ऊभी बनडी छाजलिया री छाह, बालक बनडी,
करै ए दादोजी रै आगै बीनती ।
दादोजी म्हारा ऐसो वर हेर, दादोजो ओ म्हारा,
सुहेल्याँ सरावै जोडी को बर आयसी ।

(लाछा की ढाळ)

(चादा थारी चकमक रात, बाई ओ लाछा,
चाद उजाळै जी पाणी नीसरी ।
गई गई समद तळाव, ब ई ओ लाछा,
डेरा तो ढाळ्या ओ चम्पा बाग मे ।)

जँवाई गीत

१. साळ्या रे भाई साड पिलाण,
तडकै सिधारा रै ओठीडा सुगणै सासरै ।

(सजना की ढाळ)

२ कोठे सै आया जी जँवाई प्यारा पावणा जी,
कोई कोठे लियो छै मुकाम,
बाईजी नै लेवण जी जँवाई आया पावणा जी ।

(चनणा की ढाळ)

३ हा जी कँवरजी, कुण्या जी रा रावतिया रजपूत,
कूण्या घर, कूण्या घर आया पावणा जी,
म्हारा राज कुण्या घर ।

(हिंडोलो की ढाळ)

४. मुरला लाल थे छो लँवाई म्हारै माथै परली मैमद ओ,
मेडतिया ओ लाल, कमधजिया ओ लाल,
थे छो जँवाई म्हारा काना मायला कुण्डळ, मुरला लाल,

(जल्लै की ढाळ)

५ जँवाईसा रे पेचो सोवै ए,
अम्वा ए, किलँग्या री जगाजोत,
जँवाईसा नै राख लीज्यो ए ।

(दूसरे जल्लै की ढाळ)

(जलो सिरदार म्हारो ए,
अम्वा ए, वाकडली मू छया रो,
जलो उमराव म्हारो ए ।)

यहाँ जो अनुकरणात्मक लोकगीतो के उदाहरण प्रस्तुत किए गए है, ये कुछ पुराने है और साथ ही प्रचलित भी है । वर्तमान युग मे भी लोकगीतो की 'ढाळो' के आधार पर अनेक गीत रचे जरूर गए है परन्तु वे विशेष प्रचलित नही हुए । फिर भी इनका आधार विशेष उद्देश्य से ग्रहण किया गया है, यह नि सदेह है । यहाँ 'मारवाडी राष्ट्रीय गीत' नामक पुस्तक मे से कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है —

१, सहेल्यो जरा विचारो ए,
कोई मूरखता बस होय न, अपणो जलम विगाडोए ।
झीणी धोती वाध कँस रे, घूमोसरे वजार ।
अदव दिखावो वणी निसरमी, विलकुल वणी गँवार ।।

(जकडी की रँगत)

२ यो तो बनडो वडो रसीलो,
या को चमडो पड गयो ढीलो,
ए सँयो देखण चाला,
वूडो वर वण्यो देखण चाला ।

(खटमल की रँगत)

३ ओडो ओडो ए वड भागण,
ओडो देसी चूनडी ।

(चूनडी की रगत)

४ सैयो मोरी प्रात समै उठ,
ईश्वर का गुण गावो ए, तज कर अळसाक,
वासी घर को काम करो हुळसावो मोरी वीर ।

(जल्लै की रगत)

५ ओ जी गोरी रा लसकरिया,
चरखो तो ल्याद्यो वैठ चलावा जी ढोला ।

(ओळ्यू की रगत)

ऊपर दिए गए उदाहरणो पर ध्यान देने से सहज ही प्रकट होता है कि समयानुसार 'देशियो' के आधार पर गीत काफी पुराने समय से बनते रहे है । इस प्रकार बने हुए पुराने गीतो मे अधिकाशत धार्मिक वातावरण है और यह प्रवृत्ति अब भी चालू है । कुछ बाद के वने हुए गीतो मे पारिवारिक सम्बन्धो पर विशेष ध्यान दिया गया है और इस प्रकार वने हुए गीत स्वय लोकगीतो का रूप धारण कर चुके है । वर्तमान युग मे वने हुए अनुकरणात्मक गीतो मे समाजसुधार की भावना प्रकट हुई है । इसी प्रकार 'विकासकार्य' से सम्वन्धित ऐसे गीत भी अनेकश सुने जाते है, जिनमे 'लोकधुनो' का सहारा लिया गया है । इस विषय मे भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है । निम्न गीत फागुन की लूहर की तर्ज पर है —

करसो सारा जागो भाइयो, भार देश रो आयो रे,
अन्न री तकलीफ मिटी, व्हैगो कायो रे, करसो चेतजो,
हा रे करसो चेतजो,
सहकारी खेती हाथो झेलजो, करसो चेतजो ।
छोटा-छोटा खेत थोरे दूणो खरचो लागे रे,
रोज री लडाई होवे, धरती छीजे रे, करसो चेतजो,
हा रे करसो सेतजो,
फूट मे फजीती थोरी रे, करसो चेतजो ।

(सहकारो गीत माला)

इस प्रकार इस तथ्य को कोई अस्वीकार नही कर सकता कि किसी विचारधारा को लोकप्रचलित वनाने के लिए यह एक सुन्दर साधन है कि उसके

विचार मे लोकधुन का सहारा लेकर उसे जनता की किसी अश मे अपनी चीज के रूप मे प्रस्तुत किया जावे । यह प्रक्रिया काफी पुराने समय से अपनाई भी जाती रही है ।

ऊपर दिए गए विविध उदाहरणो से यह भी स्पष्ट होता है कि चनणा, घूघरी, ओळ्यू सजना, लाछा,लखपत, जलाल, मुरलो, हिडोळो, पीपळी, कूजा, कलाळी, पणिहारी आदि अनेक लोकगीतो की 'ढाळे' राजस्थानी लोकसगीत की विशेष 'चीजे' है और अनुकरणात्मक गीत प्राय इन्ही के आधार पर बने है । पर एक प्रकार से इनको राजस्थानी लोक सगीत की 'रागो' की सज्ञा दी जा सकती है । इन 'रागो' के सागीतिक अध्ययन एव विवेचन की आवश्यकता है । लोक जीवन इन से रस एव प्रेरणा प्राप्त करता रहा है, अत इनके अमृत-तत्व की शोध परम वाछनीय है । आशा है, सगीत विद्या के प्रेमी एव विद्वान इस ओर अवश्य समुचित ध्यान देगे ।

———

संस्कृत के माध्यम से संकलित राजस्थानी लोक कथाएँ

राजस्थान की कथाएँ राजस्थानी भाषा के अतिरिक्त सस्कृत के माध्यम से भी बडी सख्या मे सकलित की गई है। इस विषय मे जैन विद्वानो द्वारा सग्रहीत 'कथाकोश' ग्रन्थ बडे महत्वपूर्ण है। उनमे प्राचीन शास्त्रीय-कथाओ के साथ ही अनेक लोक प्रचलित कथानको को भी स्थान दिया गया है। इस दृष्टि से मुनि राजशेखर सूरि (समय पद्रहवी शती) का 'कथाकोश' (विनोद कथा सग्रह सहित), श्री शुभशील गणि का पञ्चशती प्रवोघ सम्बन्ध' (स० १५२१) तथा मुनि हेमविजय गणि का 'कथा रत्नाकर (स० १६५७) विशेष महत्वपूर्ण है। ये ग्र थ सस्कृत मे लिखे गए है परन्तु साथ ही इनमे यत्र तत्र लौकिक गाथाएँ भी सकलित करली गई हैं। राजस्थानी तथा गुजराती लोक कथाओ के अध्ययन हेतु ये ग्रन्थ वडे उपयोगी है। यहाँ इन्ही ग्रन्थो को मूलाधार मान कर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इन ग्रन्थो मे लौकिक कथाओ के सकलित किए जाने का जो सपय सूचित किया गया है, निश्चय ही वे उससे काफी पुरानी हैं और अन्वेषण करने से उनके सूत्र और भी प्राचीन सिद्ध हो सकते हैं। यह विषय श्रमसाध्य अवश्य है परन्तु साथ ही रोचक भी है। अत विद्वानो को इस दिशा मे सचेष्ट होना चाहिए।

१ देवी मन्ड में बैठी टरड़का करै है

राजस्थान मे एक कहावत प्रचलित है–देवी मन्ड मे बैठी टरडका करै है, कदे वाणिये नै वेटो कोनी दियो अर्थात् देवी अपने स्थान पर बैठी हुई वडी-बडी बातें बना रही है, उसने कभी किसी वनिए को बेटा नही दिया अन्यथा तो उसकी भी दुर्गति होती। इस कहावत से सम्बन्धित कथा सार-रूप मे इस प्रकार है—

एक बनिए के पुत्र न था। उसने भैरव देवता की मनौती की कि यदि वह पुत्रवान् हो जाएगा तो देवता को एक भैसा भेट करेगा। फल यह हुआ कि उसको पुत्र की प्राप्ति हो गई। अब भैरव देवता को भैसा चढाना था। इसके निमित्त बनिए ने एक मोटा सा भैसा खरीदा और उसे लेकर वह भैरव के स्थान पर गया। वहा भैसा चढाने का बनिए को यही उपाय सूझा कि उस भैसे की रस्सी को उसने भैरव की मूर्ति से कस कर वाँध दिया। फिर वह पूजा सम्पन्न करके अपने घर लौट आया।

कुछ समय तक वह भैसा भैरव देवता के सामने चुप खडा रहा परन्तु जब वहाँ धूप आ गई तो उसे गर्मी अनुभव हुई और प्यास लगी। उसने रस्सी को खैंचा। रस्सी मजबूत थी और भैरव की मूर्ति से बन्धी हुई थी। जोर पडने पर भैरव प्रतिमा अपने स्थान से उखड गई और भैसा उसे घसीट कर ले चला।

मार्ग मे एक देवी का मन्दिर आया। वहा बैठी हुई देवी ने देखा कि भैरव को एक भैसा घसीट कर ले जा रहा है। वह समवेदना प्रकट करते हुए वोली, "अरे भैरव भैया, आज तुम्हारा यह क्या हाल हो रहा है?" इधर भैरव को घसीटे जाने से पीडा हो रही थी। उसने झु झला कर उत्तर दिया, "देवी मन्ड मे ई बैठी टरडका करै है, कदे वाणिये ने वेटो कोनी दियो।"

यह लोक कथा वडी जनप्रिय है। इसका एक रोचक रूपान्तर मुनि राजशेखर सूरि विरचित कथाकोश मे सकलित किया गया है। उसका सक्षिप्त रूप इस प्रकार है।

एक वनिये के पुत्र नही था। उसकी पत्नी ने देवी चामुण्डा से प्रार्थना की कि यदि उसे पुत्र लाभ होगा तो वह तीन लाख रुपये व्यय करके देवी की पूजा करेगी। समय पर सेठानी के पुत्र पैदा हुआ तो उसने अपने पति से अपनी मनौती पूरी करने के लिए कहा। सेठ ने उसकी वात स्वीकार करली

और उसने तीन लाख रुपये के तीन रत्न जडित सोने के पुष्प बनवाए। फिर वह पूजा के निमित्त देवी चामुण्डा के स्थान पर पहुँचा। उसने दो पुष्प देवी की दोनो भुजाओ पर और एक उसके मस्तक पर चढा दिया और फिर उन तीनो पुष्पो को अपने लिए, अपनी पत्नी के लिए और अपने पुत्र के लिए देवी के प्रसाद रूप मे वापिस उतार कर ले लिया और घर लौट आया।

इस प्रकार बनिये से ठगी हुई देवी अपनी शिकायत लेकर 'सहियड' नामक यक्ष के पास पहुँची। देवी का पूरा वृत्तान्त सुन कर सहियड बोला कि देवी लाभ मे ही है। उस धूर्त बनिये ने उसकी स्वय की तो बडी दुर्गति की है। इस पर सहियड ने अपना हाल सुनाया—

एक बार उस बनिये का व्यापारी जहाज समुद्र मे कही भटक गया था और उसका कुछ भी पता नही चल रहा था। इस पर बनिये ने अपना जहाज वापिस आने पर देव को भैसा चढाने की मनौती बोली। तब देव समुद्र मे तलाश करके उसका माल से लदा जहाज सुरक्षित किनारे पर ले आया। इससे बनिये को बडा लाभ हुआ। फिर अपना वचन पूरा करने के लिए वह बनिया एक जवान भैसा लाया। उसने देव प्रतिमा के गले मे भैसे की रस्सी कसकर बाँध दी। जब बनिये ने पूजा के बाजे बजवाये तो भैसा घबरा कर उस देव की मूर्ति को उखाड कर ले भागा। इस प्रकार घसीटने के कारण उसके शरीर मे कई घाव हो गए, जो ठीक भी नही हो पाए थे। ऐसी स्थिति मे देवी लाभ मे ही थी कि उसे किसी प्रकार की पीडा तो सहन नही करनी पडी।

ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीन कथा का धूर्त बनिया चालू कथा मे सरल स्वभाव का बन गया है और उसके भोलेपन के कारण ही भैरव को कष्ट उठाना पडा है। प्राचीन कथा का बीज श्लोक इस प्रकार है।

त्रिदशा अपि वञ्च्यन्ते, दाम्भिकै किं पुनर्नरा ।
देवी यक्षश्च वणिजा, लीलया वञ्चितावुभौ ।।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस कहानी मे दो कथाएँ मिल गई है। मरुभारती (१६/३) मे प्रकाशित 'तीन सौ पाँच' कथाओ की एक पुरानी सूची मे एक स्वतन्त्र कथा का नाम 'जैन यक्ष ठग्यो तीन फूल करी' दिया गया है। श्री गौतम कुलक वाला प्रबोध (पद्म विजय) मे इस कथा का सेठ पुत्र प्राप्ति हेतु यक्ष की मनौती बोलता है और वह देव को सौ भैसे तथा तीन लाख रुपये की पूजा चढाने को कहता है। वहा देवी की चर्चा नही है और न यक्ष की दुर्गति ही है परन्तु फिर भी देवता के पल्ले कुछ नही

पडता (द्रष्टव्य जैन कथा रत्न कोष, भाग छठा)। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही लोक कथा ने समयानुसार अनेक रूप धारण किए हैं।

२. कडुग्रा वडुग्रा सोही बोही

मरुभारती (१४/३) मे तीन सो पाच कथाग्रो की एक सूची प्रकाशित की गई है जो पुरानी है। इस सूची मे सख्या नौ की कथा का नाम 'कडुग्रा वडुग्रा सोही बोही' कथा दिया गया है। शीर्षक देखने मे अनोखा सा प्रतीत होता है। यह कथा भी मुनि राज शेखर प्रणीत कथा कोश मे सकलित है। कथा का सक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

पुष्पपुर नगर मे चन्द्र नामक सेठ निवास करता था। वह परम धार्मिक एव सात्विक वृत्ति का था। इसी प्रकार उस नगर का राजा अरिमर्दन भी वडा प्रजापालक था। एक वार उस नगर मे कडुग्रा और वडुग्रा नामक दो राक्षस अपनी सोही नामवाली वहिन के साथ आ घुसे। वे तीनो अदृश्य रह कर वहा के लोगो मे भयकर रोग उत्पन्न करते जिस से वडी सख्या मे मनुष्य मरने लगे। इस सकट से नगर मे भारी घवराहट फैल गई और राजा भी वडा चिन्तित हुग्रा। एक दिन राजा ने अपने दरवार मे प्रकट किया कि जो व्यक्ति इस नगरसकट का कारण मालूम करके इसे दूर कर देगा, उसे प्रचुर धन भेट किया जाएगा। इस समय चद्र सेठ भी दरवार मे ही था और उसने राजा की यह घोषणा सुनी। फिर वह अपने घर आ गया।

चन्द्र सेठ अपने वालको के खाने के लिए घर मे तिल लाया था और वे वच्चो को दे दिये गए थे। जव वच्चे तिल खाने तो वोले कि वे कड़ुए है और उनमे ककर भी मिले है। इसी समय सेठ के घर के वाहर वे दोनो राक्षस और उनकी वहन खडे थे। वे धर्मात्मा सेठ के घर मे सहज ही नही घुस सकते थे, अत वे कोई अवसर देख रहे थे। सेठ ने वच्चो की आवाज अपने कमरे मे वैठे हुए सुनी तो वह जोर से वोला "कडुग्रा-वडुग्रा सोही (सभी) खा डालो।" इस प्रकार वच्चो ने भी अपनी वात कई वार कही और सेठ ने भी उसी प्रकार तेज आवाज मे उनको उत्तर दिया। वाहर खडे हुए राक्षसो को वच्चो की धीमी वोली तो नही सुनाई पड सकी परन्तु उन्होने सेठ की तेज आवाज को स्पष्ट सुन लिया। इस पर उन्होने विचार किया कि हम लोग सर्वथा अदृश्य होकर नगर मे रहते है परन्तु इस सेठ ने हमारे नाम आदि सब जान लिये हैं। अत निश्चय ही यह विशेष-शक्ति से

सम्पन्न है अथवा मत्रज्ञ है, जो त्रिकाल की बात जानता है। अब तो इससे छुटकारा पाना कठिन है। अत इसकी शरण मे जाना ही उचित है।

अपने निश्चय के अनुसार वे तीनो सेठ के सामने प्रकट हुए और प्राणरक्षा के लिए उसके पैरो मे पड गए। सेठ ने सारी बात समझ ली और वह कडक कर बोला कि उनका अपराध क्षमा नही किया जा सकता। जब वे बुरी तरह दीनता दिखलाने लगे तो सेठ बोला कि एक बार उनको उसके साथ राजा के सामने जाना पडेगा और फिर उन्हे छोड दिया जायेगा। राक्षसो ने सेठ से अभय वचन लेकर उसके साथ दरबार मे जाना मजूर कर लिया।

चन्द्र सेठ ने उन तीनो राक्षसो को राजा के सामने ले जाकर खडा कर दिया। सब लोगो ने नगर के उपद्रव का कारण अपनी आखो से देख लिया। फिर उन तीनो को दूर चले जाने के लिए छोड दिया गया और वे भाग गए। सब ने चन्द्र सेठ की बडी प्रशसा की और राजा ने उसे प्रचुर सम्पत्ति भेट की। सेठ को धन भी मिला और उसका यश भी चारो तरफ फैल गया। यह सब पुण्य का प्रभाव है—

यत्तत् प्रजल्पत कार्यं सिद्धिर्भवति पुण्यत ।
कडुआ–बडुआ–सोही भाषणे श्रेष्ठिचन्द्रवत् ॥

इस पुरानी कहानी का रूपान्तर भी लोक प्रचलित है जिसमे एक लडका अपनी माता से चार लड्डू लेकर कमाने के लिए जाता है। वह जगल मे एक कुएँ के पास बैठ अपने लड्डूओ को खाने के लिए निकालता है और कहता है एक खाऊँ, दो खाऊँ, तीन खाऊँ, चारो को ही गटक कर जाऊँ।" कुएँ मे रहने वाले चार भूत इस आवाज को अपने लिए समझ कर घबरा उठते है और लडके के सामने प्रकट होकर प्राणरक्षा के लिए प्रार्थना करते है। इस पर लडका उनसे प्रचुर धन प्राप्त करता है और सम्पन्न होकर अपने घर लौटता है। यह लोक कथा काफी बडी है।

३. फोगसी

राजस्थानी कथाओ मे फोगसी एवाल (अजापाल) एक विशेष पात्र है। विक्रम और भोज के समान उसके नाम के साथ भी एक कथाचक्र जुडा हुआ है। उसकी न्याय बुद्धि प्रसिद्ध है। साथ ही वह अलौकिक–शक्ति से भी सम्पन्न चित्रित किया गया है। भूत–प्रेत उससे भय खाते है।

श्री राजशेखरसूरि विरचित कथाकोश मे भी एक कथा का प्रधान पात्र फोगसी नामक ब्राह्मण है। कथा का सक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

कलहिण्या गृहिण्या भो, के के नोद्वेजिता जना ।
साऽत्रागतेति श्रुत्वेव, त्यक्त्वा पात्र गतोऽमर ।।

केतकपुर मे फोगशिव नामक ब्राह्मण रहता था, जो जन्म से ही दरिद्र तथा अशिक्षित था। उसकी स्त्री कुरूपा एव भयकर कलह कारिणी थी। उसके व्यवहार से बेचारा फोगशिव महादुखी था। उसके घर के पास ही एक पेड पर एक भूत (झोटिंग) निवास करता था। फोगशिव की स्त्री की कठोरता से दुखी होकर वह भूत वहा से भाग गया। कुछ समय बाद फोगशिव भी एक रात चुपचाप अपने घर से निकल भागा।

फोगशिव भटकता हुआ एक नगर मे पहुँचा और एक पेड के नीचे आराम करने लगा। उसी पेड पर फोगशिव के घरवाला भूत ठहरा हुआ था। उसने फोगशिव को पहिचान लिया और सारा हाल पूछा। फोगशिव ने आपबीती सुनाई तो भूत को उस पर दया आ गई और वह बोला "मैं नगर सेठ के बेटे के सिर चढता हूँ। तू मत्रवेता बन कर उसका इलाज कर। इसके लिए पाच सौ द्रव्य लेना तय कर लेना। इस प्रकार तुझे धन मिल जाएगा।" इस योजना से फोगशिव को धन मिल गया और वह उसी नगर मे ठहर गया।

कुछ दिनो बाद वही भूत एक मत्री के पुत्र के सिर चढा। वहा भी फोगशिव मत्रसिद्ध बन कर चिकित्सा करने के लिए पहुँचा और प्रचुर धन लेना तय किया। भूत यहा फोगशिव को देख कर बडा क्रोधित हुआ और उसे भाग ने के लिए बोला तो फोगशिव ने कहा, "मैं तो तुम्हारे भले के लिए आया हूँ। तुम्हे यह सूचना देने के लिए यहा आया हूँ कि मेरी स्त्री इस नगर मे आ पहुँची है। इतना सुनते ही भूत भयभीत होकर वहा से भाग गया और फोगशिव को प्रचुर धन प्राप्त हुआ।

इस कथा का नाम-सकेत मुनि कीर्तिसुन्दर विरचित वाग्विलास कथासग्रह (समय लगभग १७५०) मे भी प्राप्त है जो वरदा (वर्ष १ अक १) मे छपी है। वहा कथा सख्या ७ का नाम इस प्रकार सूचित किया गया है 'स्त्री हुँती बावळिया रो भूत ही नाठो।' 'मार के डर से भूत भागे' कहावत की कहानी के रूप मे यह आज भी लोक प्रचलित है। (द्रष्टव्य राजस्थानी कहावतो की कहानियाँ भाग पहला) प्रचलित लोक कथा मे

प्रधान पात्र का कोई नाम नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकोश मे कथनायक का नाम जो फोगशिव दिया गया है वह तत्कालीन लोक कथा के अनुसार है और वहा 'फोगसिह'=(फोगसिध) को सस्कृत रूप देने के लिए 'फोगशिव' बना दिया गया है। मुनि हेमविजय गरिण ने भी कथा रत्नाकर ग्र थ मे इसी कथा को सकलित किया हे परन्तु प्रधान पात्र का नाम वहा जयता रखा गया है।

पुराना कथा पात्र फोगसी (फोगशिव) मत्र वेता बनने का दिखावा मात्र करता है परन्तु वह सफल होकर इस रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है। बाद की कहानियो मे फोगसी सचमुच ही मत्रसिद्ध चित्रित हुआ है। ऐसी स्थिति मे यह अनुमान किया जा सकता कि एक कथा पात्र का यह समयानुसार चरित्र विकास है। साथ ही यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि राजस्थानी जनसाधारण मे फोगसी को एक ऐतिहासिक व्यक्ति माना जाता है जिसके नाम से 'फोगसी को धोरो' नामक स्थान भी प्रसिद्ध है।

४. स्वर्ग-दर्शन की अभिलाषा

मुनि राजशेखर सूर कृत सस्कृत कथाकोश मे लोभ न करने के सम्बन्ध के 'मोदकी कथा' सकलित की गई है—

सर्वेऽपि लोभिनो यत्र, मन्दबुद्धिजनाश्रिता।
तत्र नैवागुर्णैर्भाव्य ता श्रुत्वा मोदकी कथाम्॥

सुघोषग्राम मे सर्वपशु नामक एक तापस रहता था, जिसका मठ नाना प्रकार के वृक्ष लताओ की वाटिका से सयुक्त था। एक बार तापस ने प्रात काल देखा कि उसकी 'बाडी' मे गाय के पद चिन्ह अ कित है, जिसने रात को उसमे प्रवेश करके काफी वृक्षलताओ की हानि कर डाली है। इसलिये तापस हाथ मे लाठी लेकर रात को रख वाली के लिए बाडी मे बैठ गया। वहा एक गाय आई और चरने लगी तो तापस ने उसकी पू छ पकड ली। वह गाय तत्काल पक्षी के समान आकाश मे उड गई और तापस उसी के साथ पू छ पकडे हुए लटका रहा। अन्त मे गाय स्वर्ग मे पहुची और वहा अपने महल मे रुकी। गाय ने तापस को कहा, "मैं कामधेनु हू। यह मेरा भवन है, जहा किसी प्रकार की कमी नही। फिर भी मैं धेनु स्वभाव के कारण इधर-उधर चरना पसन्द करती हू और इसीलिए तुम्हारी बाडी मे गई थी। तुम जब चाहो मेरे साथ इसी प्रकार आ जाया करो, मैं तुम्हे लड्डू खाने के लिए दू गी।"

इस पर कामधेनु ने तापस को मधुर लड्डू दिए, जो खाने मे वडे ही स्वादिष्ट थे । फिर कामधेनु के साथ तापस अपने मठ मे आ गया ।

इस प्रकार कामधेनु और तापस का आना-जाना वना रहा । एक दिन तापस ने कामधेनु से निवेदन किया कि उसकी कृपा हो तो वह अपने शिष्यो को भी इसी प्रकार लाकर स्वर्ग के लड्डू खिलावे । कामधेनु ने तापस की प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा कि उसके शिष्य उसके पैर पकड कर लटक सकते हैं और इसपरम्परा से वहा आ सकते हैं । इस पर तापस ने अपने शिष्यो को स्वर्ग की सैर करने के लिए तथा लड्डू खाने के लिये तैयार किया । एक रात वे सभी एक दूसरे के पैर पकड कर कामधेनु की पूँछ से लटक गये । जब कामधेनु आकाश मे उडी तो गुरुजी उसकी पूछ को पकडे हुए थे । इसी बीच एक शिष्य ने स्वर्ग के लड्डुओ की चर्चा करके उनका परिमाण पूछा । इस समय गुरुजी अपनी स्थिति भूल गए और हाथ छोड कर एक लड्डू का परिमाण वतलाने को हुए कि वे सभी आकाश से नीचे धरती पर आ गिरे ।

यह लोककथा अब भी प्रचलित है और 'मोडा घणा, वैकुठ साकडी' कहावत की कहानी के रूप मे कही जाती है । इस स्वर्ग की अभिलाषा का एक विचित्र रूपान्तर भीम भाड की कहानी मे भी है, जो मुनि हेमविजय गणि द्वारा 'कथा रत्नाकर' मे सकलित की गई है । वह एक हास्यकथा है और सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार है—

मथुरा नगरी मे मधुमथन नामक राजा राज्य करता था । उसकी रानी का नामवसुमती था । धीधीनो उसका मन्त्री था और यशोदा उसके यहा धाय थी । उस समय मथुरा मे भीम नामक एक भाड रहता था जो वडा चालाक और अपनी कला मे कुशल था । राजा मधुमथन की भीम पर वडी कृपा थी । एक दिन राजा ने भाँड से कहा कि यदि वह उसे धोखा दे सके तो उसे एक लाख रुपये की इनाम दी जायेगी । भीम ने राजा के इस वचन को मन मे धारण कर लिया और विना कुछ कहे वह अपने घर आ गया ।

कुछ दिनो वाद भीम भाड के वीमार होने की चर्चा मथुरा मे फैली । इसके वाद उसके मरने की खबर फैल गई । राजा को अपने मुहलगे भाँड के मरने से वडा दुख हुआ परन्तु जल्दी ही वात समाप्त हो गई ।

राजघराने की धाय यशोदा वडी शिवभक्त थी । एक रात वह अपने सो रही थी कि स्वय शिवजी उसके घर पहुँचे । जब यशोदा ने उनका दर्शन किया तो वह धन्य हो गई । शकर ने उसकी भक्ति पर परम प्रसन्नता प्रकट की और इसी प्रकार उसे दर्शन देना शुरू कर दिया । असल मे शकर भगवान

तो स्वय भीम भाड ही था, जिसका पुतला श्मशान मे जला कर मरा हुआ घोषित कर दिया गया था। एक रात यशोदा ने शिवजी से निवेदन किया कि उसे जीवित अवस्था मे स्वर्ग दिखलाने की कृपा की जावे। शिवजी ने प्रकट किया कि इस कार्य के लिये इन्द्र से पूछना पडेगा और वे सात दिन के बाद आकर उसे स्वर्ग ले जा सकेगे।

अगले दिन यशोदा ने अपनी स्वर्ग यात्रा की तैयारी की और उसने यह बात रानी के सामने प्रकट की तो वह भी स्वर्ग जाने के लिए उत्सुक हो उठी। इसी समाचार को सुन कर राजा और मन्त्री भी स्वर्ग जाने के लिए तैयार हो गए। महादेवजी से इन सब को भी साथ ले चलने की अनुमति ले ली गई। शर्त यह थी वे सब नगे होकर और अपनी आखो पर कस कर पट्टी बाधे तैयार रहेगे। जब शिवजी कहेगे तो वे उनके नान्दीश्वरकी पूँछ पकड लेगे और उनके पीछे एक दूसरे को पकडे हुए चलेगे। इनमे जिस किसी की पट्टी ढीली रहेगी वह स्वर्ग नही देख सकेगा। सबने यह शर्त स्वीकार की और समय पर इसी रूप मे वे शिवजी के नान्दीश्वर की पू छ पकड कर एक रात स्वर्ग की यात्रा के लिए चल पडे। नान्दीश्वर के पीछे-पीछे वे इसी प्रकार रात भर चलते रहे। उन्हे भान नही था कि वे किस मार्ग पर चल रहे हैं।

जब दिन निकला तो उन्होने कुछ लोगो की आवाज सुनी, जो आश्चर्य पूर्ण हसी हस रहे थे। उन्होने स्वर्ग आया समझ लिया और अपनी आखो से पट्टी दूर की तो अपने आप को अपनी नगरी के ही तालाब के पास लोगो की भीड के बीच मे खडा पाया। पता नही शकर भगवान और उनका नान्दीश्वर कहा चले गए ?

थोडे दिनो बाद भाड राजा के सामने उपस्थित हुआ तो राजा ने पूछा कि वह मरकर वापिस कैसे आ पहु चा ? इस पर भाड ने निवेदन किया कि वे भी तो स्वर्ग जाकर वापिस वहा आ गए है। अब राजा को पता चला कि वह सारी लीला भीम भाड की ही थी, अत उसे सवा लाख रुपया दिया गया।

इस कथा के आधुनिक प्रचलित रूप मे कथानायक धनी मठाधीश, वेश्या, कजूस सेठ, राजमन्त्री तथा राजा से उनकी प्रचुर सम्पति दान करवा कर इसी प्रकार उनको स्वर्ग दर्शन करवाता है। इस प्रकार स्वर्ग दर्शन की अभिलाषा एक 'कथानक रूढि' के रूप मे प्रकट होती है धार्मिक वातावरण मे मनुष्य की यह तीव्र अभिलाषा सदा से रही है कि वह सशरीर स्वर्ग मे जाकर वहा की सब चीजे देखे। इन कथाओ मे यही अभिलाषा प्रतिफलित हुई है और साथ ही इसका परिणाम भी प्रकट है।

जिस प्रकार भीम भाड ने राजा को प्रतारित किया है, उसी प्रक अन्य भी कई कहानियो मे पात्र अपने आपको मरा हुआ दिखाकर पुन प्रकट हो जाते है ।

५. आपकी कमाई पाणी में ई कौनी डुबै

यह कहावत राजस्थान मे बडी प्रसिद्ध है । श्री शुभशील गणि ने अपने सस्कृत ग्र थ पञ्चशती प्रबोध सम्बन्ध' (सम्वत् १५२१) मे इसकी कहानी दी है, जिसका सक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

एक बनिया कपट का व्यापार करता था । उसके पास कई कपट-तराजू थे, जिनके नाम उसने एकपुष्कर, द्विपुष्कर, त्रिपुष्कर,, चतुष्पुष्कर पच पुष्कर, आदि रख छोडे थे । इन से वह वस्तु लेते समय अधिक लेता था और देते समय तोल मे कम देता था । इस प्रकार वर्ष मे वह काफी धन कमाता था परन्तु उसकी यह अनुचित कमाई उसके पास नही ठहर पाती थी । कभी आग लग जाती, तो कभी चोरी हो जाती । कभी राजा उसका धन हरण कर लेता था ।

बनिये की पुत्रवधू ने अपने श्वसुर को समझाया कि कपट की कमाई ठहरती नही, वह तो योही नष्ट हो जाती है ।इसके विपरीत अपनी खरी कमाई कभी पानी मे नही डूबती । इस विषय को स्पष्ट करने के लिए बहू ने अपने सौने का एक गोला बनवाया और उसे नदी मे डलवा दिया । कुछ दिनो बाद वही स्वर्ण-गोला उसके हाथ मे वापिस आ गया । धीवर ने नदी मे मछली पकडी और उसके पेट को चीरा तो उसे वहा गोला प्राप्त हुआ । धीवर उस गोले का मूल्य नही समझ सका और उसे बनिये को दे दिया । अब बनिये की बुद्धि मे यह बात आई कि अपनी खरी कमाई पानी मे भी नही डूबती । इसके बाद वह ईमानदारी से व्यापार करने लगा और कालान्तर मे धनवान बन गया ।

यह कथा उपदेशात्मक है । इसका एक रूपान्तर भी श्री शुभशील गणि ने अपने ग्र थ मे सकलित किया है । उसमे भी बनिये की हाट मे कई कपट-तराजू है एक—पो कर 'दो पोकर, तीन-पोकर, चार-पोकर पाच-पोकर आदि । बनिया इनसे सामान खरीदने और बेचने मे दोनो समय लाभ करता है । उसके एक पुत्र भी है । जब बनिया अनाज लेता है तो वह कहता है, "बेटा, पच पोकर तराजु ला ।' जब वह सामान बेचता है तो कहता है—बेटा एक पोकर, (दो पोकर, तीन पोकर, चार पोकर) तराजू ला ।

एक बार एक स्त्री उसकी हाट पर आई और उसने बेटे के प्रति सेठ के सम्बोधन वाक्य सुने। इससे वह चकित होकर बोली 'सेठ तुम्हारे बेटा तो एक ही है, इसके नाम इतने अधिक कैसे रखे गए ? सेठ ने बात बनाते हुए तत्काल उत्तर दिया "इसका एक नाम मैंने रखा है, दूसरा इसकी माँ ने रखा है, तीसरा नाम इसके मामा के द्वारा और चौथा इसकी मामी के द्वारा रखा गया है, पाँचवाँ नाम अन्य लोगो की ओर से है।

कथा के इस रूपान्तर मे बनिया और भी अधिक धूर्त बन गया है। इसके पूर्वरूप मे प्रयुक्त 'कथानक रूढ़ि' विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उसमे जल मे विसर्जित स्वर्ण (अथवा गहना) मछली के पेट मे पहुँच जाता है और फिर वह धीवर के माध्यम मे सही मालिक के पास लौट आता है। महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कुंजी भी यही 'अभिप्राय' है। 'पुन्न की जड सदा हरी' (राजा और मन्त्रीविषयक) राजस्थानी लोक-कथा मे भी इसका प्रयोग है।

६. करहा म करि करक्कड़ो

किसी गाँव मे एक ब्राह्मण रहता था। वह ग्रहण के समय भी दान लेता था। उसकी स्त्री उसे ऐसा न करने के लिए कहा करती थी परन्तु वह मानता न था। कालान्तर मे ब्राह्मण मर कर ऊँट बना और उसकी पत्नी मृत्यु के उपरान्त राजपुत्री हुई। राजपुत्री का विवाह हुआ तो उसी ऊँट पर सामान लादा गया और वह अपने पीहर से पतिगृह के लिए विदा हुई।

सामान के अतिभार से ऊँट कराहने लगा तो राजपुत्री ने उस पर ध्यान दिया। अब उसे पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण हो आया और वह ऊँट से बोली —

करहा म करि करक्कडो, भार घणो घर दूरि।
तू लेतो, हूँ वारती, राहु गिळतइ भूरि।।

इतना सुन कर ऊँट को भी पूर्वभव का स्मरण हो आया और उसे बडा पछतावा हुआ। आखिर उसने अनशन के द्वारा शरीर छोड दिया और वह स्वर्ग को गया।

मुनि श्री शुभशील गणि द्वारा सकलित यह कथा कर्मफल का प्रकाशन करने हेतु एक सुन्दर उदाहरण है। कार्तिक मास मे राजस्थानी महिला-वर्ग द्वारा एक पुण्यकथा विशेष रूप से कही और सुनी जाती है। उस कथा का नाम है—'इल्ली अर घुणियो।' उसमे अनाज मे रहने वाली एक इल्ली

(कीट) घुन से कहती है कि वह भी उसकी तरह् कार्तिक-स्नान करे। परन्तु घुन ऐसा नही करता। फलत: दूसरे जन्म मे इल्ली राजपुत्री बनती है और वह घुन मीडा (घेटा) बनता है। राजपुत्री का विवाह होने पर वह मीडा भी उसे प्राप्त हो जाता है। जब उसे प्यास लगती है और कोई पानी नही पिलाता तो वह राजरानी से कहता है—

रिमको-झिमको ए स्यामसुन्दर बाईए, थोडो पाणीडो प्या।

इस पर पूर्वभव को स्मरण करके राजरानी उसे कहती है—

मैं कवँ छी ओ, तू सुणँ छो ओ, घाई म्हारा घुणिया कातिगडो न्हा।

नई रानी के इन शब्दो की चर्चा उसकी अन्य सौतो मे फैलती है तो वह राजा को समस्त पूर्व-वृत्तान्त सुना देती हैं। राजा भी कार्तिक स्नान के महत्व को समझ जाता है और अपनी सम्पूर्ण प्रजा को ऐसा करने के लिए आज्ञा देता है।

उपर्युक्त कथा का एक रूपान्तर भी श्री शुभशील गणि ने प्रस्तुत किया है। तदनुसार वन मे रहने वाले एक कठियारे की स्त्री स्वय जगली पुष्प एव नदी जल से प्रभु-पूजा करती है और अपने पति को भी ऐसा करने के लिये कहती हे। परन्तु वह उसकी बात पर ध्यान नही देता। कालान्तर मे कठियारी मर कर राजपुत्री और फिर राजरानी बनती है। कठियारा पहिले की तरह सिर पर लकडी का भार रख कर बेचता है। उसे देख कर राजरानी को पूर्वभव स्मरण हो जाता है और वह कहती है—

अडवी पत्ती नईअ जल, तोइ न वूढा हत्थ।
अज्ज एह कवाडीह, दीसइ साइ ज अवत्थ॥

यह गाथा काफी पुरानी है। सोमप्रभ सूरि विरचित 'कुमारपाल प्रतिबोध' मे इसका निम्न रूप प्राप्त है—

अडविहि पत्ती नइहि जलु तो वि न वूहा हत्थ।
अव्वो तह कव्वाडियह, अज्ज विसज्जियवत्थ॥

(अटवी के पत्ते और नदी का जल सुलभ था तो भी तूने हाथ नही हिलाए। हाय, आज उस कावड वाले के तन पर वस्त्र भी नही है।)

आज भी यही कथा कार्तिक-मास मे कही जाती है। इसकी 'गाथा' का प्रचलित रूप इस प्रकार है—

कातिगडँ नह न्हाइया, हर नर जोड्या हत्थ।
सायधण बैठी समदरा, तेरी वा ही गत्त॥

७ ऊखाणो कथा

'पञ्चशती प्रबोध सम्बन्ध' मे कुछ ऐसी रोचक कथाएँ भी सकलित है, जिनके आधार पर जनता मे कहावतें चल पडी हैं। एक कहावत (ऊखाणो) है– 'घर सरीखी यात्रा नही।' इसकी कथा सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार है–

एक बार एक बनिये ने अपनी माता की सलाह से किसी सेठ से पाँच सौ द्रम्म ब्याज पर उधार लिये। फिर वह इस रकम को लेकर देव यात्रा के लिए चल पडा। बनिया मार्ग मे यात्रा कष्ट से तग आ गया, अत वह एक गाँव मे ठहर गया। उसके पास धन था ही, इसलिए वह गाँव मे मजे से बैठा रहा। जब लोग देवयात्रा से वापिस लौटे तो वह भी उनके साथ अपने घर आ गया।

बनिये ने जिस सेठ से यात्रा के लिए धन उधार लिया था, वह अपनी रकम और ब्याज उससे माँगने लगा। परन्तु बनिया कर्ज चुकाने की स्थिति मे नही था। अन्त मे सेठ ने उसके घर धरना देने का निश्चय किया और कहा, "या तो मुझे मेरी रकम लौटाओ, नही तो मुझे उस देवयात्रा का पुण्य दे दो।"

बनिये ने अपनी देवयात्रा का पुण्य सेठ को देना स्वीकार कर लिया। परन्तु यह बात उसकी माता को पसन्द नही आई। वह अपने बेटे से बोली, "यात्रा पुण्य से स्वर्ग सुख की प्राप्ति होती है। अत यात्रा-पुण्य कभी किसी को नही देना चाहिये।" इस पर बनिये ने अपनी माता को समझाया कि यह घर सरीखी यात्रा नही है। भीतरी भेद सुन कर माता चुप हो गई और सेठ उस यात्रा का पुण्य प्राप्त कर खाली हाथ अपने घर चला गया।

एक अन्य कहावत 'जिम सउ तिम पंचास' की कथा भी नए रूप मे दी गई है—

दो मित्र धन कमाने के लिये परदेश गए। वहाँ उनमे से एक ने पचास दीनार और दूसरे ने सौ दीनार कमा कर इकट्ठे किये। फिर वे अपने घर की ओर लौट आए। जब वे अपने नगर के पास पहुचे काफी रात पड चुकी थी और नगर-द्वार बन्द हो चुका था। इसलिये वे वन मे एक देवस्थान पर सोने के लिये चले गए। वहाँ एक साथी सो गया और दूसरा साथी जागता रहा।

जागने वाले ने देखा कि मुकुट हार कुडल आदि आभरणो से प्रकाशमान यक्ष देवता उसके सामने है। अत उसने लोभवश देवता का हार उतार लेने की चेष्टा से अपना हाथ उठाया। फल यह हुआ की वह देवकोप से

स्तम्भित हो गया। अब तो वह गिडगिडाने लगा और देव से क्षमा माँगने लगा। यक्ष ने कहा कि कमाकर लाया हुआ सम्पूर्ण धन उसके भण्डार मे जमा करवा दिया जाए तो उसे क्षमा किया जा सकता है। उसने ऐसा ही करके अपना पिण्ड छुडाया और फिर वह सो गया।

जब पहला मित्र सो गया तो दूसरे मित्र की जागने की बारी आई। अपनी बारी मे उसने भी यक्ष देवता का हार लेने की चेष्टा मे सारी कमाई उसकी भेट चढा दी। दूसरे दिन उन्होने एक-दूसरे से निम्न पद्यो मे अपनी पीडा प्रकट करते हुए भवितव्यता की प्रबलता का वर्णन किया—

दूरि दिसतरि चालीआ, बडी करी पुण आस।
आवि दोहिला खधि चडि, जिम सउ तिम पचास॥
ग्रह अबला विहि बकडी, दुज्जण पूरउ आस।
आवि दोहिला खधि चडि, जिम सउ तिम पचास॥

'सौ ज्यू पचास' कहावत राजस्थान मे बडी जनप्रिय है। इसकी कहानी दूसरे रूप मे भी प्रचलित है। उसकी गाथा इस प्रकार है—

घर पर तो घोडी बिकी, खेत तिला की रास।
नेम निमाणा कथडा, सौ ज्यू और पचास॥

इस कहानी मे छोटा साढू अपने बडे साढू को ठग लेता है। बहिनो के पति आपस मे साढू कहे जाते है। उपर्युक्त गाथा का एक रूपान्तर इस प्रकार भी है—

बाहर करसण मोळवे, घरि तिला री रास।
देहे नणदल दोकडा, सौ ज्यू तिम पचास॥

एक अन्य कहावत है—क्षिणि क्षिणि पाहिं चिणि चिणि भली; इसकी कहानी इस प्रकार है—

किसी समय एक राजपूत सब प्रकार से सज कर और घोडे पर चढ कर नगर से बाहर निकला। मार्ग मे उसकी भेट एक ब्राह्मण से हुई। ब्राह्मण ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि जूतो के बिना उसे (ब्राह्मण को) बडा हो रहा है, अत उसका कष्ट दूर किया जावे। राजपूत ने अपने जूते उतार कर ब्राह्मण का कष्ट मिटा दिया। फिर तो ब्राह्मण ने उसकी पगडी आदि अन्य भी कई चीजें माँग कर प्राप्त करली और वह आगे चल पडा।

आगे जाकर ब्राह्मण ने अपने मन मे सोचा कि जब राजपूत ने केवल माँगने मात्र से ही उसे अपनी अनेक चीजें भेट करदी तो इसी प्रकार वह अपना

घोडा भी उसे दे सकता था। इम विचार को लेकर ब्राह्मरण वापिस उस राजपूत के पास आया और उसका घोडा माँगा। राजपूत ने लोभी ब्राह्मरण पर क्रोध किया और उसकी पीठ पर कोडा लगाते हुए कहा, "इतनी चीजे प्राप्त करके भी तेरी इच्छा पूरी नही हुई ?" ब्राह्मरण ने उत्तर दिया, "खिरिण खिरिण पाहि चिरणी चिरणी भली।"

राजपूत इस उत्तर को नही समझ सका तो ब्राह्मरण ने इसका खुलासा करते हुए कहा कि घोडा प्राप्त करने का मौका खो दिया गया, यह उसके मन की खिरिण खिरिण थी जो कोडे की मार की 'चिरिण चिरिण' से मिट गई।

इस कहावत का आधुनिक रूप है—चिरमिराट मिट ज्या पण गिर-गिराट कोनी मिटै। इसकी कहानी मे एक साधु किसी चौधरी के घर प्रतिदिन भिक्षा लेने के लिए आता था और उसकी भैंस के सीग देखता था, जो ऊपर की ओर उठ कर चक्राकार वने हुए थे। साधु सोचता रहा कि उसका सिर भैंस के सीगो मे पूरा प्रवेश कर सकता है या नही ? एक दिन उसने वैठी हुई भैंस के सीगो मे अपना सिर डाल कर मन की यह शका मिटानी चाही तो भैंस भडक कर उठी और साधु के चोट आई। चौधरी ने दौड कर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की और गिर पडने का कारण पूछा तो साधु ने उपर्युक्त कहावत कह कर अपना हाल सुनाया।

श्री शुभशील गरिण ने अपने ग्र थ मे एक कहावती कथा और भी दी है। कहावत है 'वानर अनइ वीछी खादउ'। कथा सार रूप मे इस प्रकार है-

एक वन्दर ने वन मे पडे हुए आम के छिलके को खाने के लिये अपने मुख मे रखा। उस छिलके मे वैठे हुए विच्छू ने वदर को काट लिया और उसे असह्य पीडा हुई जिससे वह छटपटाने लगा। ऐसी हालत मे एक अन्य वदर ने उसकी पीडा का कारण पूछा तो उसने कहा कि जहाँ कही पडी हुई वस्तु को मुख मे रखने का यह फल है।

गाथा इस प्रकार है—

जीवज्जीव जीवउ किमइ,
आवइ हाथ न लाउ किमइ।
जीवज्जीव जीवइ ईम,
छोखरि हाथि जीवाहि वानीम ॥

इसी गाथा से मिलती सी एक लौकिक याथा और भी राजस्थान मे प्रचलित है—

के तो जीवो जीवै कोनी ।
जीवै तो इमरत पीवै कोनी ।

कथा इस प्रकार कही जाती है—

किसी वीड (जगल) मे एक चालाक गीदड रहता था । वह अन्य गीदडो से छिप कर मधुमक्खियो के छाते का शहद खाता था और काफी मोटा हो गया था । 'जीवो' नामक एक दूसरे गीदड़ ने उसका पीछा किया कि वह क्या खाकर इतना मोटा हो गया है ? चालाक गीदड ने उससे पिण्ड छुडाने का निश्चय किया और वह 'जीवो' को शहद खाने के लिये भिडो के छत्ते के पास ले गया । शहद के लोभ मे 'जीवो' ने उस छत्ते पर मुह मारा कि भिडो ने उसे बुरी तरह काट लिया और वह किसी तरह अपनी घूरी (मांद) मे आ सका । अगले दिन चालाक गीदड ने उसे फिर शहद खाने के लिये बुलाया तो 'जीवो' ने उपर्युक्त गाथा कह सुनाई ।

यह कहानी वडी महत्वपूर्ण है और इसका मूल उत्स अनुसन्धेय है । महाभारत मे एक प्राचीन लोककथा सकलित की गई है । वह लोककथा अपने अनुभव के रूप मे विदुर ने धृतराष्ट्र को सुनाई है । मूल श्लोक इस प्रकार है—

वय किरातै सहिता गच्छामो गिरिमुत्तरम् ।
ब्राह्मणैर्देवकल्पैश्च विद्याजम्भकवार्तिकै ॥२१॥
कुञ्जभूत गिरी सर्वमभितो गन्धमादनम् ।
दीप्यमानौषधिगण सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥२२॥
तत्र पश्यामहे सर्वे मधु पीतममाक्षिकम् ।
मरुप्रपाते विषमे निविष्ट कुम्भसमितम् ॥२३॥
आशीविषै रक्ष्यमाण कुबेरदयित भृशम् ।
यत् प्राश्य पुरुषो मर्त्यो अमरत्व निगच्छति ॥२४॥
अचक्षुर्लभते चक्षुर्वृद्धो भवति वै युवा ।
इति ते कथयन्ति स्म ब्राह्मणा जम्भसाधका ॥२५॥
तत किरातास्तद् दृष्ट्वा प्रार्थयन्तो महीपते ।
विनेशुर्विषमे तस्मिन् ससर्पे गिरिगह्वरे ॥२६॥
तथैव तव पुत्रोऽय पृथिवीमेक इच्छति ।
मधु पश्यति समोहात् प्रपात नानुपश्यति ॥२७॥

(महाभारत ५, ६२, २१–२७)

यहाँ विदुर ने एक प्राचीन लोककथा को अपने व्यक्तिगत अनुभव के रूप मे प्रकट किया है, जो कथा कहने की एक शैली है। इस कथा का 'मधुपश्यति समोहात् प्रपात नानुपश्यति अंश बडा महत्वपूर्ण है। जीवो नामक गीदड की कहानी मे वह दूसरे रूप मे उपस्थित है। इसी प्रकार 'बानर अनइ बीछी खाघउ' नामक कहावती कथा मे भी यह मौजूद है। भारतीय कथा-साहित्य मे 'मधु-विन्दु' अभिप्राय का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इसके विषय मे विद्वानो ने बडी गहराई से चर्चा की है। इसका मूल उत्स उपर्युक्त महाभारत कथा है। लौकिक उदाहरण के रूप मे वन्दर और गीदड से सम्बन्धित दोनो कहानियाँ ध्यान देने योग्य है। अधिक जानकारी के लिये 'वरदा' (१२/३) मे प्रकाशित लेख द्रष्टव्य है।

८. मै हूँ खन्ती सैसो

राजस्थान मे सैसो खाती विषयक लोक कथा बडी जनप्रिय है। उसका सक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

किसी गाँव मे सैसा नामक एक खाती रहता था, जो दूर-दूर के इलाको मे जाकर चोरी करता था। साथ ही उसकी हिम्मत इतनी बढी हुई थी कि वह अपने गाँव मे भी चोरी करने से न चूकता था। एक बार उसने अपने ही गाँव के ठाकुर की भैंस चुरा ली और उसे दूसरी जगह पहुँचा दिया।

ठाकुर ने भैंस की बडी तलाश की परन्तु उसका कोई पता नही चला। गाँव के लोगो को भी काफी डराया गया परन्तु कोई फल नही निकला। अन्त मे ठाकुर ने हुक्म दिया कि गाँव का प्रत्येक व्यक्ति माता (देवी) के मन्दिर मे जाकर प्रतिमा से अपना हाथ छुवाएगा। जो चोर होगा, उसका हाथ मूर्ति से चिपक जाएगा। उस देवी मूर्ति के बारे मे यही मान्यता थी।

जब सैसा खाती ने राजा का हुक्म सुना तो वह माता का चमत्कार देखने के लिए रात के समय चुप-चाप मन्दिर मे गया और उसने मूर्ति का अपने हाथ से स्पर्श किया। उसका हाथ तत्काल वही चिपक गया। इस पर सैसा ने दूसरे हाथ की कुल्हाडी से उस पत्थर की मूर्ति को तोडना शुरू किया। इस क्रिया से माता भी घबराई और उसने चोर का हाथ अलग कर दिया। इसके बाद सैसा निश्चिन्त होकर अपने घर मे आ सोया।

अगले दिन ठाकुर की उपस्थिति मे बारी-बारी से उस गाँव के

प्रत्येक निवासी ने माता की मूर्ति से अपना हाथ छुवाया परन्तु किसी का हाथ उससे नही चिपका और वे सब निर्दोष सिद्ध हुए । जब सैसा खाती की वारी आई तो वह देवी के पास गया और धीरे से बोला —

तू है माता बावळी । भैंस गई है रावली ॥

मै हू खाती सैसो । वो ही कुहाडो वो ही वैसो ॥

रात्रिकाल की घटना का स्मरण करके माता घबरा गई । उसने सैसा का हाथ भी नही चिपकाया । इस प्रकार वह सब की नजरो मे निर्दोष बना रहा और ठाकुर उसका कुछ भी नही विगाड सका ।

देवी विषयक इस कथा का पुराना रूप अनुसधेय है । मुनि हेमविजय गणि ने 'कथारत्नाकर' ग्रन्थ मे एक कथा सकलित की है, जिस मे इसका प्राचीन रूप द्रष्टव्य है । उसका सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

पुराने जमाने मे उज्जैन नगरी मे खाफरा (खर्पर) नामक चोर रहता था । वह चोरी की कला मे अत्यन्त प्रवीण तथा बडा हिम्मत वाला था । एक बार रात्रि के समय खाफरा श्मशान मे गया । वहा उसने अगारो पर रोटी सेकी । फिर वह हरसिद्धि देवी के मन्दिर मे पहुँचा । मन्दिर मे कुछ ऊँचाई पर तेल का दीपक जल रहा था । रोटी खाफरा के पास थी । वह हरसिद्धि देवी के ऊपर अपना पैर रख कर दीपक के तेल से रोटी चुपड कर खाने लगा । देवी ने ऐसी स्थिति कभी अनुभव नही की थी । अत उसने चकित होकर अपनी जीभ बाहर निकाली । इस पर खाफरा ने समझा कि देवी को भी भूख लगी है और उसने अपने मुँह का जूँठा ग्रास देवी की जीभ पर रख दिया । यह स्थिति देवी के लिए और भी विकट थी–एक मनुष्य ने अपना जूँठा ग्रास उसकी जीभ पर रख दिया ! परन्तु देवी को उस मनुष्य का कुछ भी विगाड करने की हिम्मत नही हुई । वह तो केवल इतना ही कर सकी कि चोर के जूठे भोजन से अपवित्र अपनी जीभ को बाहर ही निकाले रही । कुछ समय बाद खाफरा वहा से चला गया ।

अगले दिन लोगो ने देखा कि देवी हरसिद्धि की जीभ बाहर निकली हुई है, जो कोप की सूचक है । अत देवी को प्रसन्न करने के लिये उसकी नाना प्रकार से सेवा पूजा की गई । फिर भी देवी की जीभ उसके मुँह मे नही गई और वह ज्यो की त्यो बाहर ही रही । इस पर लोग बहुत डरे और नगरी मे भयकर उपद्रव की आशका करने लगे । जब यह सूचना राजा विक्रमादित्य के पास पहुँची तो उन्होने प्रजा का भय दूर करने का निश्चय

किया। राजा ने नगरी मे ढिंढोरा पिटवाया कि जो व्यक्ति देवी को प्रसन्न करके उसकी जीभ उसके मुँह मे प्रविष्ट करवा देगा उसे प्रचुर स्वर्णराशि दी जाएगी।

खाफरा को यह अच्छा मौका मिला। उसने देवी को राजी कर देने के लिए हाँ भरदी। फिर खाफरा देवी के मन्दिर मे गया और उसने भीतर से किवाड बद कर लिए। वहाँ मन्दिर मे उसके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति न था। खाफरा ने एक बडा सा पत्थर उठाया और वह देवी से बोला, 'या तो अपनी जीभ मुँह मे डाल ले, नही तो इस पत्थर से अभी तेरे टुकडे-टुकडे कर देता हूँ। देवी उस दुष्ट को जानती थी अत उसने भयभीत होकर अपनी जीभ मुँह के भीतर रखली। फिर खाफरा ने मन्दिर के किवाड खोल दिये और जनता ने देवी को सदा की तरह सामान्य स्थिति मे देखा। फलस्वरूप खाफरा को काफी सोना मिला और इसकी प्रशसा भी हुई।

चोरो की चालाकी और उनकी हिम्मत से सम्बन्धित अनेक लोक कथाएँ खाफरा के नाम के साथ जुड गई है। इस कथा मे भी ऐसा ही हुआ है। राजस्थान मे तो 'खप्परिया चोर' बहुत अधिक लोक कथाओ का नायक है। परन्तु उपर्युक्त दोनो कथानको की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो प्रचलित राजस्थानी लोक कथा इस पुरानी कहानी का ही एक विशिष्ट रूपान्तर है। समयानुसार लोक कथाओ मे परिवर्तन होता ही रहता है। यह एक रोचक विषय है कि पुरानी कहानी का खाफरा उसके आधुनिक रूप मे सेसो खाली बन कर लोकप्रिय है। कहानी के दोनो रूपो मे भयभीत देवी उपस्थित है। अन्य घटनाओ मे अन्तर जरूर है परन्तु इसका भीतरी तत्व ज्यो का त्यो चला आ रहा है। जो भी अन्तर है, उसका कारण उज्जेन और राजस्थान के वातावरण की भिन्नता है।

तीन सौ पाँच कथाओ की उक्त सूची (मरुभारती १४। ३) मे भी ७३ वी कथा का नाम इस प्रकार दिया गया है—'साहसोपरि चौर देवी की जीभ ऐंठी'।

९. चारण जाल्हणसी

श्री अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर के एक हस्त लिखित गुटके मे 'करण लाखावत देसल राठोड चारण जालूणसी री वात' प्राप्त है, जो अपने ढग की एक निराली ही वस्तु है। खेद है कि यह वात गुटके मे पूरी लिखी हुई नही है और अद्यावधि इसकी दूसरी पूर्ण प्रति भी कही प्राप्त नही हो सकी है। प्राप्त वात को विवेचन सहित राजस्थान-भारती (वर्ष

१०, अक ४) मे प्रकाशित करवाया जा चुका है। मुनि हेमविजय गरिग के सस्कृत ग्र थ' कथारत्नाकर (सम्वत् १६५७) मे जाल्हणसी चारण विषयक एक सरस कथा दी गई है जो उपर्युक्त राजस्थानी वात से भिन्न कथानक रखने पर भी किसी अग मे मिलती है। वात और कथा मे जाल्हणसी की प्रवृत्ति एव स्वभाव लगभग समान ही है। कथा का सार इस प्रकार है—

ताहा केहा पह पूछैरणां, जहाँ रै चढरणं रथ।
सवळी तीडा मिळि गई, सो सम्वल सो सथ।

यही दोहा अपने आधे रूप मे मुहता नैणसी ने भी अपनी ख्यात मे 'राव तीडा की वात' मे दिया है, जहाँ सुवळी सोनगरो रानी राव तीडा से मिल जाती है–'सुवळी तीडै मिळि गई सो सम्बल सो सत्थ।" दोहे का आधा भाग नैणसी ने अपनी ख्यात (भाग ३, पृष्ठ २२, मे एक मुहावरे के रूप मे प्रयुक्त किया है–"ताईहा केहा पह पूछैरणा जाह पॉखला रथा लडाई हुई।" इस विषय मे अन्वेपरणा (वर्ष १, अक २) मे चर्चा की जा चुकी है।

यही दोहा 'काँवळो जोईयो नै तीडी खरळ री बात' वरदा (वर्ष ७, अक ३) के अन्त मे भी देखा जाता है, जहाँ इसका रूप कुछ परिवर्तित है—

पह केहा परि पूछरणा, जाँह पखाळा रथ।
कवळो तीडी ले गयो, ऊट ज समल सथ।

इस 'वात' का कथानक नैणसी के वृत्तान्त से भिन्न प्रकार का है। निश्चय ही 'वात' के द्वारा नैणसी का वृत्तान्त प्रभावित प्रतीत होता है। 'वात' भी किसी लोक कथा को सवार-सजा कर प्रस्तुत की गई है और वह लोक कथा अनुसधेय है। मुनि हेमविजय गरिग ने अपने सस्कृत ग्रन्थ कथा रत्नाकर मे लौकिक कथाओ को एक विशेप ढग से सकलित किया है और वहाँ इस 'वात' का पुराना तथा सरल रूप सहज ही देखा जा सकता है। इस प्रकार एक 'कथा' और एक 'वात' की तुलना का सुन्दर अवसर सामने आता है, जो वडा रोचक और उपयोगी विषय है। कथा का मुख्य श्लोक इस प्रकार है—

यस्य मित्र धिया धाम' स किं कार्य न साधयेत्।
प्रियामुष्ट्रद्वयोपेता, सुहृद्ध्यानयद्वरिणक॥

कथा का सक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

श्री विलास नगर मे रहने वाले वरिणक् धनदत्त की पत्नी धनश्री अत्यन्त रूपवती तथा विनयवती थी। उसे भरमा नामक धाडी (डाकू) उठा कर अपनी पल्ली मे ले गया और घर मे रखली। धनश्री के विना धनदत्त ने

अपना जीवन सारहीन समझा । उसने किसी तरह तलाश करके आखिर अपनी पत्नी का पता लगा लिया । फिर उससे एक सहायक को साथ लिया और उसकी बुद्धि की जाँच की । सर्वप्रथम धनदत्त ने एक सहायक के सामने एक बडा और एक छोटा इस प्रकार दो दतौन रखे । सहायक ने उन मे से बडा दतौन उठाया तो धनदत्त ने उसे लोभी मानकर छोड दिया । फिर एक दूसरे व्यक्ति की सहायक के रूप मे परीक्षा की गई । उसके सामने दो बडे और दो छोटे इस प्रकार सुपारी के चार टुकडे रखे गए । उस व्यक्ति ने उन मे से बडे टुकडे अपने लिए उठाए तो उसे भी लोभी समझकर छोड दिया गया । अत मे धनदत्त ने एक तीसरे व्यक्ति को सर्वथा योग्य समझकर अपने साथ लिया ।

अपने बुद्धिमान साथी को लेकर धनदत्त उस ाधडी की पत्नी मे कापालिकवेश मे पहुचा और उसने सकेत से अपनी पत्नी धनश्री को आने की सूचना दी । धनश्री उसके साथ चलने को तैयार थी । धनदत्त एक घडी मे एक योजन चलने वाली 'टाक' नामक साँड (ऊटनी) ली और कृष्ण चतुर्दशी की रात के अधेरे मे वे तीनो गुप्त रूप से उस पर चढकर भाग निकले । पीछे से जब भरमा को उनके भाग निकलने का पता चला तो वह बडा क्रोधित हुआ और उसने एक घडी मे दो योजन पार करने बाला 'सचो' नामक ऊट लिया और उसपर चढ कर दौडा ।

धनवती ने पीछा करने वाले धाडी को आया समझ कर अपने पति को सारी बात समझाई तो वे तीनो ही सहायक के कहने से ऊँट बिठा कर नीचे उतर गए । सहायक ने उन दोनो को कुछ दूर पर उगी हुई झाडियो मे छिपने के लिए कह दिया और वह स्वय अपने पैर पर चोट मार कर वही घायल के रूप मे कराहने लगा । जल्दी ही भरमा वहाँ आ पहुचा और उसने उन दोनो का पता पूछा । सहायक ने उसे विपरीत दिशा मे जाने के लिए कह दिया । धाडी ने अपना सचो ऊट वही छोडा और विपरीत दिशा की झाडियो मे उन्हे पकडने के लिए वह दौड गया । इतने मे ही सहायक ने धनदत्त और धनश्री को बुलाकर 'टाक' पर चढा दिया और स्वय 'सचो' ऊट पर सवार हो गया । जब वे दौडे तो भरमा ने उनको दूर से देखा परन्तु 'टाक' और 'सचो' उनके पास थे, अत उनका पीछा करना व्यर्थ समझ कर वह निराशासहित लौट गया ।

कथा की वस्तु इतनी सी ही है, जिसे जैन मुनि ने किसी राजस्थानी अथवा गुजराती लोक कथा से लिया है । अन्त मे 'टाक सचो मल्यो' कहावत भी दी गई है । (तेनायमाभापणक सर्वत्र प्रथित 'टाक सचो मल्यो') ।

कहना ना होगा कि अन्य जैन कथा लेखको के समान प्रारम्भ मे पात्रो के नाम आदि पलटने के अतिरिक्त आखिर इस लोककथा को एक उपदेश-कथा ही रखा गया है और इसे 'वात' नही वनाया गया है ।

'कांवळो जोईयो नै तीडी खरळ री वात' मे इस कथानक को पूरी तरह सवार-सजा कर एक सरस 'वात' के रूप मे प्रस्तुत किया गया है । वात मे कथा का पूरा वातावरण वदल कर मध्यकालीन राजपूत-जीवन का स्वाभाविक चित्र सामने रखा गया है । जैन कथा का नायक धनदत्त वात मे कावलो जोईयो के रूप मे प्रकट है । वहा उसकी पत्नी धनश्री का नाम तीडी हो गया है । वात मे सहायक का काम कावळे का वहनोई करता है । वहा भी सहायक की योग्यता की परीक्षा की गई है परन्तु जाच करने का काम राजपूती-जीवन के अनुसार हथियारो से होता है । भरमा की जगह वात मे अखा निरवाण है जिसका काम ही धाडा मारना है । अन्त मे अखा से पिंड छुडाने का तरीका लगभग वही है । इसी प्रकार दो ऊँट हाथ आने का प्रसग भी वात मे है—"समल नै सथ दोनू ऊँठ ल्यायो । कवळो सुख सु तीडी भोगवै छै । सीरोही सुख सु आपरे घरे गयो ।"

इस प्रकार कथा और वात का मूल ढाचा समान आधार होने के कारण लगभग एक ही है परन्तु फिर भी इन दोनो मे भारी अन्तर है । वात मे काँवळा, तीडी अखो तथा देवडो (सहायक) सभी अपने चरित्र की वडी ही सरस और स्वाभाविक झाँकी प्रकट करते है, जो सहज ही श्रोता अथवा पाठक के हृदय को आकर्षित कर लेती है । ये पात्र सजीव से प्रतीत होते है । वहा वर्णन को आकर्षक वनाने के लिये विस्तार दिया गया है और अनेक छोटी-मोटी नई घटनाए भी उद्भावित की गई है । यह सब वात लेखक की कला-कुशलता का प्रकाशन है ।

वात मे जो आकर्षक रग भरा गया है, कथा मे उसकी साधारण झलक भी नही है । इसी चीज को हम इस रूप मे भी कह सकते है कि कथा, एक साधारण रेखा चित्र है तो 'वात' अनेक रगो से भरापूरा एक कलापूर्ण चित्र है । हो सकता है कि 'वात' की आधारभूत लोककथा मे पात्रो के नाम आदि अपरिवर्तित रहे हो । एक ही लोककथा स्थान एव समय के अनुसार ऊपरी रूप कुछ परिवर्तित अवश्य कर लेती है परन्तु 'वात' मे उसके कुशल कलाकार का दिमाग अथवा हाथ तो स्पष्ट ही है । जिस प्रकार अनेक लोक-

कथाओ को जैन अथवा बौद्ध वातावरण मे प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा हुई है, उसी प्रकार अनेक लोककथाओ को राजपूती वातावरण मे भी प्रयत्नपूर्वक और बडी सुन्दरता के साथ प्रकट किया गया है। इस विषय मे 'कावळो जोईयो नै तीडी खरळ री वात' एक उदाहरण है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि जिस प्रकार राजस्थान की लोकप्रचलित कहानियो का 'कथा' अथवा 'वात' के रूप मे राजस्थानी भाषा मे सकलन हुआ है, उसी प्रकार न्यूनाधिक मात्रा मे उनका सस्कृत के माध्यम से भी सग्रह किया गया है। इससे लोककथाओ की रजकता एव उपयोगिता सिद्ध होती है। विद्वानो ने इस विषय के महत्व को भली भाँति हृदयगम किया और उनके स्तुत्य श्रम का मधुर फल हमे सुलभ है। इस सम्पूर्ण साहित्य-सामग्री का गम्भीर अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है।

राजस्थान की लोककथा, राजा सुगड़

पुराणवर्णित गगावतरण की कथा का साराश इस प्रकार है—सूर्यवश मे सगर नामक परम प्रतापी राजा हुए। उन्होने चक्रवर्ती पद पाने के लिए अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। देवराज इन्द्र को इससे जलन हुई और उन्होने यज्ञीय अश्व को चुरा कर बहुत दूर कपिल मुनि की गुफा मे चुपके से बाध दिया। राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। वे घोडे की खोज मे निकले सारी पृथ्वी छान डाली परन्तु घोडा कही नही मिला। अन्त मे वे कपिल मुनि की गुफा मे पहुँचे। वहाँ घोडा बन्धा था और मुनिवर तपस्या मे लीन थे। सगर पुत्रो ने सोचा, इसी व्यक्ति ने हमारा घोडा चुराया है और अब आँखे बन्द करके पाखण्ड रच रहा है। उन्होने कपिल मुनि पर प्रहार करना प्रारम्भ किया। मुनिवर ने नेत्र खोले और उनमे मे ऐसी ज्वाला निकली कि सगर के साठ हजार पुत्र तत्क्षण वही जल कर राख की ढेरी हो गए।

राज-पुत्रो को गए काफी समय हो चला था और उनका कोई वृत्तान्त नही मिला। अत' राजा सगर को बडी चिन्ता हुई। उनके एक पुत्र असमजस नामक था, जिसको दुराचरण के कारण पहिले ही राजा ने निकाल दिया था। असमजस के पुत्र का नाम था अशुमान। राजा सगर ने अपने पौत्र अशुमान को अपने पुत्रो की खोज के लिए भेजा। वह पता लगा कर कपिल

मुनि की गुफा मे गया। कपिल मुनि उससे मिल कर अत्यत प्रसन्न हुए और घोडा उसे सौंप कर बोले, बेटा जो होना था सो हो चुका। अब तुम यह घोडा ले जाओ और राजा सगर का यज्ञ सम्पूर्ण करवाओ। परन्तु अशुमान अपने साठ हजार चाचाओ की अकाल मृत्यु से वडा व्यथित हुआ। मुनिवर ने उसे बतलाया कि यदि गगाजी धरती पर आकर राख की इन ढेरियो को छू ले तो तुम्हारे चाचाओ का मोक्ष हो सकता है। गगाजी इस समय ब्रह्मा के कमण्डलु मे है। तुम उनको प्रसन्न करो। इतना सुन कर अशुमान वहा से लौट आया। उसने ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप किया, परन्तु उसके जीवन काल मे यह काम पूरा नही पड सका।

अशुमान के पुत्र हुए दिलीप। उन्होने भी ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए उग्र तप किया, परन्तु वे राजी न हुए। दिलीप के पुत्र हुए भगीरथ। वे अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए तपस्या मे लीन हो गए। देवताओ ने भगीरथ का तपोभग करने के लिए उपाय भी किए, परन्तु उनकी एक चाल न चल सकी और अत मे ब्रह्मा प्रसन्न हुए। भगीरथ ने उनसे गगाजी को धरती पर भेजने का वरदान माँगा। ब्रह्मा इसके लिए तैयार हुए, परन्तु गगाजी को धरती पर सँभाले कौन ? इस कार्य के लिए भगीरथ ने शिव की तपस्या की और वे तैयार हुए।

शिव हिमगिरि के उच्च शिखर पर खडे थे। उन्होने अपनी जटाओ को तैयार किया। गगाजी को गर्व था कि उन्हे धरती पर कोई सभाल नही सकेगा। वे आकाश से उतरी पर शिव की जटाओ मे ही समा गई। भगीरथ ने फिर शिव से विनती की, तव गगाजी को जटाओ से मुक्ति मिली। अब भगीरथ आगे आगे चलते थे और गगाजी उसी मार्ग से पीछे पीछे आती थी। मार्ग मे जह्नु मुनि का आश्रम जल तरगो मे वह गया। इस पर क्रोधित होकर उन्होने गगाजी को चुल्लू भर कर पी डाला। भगीरथ ने जह्नु मुनि से विनय की। तव उन्होने गगाजी को अपने कान मे से निकाला। इस प्रकार गगाजी का एक नाम जाह्नवी हुआ। चलते चलते अन्त मे भगीरथ अपने पूर्वजो की भस्म के पास गगाजी को ले गये। उन सब की मुक्ति हुई और गगाजी ने सागर मे प्रवेश किया।

इस प्रकार कई पीढियो तक सतत उद्योग करके तपस्वी सूर्यवशी नरेश गगाजी को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने मे सफल हुए और भगीरथ के नाम पर गगाजी का नाम भागीरथी लोक प्रसिद्ध हुआ। परन्तु जैन-साहित्य

(उत्तराध्ययन टीका) मे गगावतरण की कथा दूसरे ही रूप मे है। उसका साराश निम्न प्रकार से है—

इक्ष्वाकु वशीय राजा जित शत्रु के पुत्र थे चक्रवती सगर। उनके साठ हजार पुत्र थे, जिनमे जह्नु कुमार सब से बडे थे। एक बार जह्नु कुमार अपने समस्त भाइयो सहित पृथ्वी-परिभ्रमण के लिए निकले। घूमते घूमते वे अष्टापद पर्वत (कैलाश) पर पहुँचे। वहा उन्होने जिन चैत्यो के दर्शन किए। उसी प्रकार के जिन चैत्य बनवाने के लिए उन्होने अष्टापद पर्वत को सुरक्षित बनाना ठीक समझा और दण्ड रत्न लेकर सगर के पुत्रो ने उस पर्वत को चारो ओर से खोदना प्रारम्भ किया। खोदते खोदते दण्डरत्न नागलोक के भवनो से जा टकराया। इस पर क्रोधित नागराज ज्वलन-प्रभ जहनुकुमार के पास आए। परन्तु राजकुमार ने नम्रतापूर्वक क्षमा मागी और अपना अभिप्राय उनके सम्मुख प्रकट किया कि वे तो पर्वत के चारो ओर एक खाई खोद कर उसे सुरक्षित बनाना चाहते है। नागराज शान्त होकर चले गए।

खाई तैयार हो गई परन्तु उसमे पानी भरना चाहिए। अत दण्डरत्न से गगाजी को फोड कर खाई मे पानी भर दिया गया। यह पानी नागलोक मे पहुँच गया। इस बार नागराज ज्वलनप्रभ को भयकर क्रोध आया और उन्होने जहरीली आँखो वाले सर्प सगरपुत्रो के पास भेजे, जिनकी आँखो के तेज से वे सब क्षणभर मे जल कर भस्म हो गए। उनके विनाश का समाचार राजधानी मे पहुँचा तो राजा ने बडा विलाप किया।

एक बार अष्टापद पर्वत के आसपास रहने वाले लोगो ने आकर चक्रवर्ती सगर से प्रार्थना की कि उनके पुत्रो ने अष्टापद के चारो तरफ खाई खोदकर उसमे गगाजी का जल भर दिया है। वह जल वह कर उनके गाँवो मे जा रहा है और इससे उन्हे बडा कष्ट रहता है। अत कोई उपाय होना चाहिए। सगर ने अपने पौत्र भागीरथ को बुलवाया और आज्ञा दी कि गगाजी को समुद्र मे ले जाकर मिला दिया जावे और इस प्रकार लोगो का उपद्रव शान्त हो जाएगा। इस उद्देश्य को लेकर भागीरथ चल पडा।

सबसे पहिले भगीरथ ने पूजा आदि के द्वारा नागराज को प्रसन्न किया और फिर उनकी आज्ञा से गगाजी को समुद्र मे ले जाकर मिला दिया। जहनुकुमार के नाम पर गगाजी का एक नाम जाह्नवी पडा और भगीरथ के नाम से उसका नाम भागीरथी हुआ।

ऊपर गगावतरण विषयक जो दो कथानक दिए गए हैं, उनमे समानता एव विभेद दोनो है और वे विचारणीय है। परन्तु राजस्थानी जन साधारण मे गगावतरण के सम्बन्ध मे दूसरी ही मान्यता है। आगे इस दिशा मे ज्ञातव्य प्रस्तुत किया जाता है।

राजस्थान मे जमीन खोदते समय यदि कही सयोग से कोई पुराना कुआँ प्राप्त होता है तो उसे "सुगड कूवो" कहा जाता है। इसका अर्थ है, महाराजा सगर का कुआँ। यह नाम उस कुएँ की प्राचीनता का द्योतक है। राजस्थान की ग्रामीण बोली मे सगर को सुगड कहा जाता है। यहाँ ऐसी मान्यता है कि महाराज सगर के समय मे अगणित कुएँ खोदे गये थे जिन पर कालान्तर मे धूलि फिर गई और वे धरती मे लुप्त हो गए। परन्तु यदा-कदा उनमे से कोई कुआँ खुदाई के समय प्रकट हो जाता है। यह सब लोक विश्वास का विषय है। यहाँ महाराजा सगर के सम्बन्ध मे जो लोक कथा प्रचलित है, उसका साराश दिया जाता है—

किसी वन मे एक गीदड और उसकी स्त्री रहते थे। उनके कोई सतान न थी। एक दिन एक शिशु बालिका उन्हे वन मे अकेली पडी मिली। उसे वे आनन्द के साथ अपनी घूरी मे ले आए और बडे चाव से उसका पालन करने लगे। बालिका समय पाकर बडी हुई। वह गीदड और उसकी स्त्री को ही अपने पिता और माता मानती थी। एक दिन राजकुमार शिकार के लिए वन मे आया और उसने उस लडकी को देखा। राजकुमार उसके रूप पर मुग्ध हो गया और उसके साथ विवाह करने का निश्चय किया। वह लडकी के पास गया तो वह दौड कर अपनी घूरी मे चली गई। राजकुमार ने पता लगाया तो सारी स्थिति उसके सामने स्पष्ट हुई। वह गीदड मानवीय भाषा बोलता था। वह राजकुमार के साथ अपनी पुत्री का विवह करने के लिए तैयार हो गया। शुभ मुहूर्त्त मे यथाविधि विवाह हुआ और गीदड ने कन्यादान मे वह वन अपने जामाता को भेट किया। विधि सम्पन्न हुई। बेटी अपने घर गई।

गीदड ने अपनी स्त्री को समझाया कि वह वन कन्यादान मे दिया जा चुका है। अत उस वन का पानी तक पीना उनके लिए अधर्म है। परन्तु वन बडा विस्तीर्ण था। फलत वे दोनो वहाँ से दौडे कि प्यास लगने से पूर्व वन से पार हो जाएँ। दौडते दौडते उनके प्राण कठ मे आ गए परन्तु वन की सीमा पार करदी गई। वहाँ एक कच्चा जोहड था जिसके मध्य मे बहुत थोडा सा पानी बचा था। उस पानी से तो उन दोनो मे से केवल एक के ही कठ गीले हो सकते थे। गीदड ने जिद्द किया कि उसकी स्त्री पानी पी कर अपने

प्राणो की रक्षा करे। इसी प्रकार उसकी स्त्री ने अपने पति के लिए हट किया। विवाद होता रहा और वह थोडा सा पानी भी सूख गया और प्यास के मारे वही दोनो के प्राण निकल गए।

थोडी देर वाद दो स्त्रियाँ उस मार्ग से निकली। जोहड मे दो गीदड मृतक अवस्था मे पडे थे। उन्हे देखकर एक ने प्रश्न किया—

खड्यो न दीखै पारदी, लग्यो न दीखै वाण।

मै तनै पूछू हे सखी, किस विध तज्या पिराण।।

इस पर दूसरी स्त्री ने उत्तर दिया—

जल थोडा नेहा घणा, लग्या प्रीत का वाण।

तू पी तू पी ही करत ही, दोनों तज्या पिराण।।

अगले जन्म मे इस पुण्य के प्रभाव से वह गीदड महाराजा सगर हुआ और उसकी स्त्री महारानी वनी।

राजा रानी दोनो को पूर्व जन्म का वृत्तान्त स्मरण आया। उन्होने विचार किया, गीदड योनि मे एक पुत्री का विवाह करके हमने इतना ऊँचा पद पाया है तो इस जन्म मे भगवान की भक्ति करके एक सौ एक पुत्री प्राप्त करे और उनका विवाह करके इससे भी कई गुना वडा पद अगले जन्म मे पावे। इस निश्चय के अनुसार वे तपस्या मे लीन हो गए। उनके कठोर तप को देख कर देवराज इन्द्र घवराया। वे भगवान विष्णु के सामने उपस्थित हुए और अपनी मनोदशा प्रकट की। भगवान विष्णु ने कहा, तुम सरस्वती की शरण मे जावो। वहाँ तुम्हारा काम वन सकता है। इन्द्र ने सरस्वती को प्रसन्न किया। राजा रानी का तप पूरा हुआ। भगवान प्रकट हुए। वर मागने के लिए महाराजा से कहा गया, तो सरस्वती के प्रभाव से उनके मुख से एक सौ एक पुत्री के स्थान पर पुत्र शब्द निकला। भगवान ने "तथास्तु" कहा और फिर रानी से वर माँगने के लिए कहा गया तो उसने भी सरस्वती के प्रभाव से यही उत्तर दिया कि जो कुछ मेरे पतिदेव ने माँगा है वही पूर्ण हो। भगवान ने 'तथास्तु" फिर कहा और वे अपने धाम चले गए।

अव राजा और रानी को अपनी भूल विदित हुई। परन्तु जो होना था सो हो चुका। समय पाकर उनके एक सौ एक पुत्र पैदा हुए। वे वडे हुए। जव पुत्रो को पीछे का वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उन्होने प्रण किया कि हम अपने पिता को नित नया कुँआ खोद कर जल पिलाएँगे।

इस प्रण के अनुसार महाराजा सगर के एक सौ एक पुत्र प्रत्येक रात्रि को एक नया कुँआ खोदते और उसके जल से अपने माता पिता को

दतून करवाते । फल यह हुआ कि धरती मे कुएँ ही कुएँ हो गए । इससे धरती माता को बडी पीडा होने लगी । उसकी छाती मे इतने छेद ! वह भगवान की शरण गई । भगवान ने कहा, जब सगरपुत्र सभी कुएँ मे घुसे हो तू अपना पाट मिलाने । सब भीतर ही रह जाएँगे । धरती ने ऐसा ही किया और एक रात महाराजा सगर के सभी पुत्र धरती मे विलीन हो गए । कुआँ मिल गया ।

महाराजा सगर ने यह वृत्तान्त सुन कर बडा शोक किया । उनके सभी पुत्र एक ही रात मे मृत्यु को प्राप्त हो गए । उन्होने ऐसा कौनसा पाप किया था । पडितो को बुलवाया गया और इस दुर्घटना का कारण पूछा गया । पडितो ने ध्यान करके महाराजा के इस सकट का कारण इस प्रकार प्रकट किया—

किसी पूर्वभव मे राजा सगर एक अन्य राजा के ही रूप मे थे । एक साल वर्षा नही हुई । वन के सरोवर सूख गए । वहा हस रहते थे । वे अपने बच्चो को लेकर राजा के पास आए और बोले, "हे राजा, हम सब यहा से मान सरोवर जा रहे है । परन्तु हमारे बच्चे इतनी लम्बी उडान के लिए असमर्थ हैं । अत. तुम इनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लो । हम अगले वर्ष यहा आकर इनको सम्भाल लेगे ।" राजा ने स्वीकार किया और हस अपने समस्त बच्चे राजा के पास छोड कर उड गए । राजा ने बच्चों को अपने बाग के सरोवर मे छुडवा दिया ।

एक दिन राजा भोजन करने के लिए बैठा । उसे उस दिन साग (सब्जी) स्वादिष्ट मालूम नही हुई । राजा अपने रसोइए पर अप्रसन्न हुआ । दूसरे दिन रसोइए ने चुपके से सरोवर मे से एक हस का बच्चा पकडा और उसका साग बना कर राजा को परोसा । आज का साग बडा स्वादिष्ट था । राजा परम प्रसन्न हुआ और रसोइए को इनाम मिली । अब रसोइया प्रतिदिन चुपचाप ऐसा ही करने लगा और राजा आनन्द से भोजन करके उसे नित नई इनाम देने लगा ।

समय बीता । वर्षा हुई । हस लौट कर राजा के पास आए और अपने बच्चे मागे । राजा ने उनकी धरोहर वापिस सभलाई तो एक सौ एक बच्चे कम पडे । हसो को क्रोध आया । राजा ने पूछताछ की । सारी स्थिति प्रकट हुई । अब क्या हो सकता था ? हसो ने शाप दिया, "तू ने हमारा एक बच्चा प्रति दिन खा कर कुल एक सौ एक बच्चे खाए है, अत तेरे भी

इतने ही वच्चे एक दिन मे मरेगे।" इतना कह कर हस अपने अवशिष्ट वच्चो को लेकर उड गए।

महाराजा सगर ने अपने सन्ताप को पूर्वभव का कर्मफल समझ कर धीरज धारण किया। उनके एक वेटे की बहू गर्भवती थी। उसके पुत्र पैदा हुआ। महाराजा ने अपने पोते का नाम भगीरथ रखा और उसका पालन करने लगे। भगीरथ वाण विद्या सीखता था। एक दिन एक वाण आकर कुए पर किसी पनिहारी के घडे के लगा। पनिहारी ने ताना मारा, "यहा हमारे घडे फोडता है। पहिले अपने पुरखो की गति तो करावे। वे तो वेचारे धरती के नीचे दवे पडे है। भगीरथ से अब तक सारी वाते छिपाई गई थी परन्तु इस ताने ने सारा भेद खोल दिया। उसने अपने पूर्वजो के मोक्ष के लिए पडितो मे उपाय पूछा। उन्होने वतलाया कि यदि गगाजी धरती पर आकर उनके ऊपर से फिरे तो उनकी मोक्ष हो सकती है। भगीरथ इसके लिए कृत-सकल्प हुआ कि वह गगाजी को धरती पर लाकर ही मानेगा।

भगीरथ ने शिवजी की तपस्या की। वे उस पर प्रसन्न हुए। भगीरथ ने अपना वृत्तान्त कह सुनाया। शिवजी ने एक पात्र मे वद करके गगाजी उसे सौंपी। साथ ही शर्त यह थी कि मार्ग मे कही भी गगाजी को पुकारा न जाए। भगीरथ ने शर्त स्वीकार की और वह पात्र को अपने सिर पर रख कर चल पडा। चलते चलते मार्ग मे एक जोहड आया। वहा ग्वाले अपनी गाए चरा रहे थे। उनमे से एक ग्वाले ने जोर से गगा का नाम लेकर आवाज दी। उसी समय भगीरथ के सिर पर रखा हुआ वद पात्र खुला और गगाजी धारा के रूप मे वहने लगी। भगीरथ ने ग्वालो को उपालम्भ दिया कि उन्होने गगा का नाम लेकर क्यो पुकारा। इस पर ग्वालो ने प्रकट किया कि उनकी एक गाय का नाम भी गगा ही हे और उसका नाम लेकर ही आवाज दी गई थी। इस पर भगीरथ ने गगाजी मे विनय की। गगाजी उस पर प्रसन्न हुई। भगीरथ आगे आगे चला, गगाजी उसके पीछे लहराती हुई आती रही। अत मे भगीरथ ने उस स्थान पर गगाजी को पहुँचाया जहा उसके पूर्वज धरती के नीचे दवे पडे थे। गगाजल के स्पर्श से उनकी मोक्ष हुई। भगीरथ का प्रण पूरा हुआ और गगाजी का नाम भागीरथी पडा। महाराजा सगर को गगावतरण से परम प्रसन्नता हुई और वे अपने पोते भगीरथ को राजगद्दी देकर वन मे सपत्नीक चले गए।

ऊपर राजस्थानी लोककथा का साराश दिया गया है। इस कथा मे लोग वडी रुचि लेते है क्योकि यह रोचक होने के साथ ही पुण्यमयी भी है।

परन्तु स्पष्ट है कि गगावतरण विपयक जो दो कथानक पहिले दिये गए है, उनमे और इस कथा मे वडा अन्तर है । यह अन्तर स्वाभाविक है । राजस्थानी लोक कथा मे कई कहानियाँ मिली हुई है । गीदड का कन्यादान, सगर की तपस्या, सगर पुत्रो का कूप खनन, धरती माता की पीडा, हसो के वच्चे, भगीरथ की तपस्या एव ग्वालो की गगा गाय इस प्रकार इस एक कथा मे कई कथाएँ मिली हुई है । परन्तु वे सव एक दूसरी से जुडी हुई है । इसलिए उनमे वडी रोचकता है ।

यह राजस्थानी लोककथा जनमानस की उद्भावना का उत्कृष्ट नमूना है । सगर पुत्रो का कुए मे दवना प्राचीन कथानक से एक भिन्न स्थापना है । राजस्थान कुओ का प्रदेश है । फलस्वरूप यहा की कथा मे सगर के पुत्रो का कुए मे विलीन हो जाना स्थानीय रग है । परन्तु इस स्थापना को राजस्थान मे पूरी मान्यता प्राप्त है उदाहरण के लिए निम्न लोकप्रिय भजन देखिए । इसमे इस घटना को जोरदार शब्दो मे प्रस्तुत किया गया है—

घेनदास, मत करो अँदेसा,
इण मारग ससार गया रे ॥
सैंस पुतर राजा सुगड कै होता,
नुवै नीर दातण करता ।
फिर मनोरी म्हारै अलख धणी की,
धरण धिसी जद माय रह्या रे ॥
घेनदास, मत करो अँदेसा,
इण मारगा ससार गया रे ॥

सत घेनदास का पुत्र चल वसा था । उसे सगर के पुत्रो का उदाहरण देकर सात्वना दी गई है इसी प्रकार "गगा गाय" वाला कथानक भी राजस्थान मे भजन के रूप मे गाया जाता है, जिनका मुख्याश निम्न प्रकार है—

ना वावाजी मनै अन धन चहिए,
ना मनै चहिए जमी ए सवाई जी,
गगा माता हर चरणा मे सै आई ।
मेरै तो वडका गती ए न पाई,
मनै चहिए तो गगा माई जी,
गगा माता हर चरणा मे सै आई ।

ल्या रै वाला तेरो कमडलियो,
तनै घालूँ गगा माई जी,
गगा माता हर चरणा मे सै आई ।
ले कमडलियो गगा घालो,
तो गहरी सी खाम लगाई जी,
गगा माता सिव की जटा मे सै आई ।
रै व ला तेरो कमडलियो,
तू गैलै मे मत बतलाई जी,
गगा माता सिव की जटा मे सै आई ।
गगा ले भागीरथ चाल्यो,
तो उतरचो है परवत प्हाडा जी,
गगा माता सिव की जटा मे सै आई ।
आगै गुवाल्या गऊ ए चरावै,
तो गगा कह हेलो मारचो जी,
गगा माता सिव की जटा मे सै आई ।
जद भागीरथ कोप भयो है,
मेरी गगा नै क्यू बतलाई जी,
गगा माता सिव की जटा मे सै आई ।
म्हे रै वाला तेरी गगा नै ना बतलाई,
म्हारी गऊ को नाम गगा माई जी,
गगा माता सिव की जटा मे सै आई ।
खाम खोल कर देखण लाग्यो,
तो हो गई सैसर धारा जी,
गगा माता सिव की जटा मे सै आई ।

यहाँ इस गीत का मुख्याश ही दिया गया है । पूरा गीत बडा है । गीत मे गगा गाय वाला प्रसग बडा सरस है । साधारण जनता के हृदय की मान्यता कुछ विशेषता पर आधारित है जो लोककथा के साथ साथ लोक गीत मे भी आ गई है ।

राजस्थान की इस पुण्यमयी लोककथा का कथानक-रूढियो की दृष्टि से विश्लेपण किया जाना आवश्यक है । कथानक-रूढि कथा को गति प्रदान

करती है और वह विविध लोककथाओ मे व्याप्त रहती है। इसे अभिप्राय का नाम दिया जाता है। लोककथाओ के अध्ययन मे अभिप्रायो का बडा महत्त्व है। अभिप्रायो के स्पष्टीकरण से विविध तत्त्व प्रकट होते है।

प्रस्तुत लोक कथा के प्रारभ मे गीदड और उसकी स्त्री की कहानी आती है। यह कहानी कर्मफल की महिमा प्रकट करती है। लोक कथाओ मे पूर्वभव का आधार खडा करना एक साधारण बात है। धार्मिक कथाओ मे तो यह चीज बहुत ही देखी जाती है। जातक कथा मे बोधिसत्त्व ने विविध योनियो मे जन्म ग्रहण किया है। उनमे मनुष्य के साथ साथ पशु पक्षी भी सत्य, त्याग, बलिदान, चतुराई आदि २ गुणो के आदर्श प्रस्तुत करते है। इसी रूप मे यह गीदड वाली कहानी है। इस कहानी मे दान और दाम्पत्य-प्रेम की महिमा है। लोककथओ की दुनिया मे मनुष्य ने पशु-पक्षियो को भी अपने समाज मे सम्मिलित किया है। उनमे मानवीय भावना एव व्यवहार तो स्थापित किये ही है परन्तु साथ ही उनसे गार्हस्थिक सम्बन्ध भी जोडा है। इस कहानी का गीदड मानव कन्या का अपनी पुत्री के रूप मे पालन करता है परन्तु साथ ही वह शास्त्रीय विधि से उसका मनुष्य के साथ विवाह भी करता है। कई लोक कथाओ मे मनुष्य की कन्या पशु अथवा पक्षी को विवाही गई है। इन सब से मनुष्य के हृदय की एक विशेपता प्रकट होती है कि उसने पशुपक्षियो से साहचर्य स्थापित किया है तो साथ ही उनसे आत्मीयता भी मानी है। गीदड का दान इस लोक कथा को गति प्रदान करता है और इससे सगर की चरित्रिक विशेपता का एक दृढ आधार स्थापित होता है। मूल लोक कथा मे इस कहानी के जुडने का यही प्रयोजन है।

इसके बाद महाराजा सगर प्रकट होते है। उनको और उनकी रानी को पूर्वभव का स्मरण होता है, तो वे कन्यादान के पुण्य को विस्तार देने के लिए तत्पर होते है। पूर्वजन्म की घटनाओ के स्मरण होने का यही तो एक प्रयोजन होता है कि अघो का क्षय हो तथा पुण्य की वृद्धि हो। भारतीय उपाख्यानो मे फल प्राप्ति के लिए तपस्या की जाती है। महाराजा सगर और उनकी रानी भी तप करते है तप की कठोरता को देखकर देवराज इन्द्र का घबराना और अपने पद की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए स्वार्थ मे सलग्न होना भी प्रसिद्ध है। ऐसा ही इस लोककथा मे हुआ है। सरस्वती भी देवराज की ही सहायता करती है। ऐसे स्थानो पर वाक देवी का प्रयोग किया जाता है। महाराजा सगर को पुत्रियो के स्थान पर पुत्र प्राप्त होते है। उनकी सख्या राजस्थानी लोककथा मे घट कर एक सौ एक हो गई है। इस सख्या का राजस्थान मे लोक व्यावहार मे बहुत प्रयोग होता है।

महाराजा सगर के पुत्र बडे होते है और पीछे का वृतान्त मालूम होने पर वे अपने पिता का नित नया कुआ खोद कर पानी पिलाने का सकल्प करते है। पुत्रो का यही कर्तव्य है कि वे अपने माता पिता की मनोकामना उत्कृष्ट रूप मे पूरी करे। राजस्थान मे कुआ खुदवाना वडा भारी पुण्य है। फलस्वरूप लोककथा मे नित नया कुआ तैयार होता है, इस कूपखनन ने पौराणिक उपाख्यान मे वर्णित महाराजा सगर के यज्ञ का स्थान लिया है। राजस्थानी लोककथा मे यज्ञ नही है तो तत्सम्बन्धी अन्य घटनाएँ भी नही है। यहा न यज्ञीय अश्व है और न कपिल मुनि है। इनका प्रयोजन दूसरे रूप मे सिद्ध किया गया है। धरती माता को अपनी छाती मे इतने छेद सह्य नही है और वह सगर पुत्रो को अपने उदर मे विलीन कर लेती है। उनको समाप्त करने का यह एक सरल साधन था और इस प्रकार उनकी अकाल मृत्यु हुई जो बहुत ही बुरी मानी जाती है। राजस्थानी लोक कथा मे देवराज इन्द्र पहले प्रकट हो चुके है, अतः इस स्थान पर उनका काम पृथ्वी के द्वारा करवा कर एक नई स्थापना की गई है। राजस्थान मे कुआ खोदने वाले कई बार उसमे ही विलीन हो जाते है।

महाराजा सगर बडे पुण्यात्मा थे। उनको इतना भयकर पुत्र शोक क्यो भोगना पडा ? इसका उत्तर हसो वाली कहानी है। पहिले गीदड वाली कहानी ने पुण्य का फल प्रकट किया है तो इस कहानी ने पाप का विपाक दिखाया है। जैन कथाओ मे ऐसा प्राय देखा जाता है कि सुख अथवा दु ख के कारण स्वरूप पूर्वभव की घटना प्रकट होकर स्थिति को साफ कर देती है। महाराजा सगर को सान्त्वना देने का यह एक बहुत ही समीचीन साधन सामने आया है। हसो वाली कहानी बडी करुणा पूर्ण है उनके बच्चो के विनाश की लीला हृदय मे विकट वेदना उत्पन्न कर देती है। वे बच्चे थे और सकटापन्न हँसो के थे। साथ ही वे धरोहर के रूप मे थे। राजा ने उनकी रक्षा पर उचित ध्यान नही दिया और पाचक का पाप राजा पर पडा। खैर, महाराजा सगर ने धीरज धारण किया। अब तक वे इस लोक-कथा मे पुण्य की प्रकाश मान मूर्त्ति थे परन्तु आगे वह चीज नही रहती और कथा की मूल वेदना उनसे हट कर दूसरी ओर चली जाती है। अब गगाजी को धरती पर लाना है।

लोककथाओ मे यह प्राय देखा जाता है कि कोई चचल बालक कुएँ की पनिहारिनो को तग करता है और वहाँ ताने के रूप मे उसे किसी रहस्य का पता चलता है। यही बालक भगीरथ के साथ होता है। अब उसे

अपने पूर्वजो के मोक्ष के लिए गगाजी को धरती पर लाना है। वह तप करता है और एक पात्र मे वन्द करके गगाजी उसे दी जाती हे। राजस्थान मे जो व्यक्ति गगास्नान करके लौटते है, वे गगाजल को पात्र मे वन्द करके और उसे सिर पर रख कर लाते है। उनके घर वाले सम्मान के साथ उनको लिवाने के लिए आगे जाते हे और फिर वे सव भजन गाते हुए आते हैं। यही चीज राजस्थानी लोककथा मे प्रकट हुई है। मार्ग मे गगाजी का नाम लेकर न पुकारने की शर्त भी लोककथाओ मे विविध रूपो मे देखी जाती है। परन्तु यह शर्त पूरी न हो सकी और यह उचित ही हुआ। इस लोककथा मे ग्वालो का प्रसग जनमानस की वडी ही सरल एव अर्थ पूरित उद्‌भावना है, गगा माता के धरती पर आने से पूर्व भी भारतीय प्रजा के लिए गौमाता अत्युच्च गौरवशालिनी एव महिमामयी थी। गौमाता और गगामाता मे भारतीय जनता कोई अन्तर नही मानती। लोककथा मे ग्वालो की गाय का नाम भी गगा था। उन्होने अपनी गगामाता को पुकारा और दूसरी गगामाता सहस्र जलधारा के रूप मे वही प्रकट हो गई। गगामाता के इस प्रकार प्रवाहित होने के पीछे लोकहित की अतीव उच्च भावना है। यदि भगीरथ अपने पूर्वजो के विलीन होने के स्थान पर जाकर ही उस पात्र को खोजते तो वह एकमात्र व्यक्तिगत हित होता और जनसाधारण को गगाजी से उतना लाभ न मिल पाता। भारतीय लोक हृदय मे स्वाभाविक रूप से सर्वजन हित की भावना हिलोरे ले रही है और वही इस प्रसग मे स्पष्ट प्रकट हुई है। राजस्थानी लोककथा का यह प्रसग महिमामय है।

रामकथा के समान गगावतरण की कथा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार रामकथा के विविध रूपो के सम्वन्ध मे शोध कार्य हुआ है, उसी प्रकार गगाजी के धरती पर आने की कथा के विपय मे होना आवश्यक है। इस पुण्य कार्य के लिए किसी साहित्य-तपस्वी को कृत-सकल्प होकर भगीरथ के समान सर्वजनहित करना चाहिये।

डहरू वानर की बात का आदि स्रोत

राजस्थान मे एक कहावत 'वडा वडी रा डहरू वाजै' प्रचलित है। इस कहावत के पीछे एक रोचक कहानी है, जो हस्तलिखित बात के रूप मे भी प्राप्त है।[1] इस वात का सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है —

कुन्तल देवडा वाणविद्या मे वडा प्रवीण था। उसका विवाह छोटी अवस्था मे ही हो चुका था। जब वह वडा हुआ तो अपनी ससुराल गया। वहाँ उसने अपनी पत्नी से कहा कि तुम कुछ दूरी पर खडी रहो और मैं तुम्हारे कानो से लटकती हुई मोतियो की लडी मे से अपना तीर निकालूँगा। कुन्तल ने ऐसा ही किया। वाण मोतियो की लडी मे से निकल गया परन्तु राजपूताणी को इस क्रिया से वडा भय लगा। देवडा-सरदार यह कार्य प्रात साय दिन मे दो बार करता था, जिससे उसकी पत्नी उदास रहने लगी।

जब कुन्तल की सास को अपने दामाद की इस विचित्र क्रिया का पता चला तो उसने कहा, 'आपको अपनी वाणविद्या का वडा घमड है परन्तु मैं तो आपको उस समय वडा मानूँगी जब कि आप उत्तर दिशा मे अपने खेत मे हल चलाने वाले एक विशेष व्यक्ति की पगडी उठा कर मेरे पास ला देंगे।' कुन्तल ने अपनी सास की यह शर्त स्वीकार करली और वह उस विशेष व्यक्ति का पता पूँछ कर उत्तर दिशा मे चल पडा।

---

1 इस बात का मूल पाठ शोधपत्रिका (१४/४) मे प्रकाशित करवाया जा चुका है।

जब कुन्तल निश्चित स्थान पर पहुँचा तो उसने देखा कि वहा एक राक्षस के समान भीमकाय व्यक्ति अपने खेत मे हल चला रहा है। इसके साथ ही विशेषता यह थी कि उसने बैलो के स्थान पर सिंह हल मे जोत रखे थे। और उसकी 'रास' सॉपो की बनी हुई थी। इस विचित्र लीला को देख कर देवडे का गर्व गलित हो गया। हल चलाने वाले ने उसे अपनी ओर आते देख कर आवाज दी कि वह उसके जूते उठाकर साथ लेता आवे। देवडा ने उसके जूतो को उठाने की चेष्टा की परन्तु वह उनको उठा न सका तो हल छोड कर वह स्वय देवडा के पास आ गया। देवडा ने प्रकट किया कि उसके समान मर्द इस ससार मे दूसरा कोई नही है। उसे धन्य है।

कुन्तल देवडा की बात उस व्यक्ति के पडौसी के कानो मे पडी तो उसने कहा कि वह कुछ भी शक्ति नही रखता। उसकी पत्नी डहरू वानर उठा कर ले गया और वह कुछ भी नही कर सका—

सापाँ हदी रास कर, हळ वाहै सीह।
जोयड तेरी भोगवै, डहरू धवळै दीह॥

इतना सुन कर कुन्तल ने उस व्यक्ति से कहा कि यदि उसे डहरू दिखला दिया जावे तो वह उसे अपने बाण से मार सकता है। हलवाहा उसके साथ हो लिया और वे दोनो डहरू वानर की ओर चल पडे।

जब वे डहरू के खेत के पास पहुचे तो उन्होने देखा कि अपहरण की हुई स्त्री भी वहाँ उसके साथ ही थी। कुन्तल ने पूरी ताकत लगा कर डहरू पर अपना बाण छोडा परन्तु वह उसे मच्छर के समान लगा। इस पर उस स्त्री ने बतलाया कि उस पर बाण छोडे जा रहे है। फिर तो डहरू उन दोनो के पीछे भागा। उसे आते हुए देख कर कुन्तल देवडा और हलवाहा भयभीत हो गए और अपने प्राण बचाने के लिए दोडे। काफी दौडने के बाद वे दोनो फोगसी एवाळ (अजापाल) के पास पहुँचे और उसके सामने आप बीती कह सुनाई। फोगसी ने कहा की कि वे उसकी झोली मे घुस जावे और कोई चिन्ता न करे।

जब डहरू उस स्थान पर पहुँचा तो फोगसी ने उसे आवाज दी कि वह आते समय उसका 'दीवडा' (जलपात्र) भी उठा लावे। परन्तु फोगसी के 'दीवडे' को डहरू उठा न सका। इस पर फोगसी ने उसे बुरी तरह फटकारा तो वह काँपने लगा। फिर फोगसी ने हलवाहे को डहरू से उसकी पत्नी वापिस दिलवाई और कुन्तल देवडा की कवाण तोड दी गई। सब का गर्व समाप्त हुआ और वे अपने-अपने स्थान को चले गए।

डहरू वानर की वात का आदि स्रोत

राजस्थानी कहावत का अभिप्राय है कि ससार मे एक से एक वढ कर है अत किसी को अपने वडप्पन का अभिमान नही करना चाहिए। वड़ा तो डहरू कहलाता था। परन्तु वह भी फोगसी के सामने शक्तिहीन सिद्ध हुआ। इस प्रकार एक ही वात मे कुन्तल देवडा, हलवाहा और डहरू वानर इन तीन व्यक्तियो को एक से एक वढ कर दिखला कर अन्त मे उनका गर्व गलित किया गया है। फलतः यह एक सुन्दर नीति कथा के रूप मे प्रकट होती है।

राजस्थानी वात-लेखक इस प्रकार का वातावरण वना देते हैं कि उनकी 'वात' सर्वथा राजस्थानी चीज ही विदित होती है परन्तु कई वातो पर गहराई से विचार करने पर प्रकट होता है कि अपने मूल रूप मे वे प्राचीन भारतीय कथाएँ ही हैं, जिनका लोकमुख पर अवस्थित होने के कारण स्थान एव काल के अनुसार रूपान्तर हुआ है। इन रूपान्तरित कथानको को राजस्थानी वात-लेखको ने अपने ढग से सँवारा-सजाया है और उन्हे राजपूत-जीवन मे प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त वात की वस्तु के साथ निम्न राजस्थानी लोककथा का सक्षिप्त रूप भी द्रष्टव्य है—

एक वार भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन घूमने के लिए निकले। वातचीत मे एक समस्या खडी हुई कि मनुष्य वडा है या काल ? अर्जुन काल की अपेक्षा मनुष्य को अधिक वलवान वतलाता था। आगे चलने पर दो रास्ते आए। भगवान ने अर्जुन को वास्तविकता का ज्ञान करवाने के लिए वाये रास्ते से रवाना किया और स्वय दाहिने मार्ग से चले। आगे जाकर दोनो रास्ते मिल कर एक होने वाले थे।

अर्जुन अपने रास्ते पर आगे वढ गया। उसने वहा देखा कि लहू की एक धारा वही चली आ रही है। वह उस धारा के उद्गम की खोज मे चला। कुछ दूरी पर उसने देखा कि एक दानव सो रहा है और एक युवती उसके पैर दवाती हुई खून के आँसू गिरा रही है, जो धारा रूप मे वह चले थे। अर्जुन ने उस दानव पर तीर छोडा परन्तु उसने उसे मच्छर समझा और उस पर जरा भी ध्यान नही दिया। जव अर्जुन लगातार वाण चलाता रहा तो दानव जागा और वह अर्जुन को मारने के लिए दौडा।

अर्जुन भयभीत होकर भागा। वह आगे था और दानव उसके पीछे पडा था। कुछ दूरी पर अर्जुन को एक पेड के नीचे पडा हुआ एक 'चौरगा'-(जिसके दोनो हाथ और दोनो पैर कटे हो) दिखलाई दिया। वह चौरगे के पास पहुचा तो उसने दयावश उसे अभयदान दिया। जव दानव निकट आया तो

चौरगे ने कठोर गर्जना की, जिसे सुन कर वह स्तभित सा हो गया। दानव ने कहा कि उसका अपराधी बलवान की शरण मे जाकर बच गया है और फिर वह अपने रास्ते पर लौट गया।

अर्जुन ने चकित होकर चौरगे से पूछा कि उसकी ऐसी हालत किस प्रकार हुई? चौरगे ने प्रकट किया कि महाभारत के युद्ध के कुछ तीर उधर से निकले और उसने अर्जुन के एक तीर को पकडने की भूल की। इस भूल का उसे यह फल मिला कि तीर ने उसके दोनो हाथ और दोनो पैर कट कर गिर पडे। अब अर्जुन को समझ पडी कि मनुष्य बलवान नही है, असल मे काल ही बलवान है। एक दोहा भी इसी भाव का प्रचलित है—

काल बडो बलवान है, नर को के बलवान।
कावा लूटी गोपका, वै अरजन वै बाण॥

चौरगे से विदा लेकर अर्जुन आगे चला तो उसे भगवान श्रीकृष्ण मिल गए। इस प्रकार अर्जुन का भ्रम निवारण हुआ।

यह लोककथा काल महिमा का प्रकाशन करती है। इसमे मानव शक्ति के समर्थक अर्जुन का गर्व दूर किया गया है। इसी लोककथा का एक रूपान्तर भी द्रष्टव्य है। उस मे अर्जुन के स्थान पर भीम है—

पृथ्वी के सुदूर उत्तर का अतिम छोर कोई मनुष्य नही देख सका था। अत महाबली भीम भगवान श्रीकृष्ण से हठ करके उत्तराखड का 'छेह' लेने के लिए चला। कुछ दूर निकलने पर उसने देखा कि एक महाकाय दानव सो रहा है और एक सुन्दरी उसके पैर दबाती हुई आंसू बहा रही है। भीम को उस अबला पर दया आई और उसने पूरा जोर लगा कर अपनी गदा दानव की छाती पर दे मारी। इस प्रहार को दानव ने मच्छर का काटना माना और वह सोता ही रहा। भीम ने फिर उसके सिर पर गदा प्रहार किया तो वह जाग पडा और भीम के पीछे दौडा। भयभीत भीम आगे भागा जा रहा था और दानव उसके पीछे लगा था।

आगे जाकर भीम को अपने खेत मे हल चलाता हुआ एक महाकाय व्यक्ति नजर पडा, जिसके सिर पर दहकते हुए अगारो की अगीठी थी और 'रास' के स्थान पर सर्प थे। भीम उसकी शरण मे गया। उसने घोर गर्जना करके पीछा करने वाले दानव को डरा दिया और वह वापिस लौट गया। महाकाय व्यक्ति ने भीम से कहा कि वह आते समय उसके जूते उठा कर लेता आवे। भीम ने उसके जूते उठाने की चेष्टा की परन्तु वह उन्हे नही उठा

सका । इतने मे ही उस व्यक्ति की पत्नी खेत मे आई और वह उन जूतो को आसानी से उठा कर अपने पति के पास ले गई । महावली भीम यह सब चकित होकर देखता रहा और उसे बडी आत्मग्लानि हुई ।

कुछ समय बैठने के बाद भीम ने उस आश्चर्यजनक हलवाहे से पूछा कि वह अपने सिर पर दहकते हुए अगारो की अगीठी क्यो रखता है ? हलवाहे ने उत्तर दिया कि यहा उत्तर दिशा से 'कावलिया' (पक्षी) आती है । यदि वह अपने सिर पर अगीठी न रखे तो वे उसे झपट कर आकाश मे ले उडे । यह वक्तव्य और भी विकट था । भीम का गर्व मिट गया और वह लौट कर भगवान श्रीकृष्ण के पास आ गया । भगवान ने उससे उत्तराखड का विवरण पूछा तो वह कुछ न बोल सका और नतमुख हो गया ।

लोककथा का यह रूपान्तर डहरू बानर की 'वात' से अधिक मिलता है, यद्यपि इसमे उसका पूर्वभाग अर्थात् कुन्तल देवडे की चर्चा नही है । फिर भी यह स्पष्ट है कि कथा और बात के कथानक भीतर से मिलते हुए से है । इनका मूल उद्देश्य मानव का मिथ्या गर्व दूर करके उसे उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित करवाना है । एतदर्थ लोककथा मे अर्जुन और भीम जैसे पात्रो को नायक-पद पर प्रतिष्ठित किया गया है तो राजस्थानी बात मे कुन्तल के साथ अनेक महावली पात्र है । इतना स्पष्ट है कि एक लौकिक कथानक को 'बात' के रूप मे साहित्यिक रूप देने की सुन्दर चेष्टा की गई है और उसे सर्वथा राजस्थानी बना दिया गया है ।

अब इस रोचक कथावस्तु का आदि-स्रोत अनुसधेय है । इसके लिए महाभारत का 'पचेन्द्राख्यान' द्रष्टव्य है । उसका सार रूप इस प्रकार है—

एक वार देवताओ ने नैमिषारण्य मे यज्ञ किया और यम भी उस मे दीक्षित होकर बैठ गए । फलस्वरूप मनुष्यो का मरना बद हो गया और वे बहुत वढ गए । इससे इन्द्रादि देव भयभीत होकर ब्रह्मा के पास पहुँचे और निवेदन किया कि मनुष्य भी अब अमर हो गए हैं और उन मे तथा देवो मे कोई अन्तर नही रहा है । ब्रह्मा ने उन्हे समझाया कि यज्ञ की समाप्ति पर यम यह अन्तर मिटा देंगे । फिर इन्द्रादि देव भी यज्ञ स्थान मे आ गए ।

वहा उन्होने गगा मे एक सोने का फूल देखा । इसे देख कर उन्हे वडा आश्चर्य हुआ । देवराज इन्द्र इस पुष्प का आदि स्थान देखने के लिए चले । अत मे उन्होने एक अत्यत रूपवती स्त्री को देखा, जो गगा मे जल भरते हुए रो रही थी और उसके अश्रुओ से स्वर्ण कमल वन रहा था । देवराज ने उस स्त्री का परिचय पूछा तो वह उन्हे अपने साथ ले चली ।

आगे हिमालय के शिखर पर विराजमान एक युवक दिखलाई दिया, जो युवती सहित पासा खेलने मे लीन था। इन्द्र ने क्रुद्ध होकर कहा—'भुवन मेरे वशीभूत है, मैं देवराज हूँ।' इन्द्र के क्रोध को देख कर वह युवक हस पडा और उसने इन्द्र पर दृष्टि डाली तो वह (इन्द्र) विजडित हो गया।

खेल समाप्त होने पर युवक ने उस रोती हुई स्त्री को आज्ञा दी, 'इसे मेरे स्थान मे ले जाओ, जिससे कि यह फिर कभी गर्व न करे।' उस स्त्री के छूते ही इन्द्र शिथिल होकर पृथ्वी पर गिर पडा तो उस तेजस्वी युवक ने कहा, 'यह चट्टान हटा कर तुम गुहा मे जाओ। वहा तुम्हारे समान चार इन्द्र तुम्हे और भी मिलेगे।'

गुफा मे अपने ही समान चार अन्य व्यक्तियो को देख कर इन्द्र बडा दुखी हुआ कि कही मैं भी यहा कैद न हो जाऊँ। तब क्रुद्ध होकर भगवान् शिव ने कहा, 'तुमने मेरी अवहेलना की है, अत तुम्हे इस गुफा मे रहना पडेगा।' भय से कापते हुए इन्द्र ने क्षमायाचना की तो भगवान् ने प्रकट किया कि वह बच नही सकता। वे पाचो मानुषी-योनि मे जन्म लेगे और वहा अनेक पराक्रम कर के फिर इन्द्रलोक मे आयेगे। इस पर पहिले वाले चारो इन्द्रो ने निवेदन किया कि वे मनुष्य लोक मे जन्मग्रहण करेगे परन्तु धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार उनका माता के गर्भ मे आधान करे। भगवान् शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। देवराज इन्द्र ने उनके समान पाचवे व्यक्ति को अपने वीर्य से पुत्र रूप मे पैदा करना मजूर किया। फिर उस सुन्दर स्त्री को भी, जो इन्द्रलोक की राज्यलक्ष्मी थी, मानव लोक मे जन्म ग्रहण करने की आज्ञा दी गई।

कालान्तर मे गुफा मे बद वे पाचो इन्द्र ही पाच पाण्डव हुए और वह सुन्दर स्त्री द्रौपदी के रूप मे अवतरित हुई।[1]

यह उपाख्यान बडा रोचक है और साथ ही अर्थ-गर्भित भी है। राजस्थानी लोककथा और बात के साथ इसकी तुलना करने से प्रकट होता है कि इन मे आश्चर्यजनक समानता है। उपाख्यान के प्रारभ मे यम का यज्ञ मे दीक्षित होना और मनुष्यो का अमर होना प्रकट किया गया है। यही सूत्र अर्जुन विषयक लोककथा मे कुछ बदल गया है। वहा अर्जुन काल की अपेक्षा मनुष्य को बडा बतलाता है। कथा, बात और उपाख्यान तीनो मे गर्वहरण का तत्व समाया हुआ है, जो स्पष्ट ही है। इसके लिए कथा मे अर्जुन और भीम को उपस्थित किया गया है तो बात मे कुन्तल देवडा और महाकाय पुरुष

---

1 महाभारत (पूना सस्करण) आदिपर्व, अध्याय १८६ श्लोक १ ४०

तथा डहरू वानर प्रकट हैं। उपाख्यान मे इस स्थान पर देवराज इन्द्र है। जहा उपाख्यान मे पासा-खेल मे तल्लीन उमा-महेश्वर है, वहा कथा मे दानव के साथ एक सुन्दरी है तो बात मे डमरू और 'हरण की हुई स्त्री है। इन पर नारी-अपहरण विषयक सामाजिक-समस्या का प्रभाव पडा है, जिसमे परिस्थिति वदल गई है। उपाख्यान की रोती हुई नारी परिवर्तित होकर कथा और बात मे अपनी झलक दिखलाती है। स्वर्णकमल का स्थान अर्जुन कथा मे रक्तधारा ने लिया है, जो अश्रुपात से प्रकट हुई है। इसी प्रकार अश्रु-विन्दु अथवा रक्तविन्दु का पुष्प रूप मे अथवा मणि रूप मे प्रकट होकर नदी मे बह चलना लोककथाओ की एक विशिष्ट 'रूढि' है, जो अनेकश देखी जाती है। इन सब चीजो पर ध्यान देने से प्रकट होता है कि यह एक ही प्राचीन भारतीय कथानक समयानुसार विविध रूपो मे चलता आ रहा है।

एक द्रौपदी के पाँचो पाण्डव पति क्यो कर हो सकते है ? इस विकट समस्या के समाधान हेतु उपर्युक्त उपाख्यान महाभारत मे दिया गया है। इस उपाख्यान की अर्थ-गभीरता का डा वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ 'मार्कण्डेय पुराण, एक सास्कृतिक अध्ययन' मे सरल स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है।

वस्तुत इस पचेद्रोपाख्यान मे कई युगो के तार एक साथ वल दिए गए हैं। पचेन्द्र कल्पना का मूल स्त्रोत वैदिक था। शतपथ ब्रह्मण मे कहा है (६–१–१–७) कि शरीरस्थ पाच इन्द्रियो के सचालक पाच प्राण है। प्रत्येक प्राण की सज्ञा इन्द्र है। इन्द्र के ही कारण इन्द्रियो की यह सज्ञा पडी है। इन पाचो के पीछे एक मध्यप्राण है, जो इन सब को प्रदीप्त रखता है। इसका अध्यात्मक-सकेत स्पष्ट था। शरीरस्थ एक ही क्रियाशक्ति पाच प्राणो के साथ सहयुक्त होकर कार्य करती है। इस मूल बात को कई प्रकार के रूपक या प्रतीक भाषा मे घटाया गया। ज्ञात होता है साहित्य, कला और लोकवार्ता तीनो मे पचेन्द्र की कल्पना को कुषाण-गुप्तकाल की सस्कृति मे स्वीकार किया गया। एक स्त्री के पाच पति असगत है। किन्तु एक प्राणशक्ति पाच इन्द्रियानुगत मानसिक रूपो के साथ सहयुक्त होती है, अथवा एक मूल वाग्देवी या प्रकृति पचभूतो या स्वयभू परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी इन पाच पिण्डो की सहगामिनी वनती है, इस धरातल पर सोचने लगें तो कुछ भी विप्रतिपत्ति या शका नही रह जाती। इसी दृष्टि मे इन उपाख्यानो का निर्माण किया गया। 'इतिहास पुराणाभ्या वेद समुपवृहयेत्' यह वचन पुराणकारो के कर्तव्य का स्पष्ट विधान करता है। उन्हे तो मुख्यत वेद अर्थात् आध्यात्मिक जगत् के तत्वो को उपाख्यानो के रूप मे ढालना था।

इसीलिए एक पचेन्द्र प्रतीक को कई उपाख्यानो द्वारा कहने मे उन्हे विरोध नही जान पडा ।[1]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि प्राचीन भारतीय चिन्तन के एक आध्यात्मिक तत्व ने महाभारत मे उपाख्यान का रूप धारण किया और वही तत्व भारतीय लोककथाओ मे देश-काल के अनुसार रूपान्तरित होकर प्रचलित रहा । राजस्थानी बात मे उसने नया रग धारण किया और वह एक सरस साहित्यिक वस्तु बना । यह अध्ययन बडा उपयोगी होने के साथ अत्यत रोचक भी है । इस दृष्टिकोण से भारतीय लोककथाओ के विश्लेषण एव अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है । इससे प्रकट होगा कि भारत का अति प्राचीन काल और उसका वर्तमान काल किसी रूप मे परस्पर जुडे हुए है । इससे भारतीय सस्कृति के मूल मत्र 'लोके वेदे च' (अर्थात् जो शास्त्र मे है, वह लोक मे भी है) की पूर्ण प्रतिष्ठा होगी ।

---

1 मार्कण्डेय पुराण, एक सास्कृतिक अध्ययन (पृष्ठ ५१–५२)

ठकुरे साह की बात का मूलाधार

राजस्थानी गद्य-साहित्य मे 'बात' (कहानी) का स्थान बहुत ऊँचा है। यहाँ अब भी बात कहने-सुनने मे जनसाधारण की बडी रुचि है। विशेषता यह है कि इन बातो को सँवार-सजा कर लिपिबद्ध भी कर लिया गया है। फलत हजारो बाते गुटको मे लिखी हुई प्राप्त है और वे बडी मनोरजक तथा प्रेरणा देने वाली हैं। इनमे बडी सख्या उन बातो की है, जिनका सम्बन्ध राजपूत जीवन से है। फिर भी कई बाते ऐसी हैं, जिन मे साह लोगो का (व्यापारियो) का जीवन चित्रित हुआ है। इन व्यापार-वीरो की जीवन कथा भी कम रजक नही है। ऐसी ही एक बात ठकुरै साह की है, जिनका मूलपाठ 'बाता रो झूमखो' भाग दो मे प्रकाशित किया जा चुका है। उसका हिन्दी साराश इस प्रकार है —

सरसा नगर मे ठकुरा साह रहता था, जिसका धन्धा समुद्र पार जाने वाले जहाजो की 'जोखम' लेना था। इस व्यवसाय मे उसने अपार सम्पत्ति अर्जित कर ली थी, एक बार उसने इच्छा की कि एक ऐसा महल बनवाया जावे, जिसमे कपूर और कस्तूरी का 'गारा' (चूना) लगा हो। इसके लिए उसने अपने 'वाणोतो' को कस्तूरी खरीदने हेतु समुद्र पार के देश मे भेजा। वहाँ उन्होने केसरिया साह से पाँच ऊँटो के 'भार' जितनी कस्तूरी खरीदी। इस सौदे से केसरिया साह चकित हो गया। उसने ठकुरे साह का वैभव देखना चाहा और अपना आदमी इस विषय मे पूरा पता लगाने के लिए भेजा।

उसका आदमी सरसे आकर ठकुरे साह का पूरा ठाठ देख गया और फिर लौट कर सारी बातें अपने स्वामी को बता दी।

अब केसरिया साह ने सरसा जाने का निश्चय किया। परन्तु सयोग ऐसा हुआ कि इसी बीच मे ठकुरा साह सम्पत्ति-विहीन हो गया। उसने अन्य व्यापारियो के जिन जहाजो की जोखिम ली थी, वे वायु के प्रकोप से भटक कर डूब गए, ऐसा मान लिया गया। फलत ठकुरे को उनकी कीमत चुकानी पडी। इस भुगतान मे ठकुरे का महल और उसके घर का जेबर तक चला गया परन्तु उसने दिवाला नही निकाला। जब केसरिया साह उससे मिलने के लिए सरसे आया तो वह अपने पुराने मकान मे रहता था। फिर भी उसने मेहमान की पूरी खातिर की। परन्तु केसरिया उसकी स्थिति को भली भाति समझ गया। इतना होने पर भी उसने अपनी पुत्री पद्मावती की सगाई ठकुरे के बेटे सावळ के साथ कर दी और अपने देश के लिए रवाना हो गया।

जब केसरिया साह अपने घर पहुचा तो उसने सारी बात अपनी पत्नी के सामने प्रकट की और बेटी की सगाई कर देने का हाल भी उसे बतला दिया। उसकी पत्नी गरीब घर मे अपनी बेटी देने के लिए इन्कार हो गई। फल यह हुआ कि केसरिया साह को अपने सम्बन्धी को झूठा पत्र लिखना पडा कि उसकी बेटी 'माता' (चेचक) से मर गई है और वह अपने बेटे का सम्बन्ध अन्यत्र कर सकता है। ठकुरे साह ने भी इस सूचना को हितकर ही माना। परन्तु सयोग ऐसा हुआ कि व्यापारियो के जो जहाज भटक गए थे, वे अनुकूल वायु पाकर सुरक्षित लौट आए और ठकुरे साह को अपनी सारी सम्पत्ति वापिस मिल गई। अब वह फिर बडा सेठ बन गया।

इसी बीच मे ठकुरे की पत्नी का देहान्त हो गया और सेठ ने दूसरा विवाह कर लिया। नई पत्नी घर मे अपना अधिकार जमाने लगी। एक दिन ठकुरे के बेटे ने बाजार मे एक लाख रुपये मे निम्न गाथा खरीदी -

आरोहत गिर सिखरैं समुद्र लँघ जात पाताल।
विह अक्षर लिखिया भाल फलत कपाल हि भूपाल॥

इस एक गाथा के लिए एक लाख रुपये खर्च कर देने के कारण ठकुरे की नई पत्नी बडी नाराज हुई और फल यह हुआ कि सावळ को अपना घर छोडना पडा। वह एक जगल मे आया, जहाँ से भारड पक्षी उसे उठा कर समुद्र पार के देश मे पहाड पर ले गया। इस प्रकार गाथा का प्रथम चरण सच्चा सिद्ध हुआ। सावळ पहाड से नीचे आकर एक गुफा मे रहने लगा।

वहाँ सोने की धरती थी। नूत के वृक्ष के फलो का रस सोने मे बदल जाता था। वहाँ साँवळ ने एक सौ सोने की ईटें बना कर अपने पास रखली। उसी बीच एक सौदागर का जहाज उधर आ निकला। उसने सावळ को अपने जहाज मे ईटे रख लेने की इजाजत दे दी। परन्तु साथ ही वह लोभ मे आ गया। पानी पीने के वहाने से सौदागर ने उसे एक कुएँ मे धकेल दिया और स्वय सोने की ईटे लेकर चलता वना। इस प्रकार गाथा का दूसरा चरण भी सत्य सिद्ध हुआ। कुएँ मे एक खिडकी थी, जिसमे प्रवेश करके सावळ समुद्र के तीर पर आ बैठा।

केसरिया सेठ ने अपनी बेटी पद्मावती की सगाई दूसरी जगह कर दी थी। उसकी बारात का जहाज तीर के पास आया। बारातियो ने सावळ को अपने जहाज मे बिठा लिया और इस प्रकार उसका एक सकट कटा। सावळ देखने मे वडा सुन्दर था। परन्तु बरात का दुलहा बदसूरत था और उसके पिता को सन्देह था कि सम्भवत दुलहिन उसके बेटे के साथ विवाह करना स्वीकार नही करेगी। ऐसी स्थिति मे एक बार सावळ को दुलहे का रूप देना तय किया गया और उसे सारी बात समझा भी दी गई। सावळ विपत्ति मे था, अत उसने दुलहा वनना मन्जूर कर लिया।

योजना के अनुसार सावळ का पद्मावती के साथ यथाविधि विवाह हो गया। वह ऐसा पति पाकर परम प्रसन्न हुई। उसके पिता ने उसे चार अनमोल रत्न दिये थे। पद्मावती ने उनमे से दो रत्न अपने पति की जाँघ मे एक जडी की सहायता से बन्द करके छिपा दिये और शेष दो अपने पास रख लिए। सावळ ने चुपचाप उसके वस्त्र पर पान के रस से निम्न दोहा लिख दिया —

सरसो पाटण सरस नय, सुसरै ठकुरो नाव।
ईसर तूठै पाईयै, आ गैहण ओ गाँव॥

विवाह के बाद बरात विदा हुई। जहाज पर दुलहिन को कहा गया कि उसका पति सावळ नही है और सेठ का बेटा है। परन्तु वह उसे पति मानने के लिए तैयार नही हुई। फल यह हुआ कि सावळ को निद्रित अवस्था मे जहाज पर से समुद्र मे डाल दिया गया और वारात आगे बढ गई।

समुद्र मे एक महामच्छ ने सावळ को निगल लिया और वह मच्छ नदी के द्वारा गुजरात मे आकर वहाँ धीवरो के द्वारा पकड लिया गया। गुजरात के राजा को मच्छ के तेल की जरूरत थी। इसके लिए जब वह मच्छ चीरा गया तो उसमे से सावळ जीवित अवस्था मे निकला। गुजरात के राजा ने

उसकी योग्यता देखकर 'दाण' (चु गी) का हाकिम बना दिया। अब वह सावळ जगाती के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जिस सौदागर ने सावळ की सोने की ई टे जहाज मे रखवा कर उसे कु एँ मे धकेल दिया था, वही अपना माल लेकर गुजरात आया। उसने सावळ को पहचान लिया और भयभीत होकर उसकी सौ ई टे तथा ऊपर से कुछ भेट देकर अपनी जान बचाई। सावळ ने उनमे से पच्चीस ई टे तो अपने पास रखली और शेष पचहत्तर ई टे राजा को भेट कर दी गई।

पद्मावती का श्वसुर बनने का इच्छुक सेठ भी गुजरात का ही निवासी था। जब बारात आयी तो उसके साथ सेठ व्यापार का माल भी ले आया था। उस माल की चु गी चुकानी जरूरी थी। सेठ ने देखा कि वहाँ तो जहाज से फेका गया सावळ ही जगाती बना बैठा है। अत उससे पिड छुडाने के लिए वह सेठ राजा के 'ओळगू' (गवैयो) के पास गया और उन्हे सोने की मोहरे देकर दरबार मे ऐसा प्रकट करने के लिए राजी कर लिया कि सावळ जगाती तो उनका भाई है।

सेठ का यह षड्यन्त्र चल गया। गवैयो के वक्तव्य से राजा बडा नाराज हुआ और उसने सॉवळ को धोखा देने के अपराध मे मार डालने का निश्चय किया। परन्तु सावळ ने अपनी जाघ मे छिपे रत्न निकाल कर राजा को दिखलाए तो सारी स्थिति बदल गई और गवैयो को डराने पर उन्होने भीतरी भेद खोल दिया। अब तो पासा ही पलट गया। दगाबाज सेठ बुलाया गया और उसका अपराध सोने की ई टो तथा पद्मावती के वस्त्र से सिद्ध हो गया। उसे दण्डित किया गया। सावळ को सम्पत्ति और पद्मावती प्राप्त हुई। राजा ने उसे सम्मान के साथ सरसा जाने के लिए विदा कर दिया।

ठकुरे साह के कोई पुत्र न था। वह सम्पत्ति और वधू सहित सावळ को पाकर परम प्रसन्न हुआ। अब सावळ ही अपने घर मे सर्वेसर्वा था। इस प्रकार आनन्द के साथ यह बात सम्पूर्ण हुई।

कहना न होगा कि इस बात का नामकरण ठकुरे साह के ऊपर हुआ है परन्तु वास्तव मे यह कहानी उसके बेटे सावळ की है और वही इसका कथा-नायक है। सम्पूर्ण बात मे भाग्य की प्रबलता प्रकट हुई है, जैसा कि इसकी 'गाथा' से स्पष्ट है। यह लाख रुपयो की बात है।

बात इस प्रकार कही अथवा लिखी गई है मानो सरसा नगर मे कभी सचमुच ही ठकुरा साह और उसका बेटा सावळ हो चुके है। राजस्थानी बातो मे 'अविश्वास का प्रतिरोध' (Suspense of disbelief) करने की पूरी

चेष्टा की गई है। एक अन्य वात (हसराज वछराज की वात) के अन्त मे तो यहा तक लिख दिया गया है कि 'तिके हसराज अर वछराज वडा गुजरात माहे नावजादीक हुआ छै।" परन्तु इस वात का मूल स्रोत दूसरा ही सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार ठकुरे साह की वात का उद्गम भी अनुसन्धेय है।

राजस्थान मे इस वात का लौकिक रूपान्तर भी प्रचलित है। तदनुसार एक सेठ केसर के गारे का 'चौबारा' चिनवाने के कारण 'केसरियो सेठ' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करता है। इस सेठ के पास इतना धन है कि इसने अपने मकान की काठ की 'सहतीरो' मे रत्न भरवा कर उन्हे सुरक्षित कर रखा है। समय पाकर भयकर वर्षा की बाढ मे उसका मकान गिर जाता है और वह एक लकडे के सहारे वह जाता है। फिर वह अनेक प्रकार के कष्ट भोग कर अत मे अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त करता है। इस लोक-कथा की गाथा इस प्रकार है—

साई तोसू वीनती, मनै न जाये भूल।
करी सो तो भुगत ली, करै सोई कबूल॥

इस कथा मे 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' का उद्घोप है, जिसे मूल मे उपर्युक्त गाथा (आरोहत गिर सिखर आदि) का ही दूसरा रूप समझिए।

उपर्युक्त ठकुरे साह की वात का विश्लेपरण करने पर कई प्राचीन भारतीय-कथानको के विभिन्न भागो की ओर सहज ही ध्यान चला जाता है। यह तुलना अत्यन्त रोचक है—

१ 'बृहत्कथा श्लोक सग्रह' (अध्याय १८) मे सानुदास की कहानी दी गई है। चम्पा का सेठ सानुदास बुरी आदतो मे पड कर अपनी सम्पत्ति खो बैठता है और फिर धन कमाने के लिए घर से निकलता है। समुद्र यात्रा मे उसका जहाज टूट जाता है और वह एक तख्ते के सहारे किनारे पहुँचता है। वहा उसकी समुद्रदिन्ना से भेट होती है, जो प्रकट करती है कि सानुदास के साथ उसकी सगाई की गई थी परन्तु उसकी बुरी आदतो के कारण विवाह नही किया गया। समुद्रदिन्ना ने मोती इकट्ठे कर रख थे। उसने वे मोती सानुदास को दिए। इसके बाद एक अन्य जहाज का व्यापारी उन दोनो को अपने जहाज मे बिठा कर उनका उद्धार करता है और कहानी आगे लम्बी चलती है।

कहना न होगा कि समुद्रदिन्ना का वृत्तान्त ठकुरे साह की कहानी मे पद्मावती का स्मरण करवाता है। सगाई होने और मोती भेट करने के प्रसग दोनो कथानको मे समानता प्रकट करते हैं।

२ 'समराइच्चकहा' (छठे भव) मे धरण व्यापारी की कहानी दी गई है। उसमे धरण धन कमाने के लिए समुद्र-यात्रा पर निकलता है परन्तु क्षुब्ध सागर मे उसका जहाज टूट जाता है और वह एक तख्ते के सहारे बहता हुआ सुवर्णद्वीप पहुँचता है। यहा रात के समय वह आग जलाता है और एक जगह पत्ते बिछा कर सो जाता है। प्रात काल वह देखता है कि आग जलाने के स्थान पर सोना है। तदनन्तर वह सोने की ईटे बनाता है और उन्हे अपनी मुद्रा से अकित कर देता है। फिर सुवदन नामक सार्थवाह उसका उद्धार करता है। वह सोने की ईटो सहित धरण को अपने जहाज मे ले लेता है। परन्तु आगे चल कर वह इस सोने को हजम करने की इच्छा करता है और धरण को समुद्र मे गिरा दिया जाता है। टोप्प नामक एक सेठ के आदमी धरण को बचा लेते है। फिर राजा के यहा सुवदन पर मुकदमा किया जाता है और वहा मुद्राकित सोने की ईटो के कारण धरण की जीत होती है।

यह कथाश तो सावळ की उपर्युक्त कथा से स्पष्ट ही मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो धरण ही साँवळ का रूप धारण करके प्रकट हो गया है। सोने की ईटे बनाना, समुद्र मे फेका जाना तथा राज-दरबार का मुकदमा आदि प्रसग दोनो कहानियो मे समान रूप से प्रकट है। इतना जरूर है कि धरण की पत्नी लक्ष्मी और सावळ की पत्नी पद्मावती के चरित्र सर्वथा भिन्न प्रकार के है परन्तु इसका कारण तो 'समराइच्चकहा' का गठन एव उसका मूल उद्देश्य है, जहा आदि से अन्त तक दो विरोधी तत्वो का सघर्ष चलता है।

३ 'भविसयत्तकहा' अत्यन्त प्रसिद्ध है। तदनुसार धनपाल सेठ की पत्नी कमलश्री के गर्भ से भविष्यदत्त का जन्म होता है। कालान्तर मे यही सेठ सरूपा नामक सुन्दरी से विवाह कर लेता है और कमलश्री तथा उसके पुत्र भविष्यदत्त की लापरवाही करता है। सरूपा के पुत्र पैदा होता है, जिसका नाम बधुदत्त रखा जाता है। वयस्क होकर बधुदत्त कचन द्वीप की यात्रा के लिए जहाज पर सवार होता है। उसका वैमात्रिक भाई भविष्य दत्त भी उसी के साथ जहाज मे बैठता है। परन्तु मैनाक दीप पहुँचने पर वधु दत्त अपने भाई भविष्यदत्त को वही अकेला छोडकर आगे बढ जाता है। यहा वह (भविष्यदत्त) भविष्यानुरूपा के साथ विवाह करता है और उसे प्रचुर धन की भी प्राप्ति होती है। जब वह सपत्नीक घर लौटता है तो उसे मार्ग मे विपन्नावस्था मे बधुदत्त मिलता है। भविष्यदत्त उसकी मदद करता है परन्तु

फिर वधुदत्त उसे दगा देता है और उसे अकेला छोडकर उसकी पत्नी तथा धन-सहित आगे वढ जाता है। वह अपने घर पहुँच कर भविष्यानुरूप के साथ विवाह करने की तैयारी करता है। इसी बीच मे भविष्यदत्त भी वहा पहुँच जाता है। बधुदत्त की राजा के सामने शिकायत की जाती है और दरवार मे उसकी हार होती है।

कहना न होगा कि इस कथा का ठाठ तो स्पष्ट ही सांवळ के वृत्तान्त से मिलता है। भविष्यदत्त को अकेला छोड कर उसकी पत्नी के साथ विवाह करने की बधुदत्त की कुचेष्टा तथा मुकदमे मे उसकी पराजय का सूत्र 'ठकुरे साह की वात' मे गुजरात के वेईमान व्यापारी का वृत्तान्त सामने रखता है।

४ 'राजा श्रीपाल की कथा' प्रसिद्ध है। तदनुसार श्रीपाल विदेश-भ्रमण के लिए निकलता है और धवल नामक व्यापारी के जहाज पर सवार होकर आगे वढता है। वे वर्बर देश मे पहुँचते है, जहा राजकर न देने के कारण धवल के सैनिको को युद्ध करना पडता है। इस युद्ध मे सैनिक मारे जाते हैं और धवल सेठ पकडा जाता है। फिर श्रीपाल युद्ध करके विजय प्राप्त करता है और धवल की मुक्ति होती है। वचन के अनुसार धवल उसे अपने आधे व्यापारिक जहाज दे देता है। वर्वर राजा श्रीपाल के साथ अपनी पुत्री का विवाह करता है और प्रचुर धन देकर उन्हे विदा कर देता है। धवल के साथ वह आगे वढता है और रत्नद्वीप मे आकर वहा की राजपुत्री के साथ विवाह करता है। फिर वे आगे रवाना होते है। धवल सेठ उसका धन और दोनो पत्निया प्राप्त करने के लोभ मे आकर उसे समुद्र मे गिरा देता है। श्रीपाल तैर कर कोकरण देश मे आ पहुँचता है। यहा भी उसका राजपुत्री के साथ विवाह होता है और वह राजा के दरवार मे पान वीडा देने के कार्य पर नियुक्त होता है। सयोग से धवल सेठ भी कोकरण आ पहुँचता है और वह दरवार मे आकर श्रीपाल को देखता है। अव धवल फिर षडयन्त्र रचता हैं और एक नट को लोभ देकर दरबार मे ऐसा प्रकट करने के लिए राजी कर लेता है कि श्रीपाल उसका (नट का) पुत्र है। नट के ऐसा कहने से राजा को श्रीपाल पर भारी क्रोध आता है और वह उसे मारने के लिए आज्ञा देता है। परन्तु श्रीपाल पीछे की सारी कहानी सुनाकर राजा को शान्त करता है। नट भी धमकाए जाने से वेईमान धवल का सारा भेद खोल देता है। फलत धवल सेठ अपराधी सिद्ध होता है परन्तु श्रीपाल के कहने से उसे क्षमा कर दिया जाता है और कहानी आगे वढती है।

स्पष्ट ही इस कहानी का धवल सेठ सावळ की कहानी का गुजरात

वाला व्यापारी प्रतीत होता है। यहाँ श्रीपाल पान बीडा देने के पद पर नियुक्त है तो वहा सावळ जगाती बना हुआ है। श्रीपाल कथा मे जहा नट है, वहा 'ठकुरे साह की बात' मे गवैये (डूम) है। फल भी दोनो कथाओ मे समान ही निकलता है। इस प्रकार ये दोनो कथानक समानता प्रकट करते है। यह तुलना बडी मनोरजक है।

प्राचीन काल मे भारत का समुद्री व्यापार बडी उन्नति पर था। भारतीय सार्थवाह समुद्र-यात्रा करके पूर्वी-द्वीपपुंज तथा रोम तक पहुँचते थे और इस व्यापार से देश को बडा लाभ था। इन साहसी व्यापार-वीरो की जीवन-कथाएँ जन-साधारण मे रुचि के साथ कही-सुनी जाती थी। फलत प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य मे बडी सख्या मे सार्थवाहो से सम्बन्धित कथाएँ मिलती है। समयानुसार ये कहानियाँ रूपान्तरित भी होती रही है, जो सस्कृत, पाली, प्राकृत एव अपभ्र श भाषाओ के कथा-ग्रन्थो का बारीकी से अध्ययन करने पर अपना परिचय प्रकट कर देती है। इस वर्ग की प्राचीन-कहानियो ने राजस्थानी बातो मे भी दर्शन दिए है। राजस्थानी लोग व्यापार-व्यवसाय मे विशेष रुचि रखते रहे है, अत ऐसी बातो का यहा लोकप्रिय होना स्वाभाविक ही है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि आज हम जिस 'बात' को सम्पूर्ण राजस्थानी वातावरण अथवा परिधान मे देखते है, वह प्राचीन भारत का कोई लोकप्रिय कथानक हो सकता है। इस विषय मे 'ठाकुरै साह-री बात' एक उदाहरण है। इसी दृष्टिकोण से अन्य राजस्थानी बातो का अध्ययन किया जाना भी नितान्त आवश्यक है। इस अध्ययन से भारत की भावात्मक-एकता प्रकाशमान होगी।

राजस्थानी लोककथाओं में नागतत्व

लोककला की गंगा विविध धाराओ के साथ सतत प्रवाहमान रहती है। यह चित्र, गीत, कथा, अलकरण एव प्रतिमा आदि अनेक तत्वो और छठा से महिमान्वित है। इसमे लोकमानस का सरल एव स्वाभाविक रूप मिलता है जो आकर्षण की विचित्र शक्ति से परिपूर्ण है। लोककला के इन विविध अगो का अध्ययन बडा उपयोगी है। लोककथाओ को ही लीजिये। इनसे लोकरजन तो होता ही है, साथ ही इनके वैज्ञानिक अध्ययन से नृतत्व-शास्त्र के भी अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नो पर प्रकाश पडता है जो मानवजाति के सामाजिक इतिहास के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इस लेख मे राजस्थानी लोककथाओ मे व्याप्त नागतत्व पर जरा विस्तार से विचार करने की चेष्टा की जाती है।

भारत मे नागपूजा का प्रचलन अति प्राचीन काल से है। यहाँ के साहित्य मे नागो के सबन्ध मे प्रचुर सामग्री उपलब्ध है और जनसाधारण का इनसे पूरा विश्वास भी है। 'राजस्थानी लोक-सस्कृति की रूपरेखा' शीर्षक निबन्ध (वरदा वर्ष २, अक ३) मे इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई थी कि राजस्थान के जन-जीवन मे व्याप्त नागतत्व का वास्तविक रूप क्या है और उसे कहाँ तक लोक विश्वास प्राप्त है परन्तु विस्तार भय से उस निबन्ध मे उन विविध लोककथाओ पर प्रकाश नही डाला जा सका जिन पर यह लोकविश्वास आधारित है। राजस्थानी जनजीवन मे व्याप्त नागतत्व

के अध्ययन के लिये इस विषय की यहाँ की लोककथाओ की जानकारी नितान्त आवश्यक है। आगे जो लोककथाएँ यथास्थान दी गई है, वे काफी बडी है परन्तु विस्तार भय से जहाँ तक हो सका है, इस लेख में उन्हे सक्षिप्त रूप मे ही प्रस्तुत किया गया है।

राजस्थान मे नागपूजा का प्रचार विशेष रूप से है। यहाँ गोगाजी, तेजाजी आदि लोक देवताओ के प्रति जनसाधारण का बडा सम्मान है और यथासम्भव इनके नाम पर अनेक स्थानो पर मेले लगते है तथा इनकी "मँडी" बनी हुई है। साँप इन लोक देवताओ के वशवर्ती बतलाये जाते है, अत लोग इनसे बहुत डरते हैं और इनकी कृपा करना चाहते हैं। लोकविश्वास है कि इनकी कृपा प्राप्त कर लेने पर साँप नही काटता और यदि काट लेता है तो उसका विष दूर हो जाता है। इन लोक देवताओ के सम्बन्ध मे प्रचुर साहित्य सामग्री प्रचलित है[1] और भक्त लोग उसमे बडा रस लेते है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक लोक कथाएँ सांपो के सम्बन्ध मे कही जाती है। ये कहानियाँ शिक्षाप्रद एव मनोरजक भी है।

पृथ्वी की रचना एव उसका नियन्त्रण 'सकर्षण' पर आधारित है। भारतीयो ने इसी शक्ति को शेषनाग के रूप मे चित्रित करके देव रूप दिया है। फलस्वरूप इस विषय मे अनेक कथाएँ भी प्रचलित हैं। जिस प्रकार लक्ष्मण एव बलराम शेषावतार माने जाते है, उसी प्रकार राजस्थानी लोक देवता पाबूजी भी शेषनाग के अवतार माने जाते है और जनसाधारण मे इस विषय मे पूरी मान्यता है।[2]

नागपचमी का दिन नागपूजा का विशेष पर्व है। इस दिन महिलाएँ परिवार की मगल कामना से विशेष आयोजन के साथ कथा सुनती है और घर मे ठडा खाना खाया जाता है। नागपूजा सम्बन्धी भारतीय प्रजा का प्राचीन विश्वास राजस्थान मे अति मात्रा मे व्याप्त है और लोग इस बात का पूरा ध्यान रखते है कि उन पर किसी भी कारण से नागदेवता की अकृपा न हो जाय। आगे नागतत्व विषयक कुछ राजस्थानी लोककथाओ पर प्रकाश डाला जाता है। ये कहानियाँ जन साधारण मे बडे चाव के साथ कही एव सुनी जाती है—

---

1 इस सम्बन्ध मे 'मरु भारती' (भा० ४ अक ४) मे लेखक का "राजस्थानी लोकगीतो मे गोगाजी" शीर्षक एव 'राजस्थान भारती' (भा० ५ अक २) मे श्री अगरचन्द नाहटा का तेजाजी विषयक लेख द्रष्टव्य है।

2 'मरु भारती' (पिलानी) के अको मे पाबूजी के कई पवाडे प्रकाशित हो चुके है।

किसी नगर मे एक वनिया रहता था जो अपार सम्पत्तिशाली होने पर भी अत्यन्त कृपण था। उसकी कृपणता यहाँ तक वढी हुई थी कि वह अपने पेट को रोटी देने मे भी सकोच करता था। उसका धन्धा यह था कि वह लोगो को रुपये उधार देता या और कठोर व्याज लेता था।

वनिया कई वार व्याज की वसूली के लिए देहातो मे भी जाता था। एक वार जव वह वाहर जाने लगा तो उसके वडे वेटे की वहू ने साथ लेजाने के लिए रोटियाँ वनाई और झारी मे पानी भर दिया। इनको लेकर वनिया अपने घर से निकल गया।

मार्ग मे चलते चलते भोजन का समय हो गया। वनिया एक पेड की छाया मे बैठ गया और उसने साथ लायी हुई रोटियाँ खाली। फिर वह पानी झारी मे से निकाल कर पानी पीने लगा। ज्यो ही उसने पानी मुँह से लगाया कि उसे वडा क्रोध आया और वह जगल मे अकेला ही वडवडाने लगा। वात यह थी कि उसके वेटे की वहू ने झारी के पानी मे कुछ चीनी मिलादी थी जिससे कि उसके ससुर को मार्ग मे अधिक प्यास न लगे। परन्तु वनिये को धन की ऐसी वर्वादी सह्य न थी। उसने पास के एक विल मे सारा पानी डाल दिया और वही से घर लौट कर अपने वेटे की वहू को वुरी तरह फटकारने लगा। वहू समझदार थी, अत वह चुप रही।

दूसरे दिन फिर वनिया देहात मे वसूली करने के लिए चला। आज भी उसके वेटे की वहू ने फिर वैसा ही किया और वनिया पहिले दिन की तरह ही सारा पानी उसी विल मे डालकर घर आ गया। आज उसने वेटे की वहू को और भी अधिक भला वुरा कहा। परन्तु वह चुप रही। अगले दिन वनिया फिर उसी काम से रवाना हुआ। उसने उसी स्थान पर रोटियाँ खाई और पानी मे उसे फिर मीठा स्वाद आया। उसने तत्काल सारा पानी उसी विल मे डाल दिया और चलने को तैयार हुआ कि इतने मे ही उस विल से एक भयकर सर्प ने अपना फन निकाल कर कहा—"माँग, माँग, मै तेरी सेवा से परम प्रसन्न हूँ।" वनिया सर्प को देख कर वुरी तरह भयभीत हो गया और वह कुछ भी नही वोल सका। सर्प ने उसे धीरज दिया और मन चाहा वरदान माँगने को कहा। अब वनिये के जी मे जी आया। उसने सर्प के सामने हाथ जोडे और निवेदन किया कि वह अपने घर मे सलाह करने के वाद कुछ निवेदन करेगा। सर्प ने उसकी वात स्वीकार करली। वनिया अपने घर लौट आया।

घर आकर वनिये ने पूरा वृत्तान्त अपनी स्त्री को कह सुनाया। उसने कहा कि यह अवसर वहू की चतुराई से मिला है, अत जो कुछ वह

कहे, वही वरदान सर्प से माँगा जावे। तदनुसार बहू से सलाह ली गई। उसने कहा कि सर्प से कुछ भी न माँगा जावे, केवल उसे इतना ही निवेदन किया जावे कि 'हमारा धन हमारा ही हो जाय।' बनिये के यह बात समझ मे नही आई परन्तु फिर भी उसने अगले दिन सर्प के सामने जाकर यही निवेदन किया कि हमारा धन हमारा ही हो जाय।' सर्प यह माँग सुनकर चुप हो गया। उसने बनिये को समझाया कि यह तो कोई विशेष माँग नही है, अत वह कोई दूसरी चीज माँग लेवे। परन्तु बनिये ने अपनी बात नही छोडी और वह उतने ही शब्द बारम्बार बोलता ही रहा। अन्त मे सर्प ने बनिये से कहा कि अगले दिन वह उसी स्थान पर फिर आवे, तब उसकी माँग का उत्तर दिया जा सकेगा। बनिये ने घर आकर समस्त वृत्तान्त सुना दिया और उसे फिर समझा दिया कि वह अपनी बात पर पक्का रहे।

असल मे बात यह थी कि वह नाग सब साँपो का राजा था और बनिये के पास जितनी भी सम्पत्ति थी, वह सर्प राजा की बहिन के यहाँ गिरवी पडी थी और यही कारण था कि वह उसे भोग नही सकता था। सर्प बनिये को वचन दे चुका था। अत वह अपनी बहिन के घर गया और उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया, सर्पराज की बहिन ने पहले तो कुछ सकोच किया परन्तु अन्त मे उसने भाई का वचन निभाया और बनिये की सम्पत्ति को मुक्त कर दिया। इधर उसी क्षण बनिये की कृपणता दूर हो गई और वह बडा उदार बन गया। अब वह बडा सेठ था।

अगले दिन सेठ के लिए सर्पराज के सम्मुख उपस्थित होने का समय आया। उसने रथ पर सवारी की और सर्पराज के सामने उपस्थित होकर, वे ही शब्द कहे। सर्पराज ने उसे कहा कि ऐसा तो पहले ही हो चुका है वह और भी कुछ इच्छा हो तो माँग सकता है। परन्तु अब सेठ को कुछ नही माँगना था। वह सर्पराज का आभार मानकर अपने घर लौट आया और उसी दिन से ठाठ-बाट से रहने लगा। अब वह नगर सेठ था।

इस लोक-कथा मे बनिये का 'लोभ' ही सर्प है जो मधुर व्यवहार से अपना क्रूर रूप छोड कर सौम्य रूप धारण करता है। जिस व्यक्ति का हृदय लोभाक्रान्त है, उसकी सम्पत्ति गिरवी रखी हुई के समान है और वह उसे भोग नही सकता। कथा के नायक का लोभ उसकी पुत्रवधू की बुद्धिमानी से दूर हो जाता है और वह अपनी सम्पत्ति का वस्तुत स्वामी बन जाता है। इस प्रकार की अनेक कथाएँ हैं और अपने पूर्वजन्म की सम्पत्ति की रखवाली करते है। अन्त मे वह सम्पत्ति उस व्यक्ति के अधिकारी को मिलती है और

तब वह सर्प योनि से मुक्त होता है। इस लोककथा की विशेषता है कि वह वनिया मनुष्य शरीर धारण करने पर भी 'धन का साँप'ही वना हुआ था। परन्तु वह मधुर व्यवहार एव सस्कार से इसी जीवन मे परम उदार बन कर सही रूप मे लक्ष्मीपति सेठ वन गया। वनिये और सेठ मे यही अन्तर है, जो इस लोक-कथा मे प्रकट किया गया है।

सर्प विषयक एक अन्य लोक-कथा इस प्रकार कही जाती है-एक बार एक ब्राह्मण किसी वन मे से होकर जा रहा था। उसने देखा की बन के एक भाग मे आग लगी हुई है और उसमे एक सर्प जल रहा हे। सर्प ने यात्री को देखकर रक्षा के लिए करुण पुकार की और ब्राह्मण ने दयावश उसे जलने से बचा लिया। उसने सर्प को उठाकर एक जगह छाया मे डाला। सर्प ने फिर ब्राह्मण से प्रार्थना की कि उसकी प्राण रक्षा तो हो गई परन्तु उसके शरीर के ऐसी आँच लगी है कि अब भी मानो वह जल ही रहा है। अत यदि कुछ समय के लिए ब्राह्मण उसे अपने कलेजे मे प्रविष्ट होने दे, तो उसकी जलन दूर हो सकती है। ब्राह्मण भोला था। उसने अपना मुँह खोल दिया और सर्प उसमे प्रविष्ट हो गया। अब ब्राह्मण वेचैन हो गया। और उसने पेट मे बैठे हुए सर्प से बाहर निकलने की प्रार्थना की। परन्तु साँप अव क्योकर बाहर निकलने लगा। वह वही जमकर बैठ गया।

ब्राह्मण वहाँ से चलकर अपने घर आया और उसी-दिन से वह वीमार हो गया। उसने अपने घरवालो को पूरा वृत्तान्त समझा दिया परन्तु उसका कोई इलाज नही हो सका। अन्त मे ब्राह्मण की बहुत बुरी हालत हो गई। ऐसी स्थिति मे उसने सोचा कि अब वह अधिक दिन जीवित नही रह सकता और वह गगा के किनारे प्राण त्यागने के लिए घर छोड कर आ गया। उसकी स्त्री उसके साथ थी।

जब सब सो जाते थे तो कई बार ब्राह्मण के पेट मे रहने वाला साँप मौका देखकर बाहर निकला करता था और इधर उधर घूमकर किसी के जागने से पूर्व ही अपने स्थान मे जा बैठता था। एक दिन ब्राह्मण और उसकी पत्नी गगातट पर सो रहे थे कि वह साँप पेट मे से निकल कर बाहर आया। सयोग से ब्राह्मणी की आँखे खुली और उसने साँप को देख लिया, परन्तु वह चुप रही। साँप गगा की शीतल वालुका मे घूमने लगा। इसी समय वहाँ के विल मे से एक दूसरा साँप और निकला। वे दोनो एक जगह बैठ कर बात-चीत करने लगे। ब्राह्मणी सोने का बहाना करके उनका वार्तालाप सुनने लगी। दोनो साँपो ने कुशल प्रश्न के वाद अपनी रहन-सहन का विवरण एक

दूसरे को सुनाया। जब गगातट पर रहने वाले साँप ने ब्राह्मण के पेट मे रहने वाले साँप का हाल सुना तो उसे उसकी नीचता पर बडा क्रोध आया और उसने उसे बहुत धिक्कारा। इस पर पहले साँप को भी क्रोध आ गया। उसने कहा, "तुझे अपने धन पर घमड है। यदि कोई व्यक्ति तेल गर्म करके तेरे बिल मे डाल दे तो तुझे सब पता चल जाये।" इतना सुनकर दूसरा साँप बोला, "मुझे भी सब पता है। यदि कोई इस ब्राह्मण को काजी पिला दे तो तुझे भी सब पता चल जाये।" ब्राह्मणी सब सुन रही थी। वह कुछ हिली इतने मे ही वह साँप दौडकर ब्राह्मण के पेट मे प्रविष्ट हो गया।

अगले दिन ब्राह्मणी ने अपने पति को काजी पिलाई और वह ठीक हो गया। उसके पेट मे रहने वाला साँप नष्ट हो गया। फिर उसने तेल गर्म करके दूसरे साँप के बिल मे डाला। वह साँप जल गया और बिल खुदवा कर उसकी समस्त सम्पत्ति लेली गई। अब ब्राह्मण पूर्ण स्वस्थ था और हर प्रकार सम्पन्न भी था। वे दोनो घर आकर आराम से रहने लगे।

यह लोककथा पचतन्त्र मे भी है, अत काफी पुरानी है। इसका साँप कृतघ्नता का रूप है। राजस्थान मे और भी कई लोक-कथाएँ साँप के सम्बन्ध मे प्रचलित हैं जिनमे घोर कृतघ्नता का प्रकाशन किया गया है। इस कथा का साँप एक उपकारी ब्राह्मण के पेट मे प्रवेश करता है, यह तत्त्व विशेष रूप से साभिप्राय है। राजस्थानी बोलचाल मे एक मुहावरा "पेट मे बडणो" है। यह मुहावरा उस समय प्रयुक्त होता है जब कोई चालाक व्यक्ति किसी भोले आदमी के सामने मीठी मीठी बाते बनाकर उसका रहस्य मालूम कर लेता है और फिर अपना काम बना कर उसे विपत्ति मे डाल देता है। इस लोक-कथा मे यह मुहावरा चित्रवत् प्रकट किया गया है जिससे इसकी शिक्षा विशेष रूप से प्रभावोत्पादक बन गई है। राजस्थानी जनसाधारण मे यह लोककथा एक अन्य शिक्षा के लिए भी कही जाती है। वह शिक्षा है कि "कभी भी भेख की खोटी नही कहणी" अर्थात् अपनी जाति के किसी भी व्यक्ति की बुराई नही करनी चाहिये। इससे निन्दित और निन्दक दोनो को हानि होती है। परन्तु मूल रूप मे यह कहानी कृतघ्नता की चरम सीमा दिखाने के लिए ही प्रचलित हुई है और इसके लिए साँप का चुना जाना—उसके स्वभाव का सूचक है। इसी विषय मे एक राजस्थानी लोककथा और प्रस्तुत की जाती है, जो इस प्रकार है—

एक बार एक जाट का लडका अपनी वहू को लाने के लिये ससुराल जा रहा था। मार्ग मे एक वन आया, जहाँ उसने देखा कि एक साँप जलने

की स्थिति मे फँसा हुआ है। साँप ने लडके से रक्षा के लिए करुण पुकार की। लडके को उस पर दया आगई, परन्तु आग के पास जाना कठिन था। उसके साथ पानी की एक 'लोट' (विशेष प्रकार का मिट्टी का पात्र) थी। लडके ने 'लोट' का सिरा 'सणियें' (एक पौधा) की रस्सी से बाँधकर साँप की तरफ फैंका। साँप 'लोट' मे प्रविष्ट हो गया और रस्सी खैंच कर उसे बचा लिया गया। अब साँप को चैन मिली। उसने आँखे बदल कर प्रकट किया कि वह तो उस लडके को काटेगा। लडके ने कहा कि अपने प्राणरक्षक के साथ ऐसा व्यवहार करना बहुत बुरा है। परन्तु साँप न माना। अन्त मे लडके ने वचन दिया कि इस समय उसे अपनी ससुराल जाने दिया जावे और वह तीसरे दिन अवश्य ही सर्प की इच्छा पूरी करने के लिए वहाँ उपस्थित हो जायगा। साँप ने लडके को शपथ दिलवाई और तदनन्तर उसे ससुराल जाने दिया।

ससुराल पहुँच कर जाट का लडका बडा उदास रहा। सबने उससे उदासी का कारण पूछा परन्तु उसने कुछ भी प्रकट नही किया। अन्त मे उसकी बहू ने उससे सारा वृत्तान्त मालूम कर लिया और उसे किसी प्रकार धीरज बँधाया। तीसरे दिन लडका अपनी बहू को लेकर उसी स्थान पर आगया जहाँ उसने साँप से भेट की थी। आवाज देते ही साँप एक बिल मे से निकल आया। लडके की बहू ने उससे बहुत अनुनय-विनय की, परन्तु वह नही माना। अन्त मे यह तय हुआ कि इस विषय मे न्याय करवा लिया जावे कि साँप का उसके पति को काटना उचित है या नही। इतने मे ही उधर से गायो का एक 'चूणा' (समूह) निकला। 'चूणे' मे सबसे आगे एक बूढी गाय थी। उन्होने गाय से निर्णय माँगा। गाय ने अपनी कष्ट-कथा सुनाते हुए यही निर्णय दिया की ससार मे भले का फल बुरा ही मिल रहा है। अत साँप लडके को काट लेवे तो क्या अनुचित है! लडके की बहू ने इस गवाही को काफी नही माना और वे सब दूसरे गवाह से पूछने के लिये वहाँ से चले। मार्ग मे एक पीपल का पेड आया जो सूख गया था। उस पेड को सारा वृत्तान्त सुनाकर उसका निर्णय माँगा गया। उसने भी अपनी दुःख भरी कहानी सुनाकर बूढी गाय के शब्दो मे ही निर्णय दिया। अन्त मे एक तीसरी गवाही के लिये वे और आगे बढे। मार्ग मे उन्हे दाहिनी ओर बैठी हुई 'सोनचीडी' दिखलाई दी।[1] लडके की बहू ने उसे पुकार कर अपने पास बुलाया और सारा

1 सोनचीड़ी (शकुन चिडिया) का दाहिनी ओर मिलना शुभ परिणाम का सूचक माना जाता है।

विवरण सुनाकर उससे निर्णय माँगा। 'सोनचीडी' ने एक बडे से पेड पर बैठ कर इधर उधर देखा और फिर वह बोली, "एक लूंकती (लोमडी) इधर आ रही है। वह तुम्हारा निर्णय कर देगी।" इतने मे ही लूकती वहाँ आ पहुँची। उससे भी पूरा वर्णन करके निर्णय माँगा गया। उसने उत्तर दिया कि उनका मुकदमा विल्कुल निराधार है क्योकि जिस साँप का इतना बडा फन है, वह 'लोट' के छोटे से मुँह मे प्रविष्ट ही नही हो सकता। इसलिए सर्वथा बनावटी विवाद का निर्णय नही दिया जा सकता। साँप ने उसे समझाया कि उनका विवाद निराधार नही है। वस्तुत. वह 'लोट' मे प्रविष्ट हो गया था। 'लूकती' ने कहा कि यदि यह बात सही है, तो उसे ऐसा करके आँख से दिखलाया जावे। साँप उतावली मे था। अत वह सब कुछ प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए 'लोट' मे फिर प्रविष्ट हो गया। तत्काल 'लूकती' ने 'लोट' का मुँह वन्द कर दिया और उसे जमीन मे गडवा दिया। लूकती की बुद्धिमानी पर लडका चकित हो गया। वह अपनी बहू को साथ लेकर सानन्द घर लौट आया।

असल मे यह लोककथा "ब्राह्मण और सिंह" विषयक प्रसिद्ध कहानी का राजस्थानी रूपान्तर मात्र है। इसमे ब्राह्मण की जगह जाट का लडका है और सिंह का स्थान साँप ने लिया है। गीदड का काम लोमडी ने किया है। ये दोनो जानवर समान रूप से लोककथाओ मे चालाक चित्रित किये जाते है। इस लोककथा का वातावरण सर्वथा राजस्थानी है। तेजाजी जाट की जीवन-कथा मे भी ऐसा ही प्रसग उपस्थित होता है कि वे वचनवद्ध होकर वापिस एक सर्प के सामने कटवाये जाने के लिए उपस्थित होते है। ऐसी वचनवद्धता और भी कई लोककथाओ मे देखी जाती है जो एक विशिष्ट 'अभिप्राय' है। इस लोककथा का साँप तो कृतघ्नता का प्रतीक है ही।[1] साथ ही इस लोक कथा मे 'करके दिखलाओ' अभिप्राय भी प्रकट हुआ है। इस प्रकार हम देखते है कि इस कहानी मे तीन 'अभिप्राय' प्रयुक्त हुए हैं जिनमे यह कहानी अत्यन्त रोचक तथा शिक्षाप्रद वन गई है।

इसी प्रसग मे एक राजस्थानी लोककथा और भी दी जाती है –

एक राजा को उसके पडित ने कहा कि एक साँप से आपका पूर्वजन्म का वैर है और वैर का वदला लेने के लिए वह साँप निश्चित दिन को अवश्य

---

1 सभी लोककथाओ मे साँप कृतघ्न नहीं है। कई कहानियो मे वह उपकार का अच्छा वदला भी देता है।

आयेगा, अत आप सचेष्ट रहे। राजा को पडित की बात पर भरोसा था। इसलिए उसने सॉप के आक्रमण से बचने के लिये विशेष प्रकार की तैयारी की। सर्व प्रथम उसने अपने नगर का राजमार्ग पूरी तरह साफ करवाया और साँप के आने के एक दिन पूर्व ही सव जगह पुष्प विखरवा दिये। इसी प्रकार उसने राजमहल मे जगह-जगह इत्र छिडकवाया और दूध से भरे हुए पात्र रखवा दिये। जिस रात को साँप आने वाला था, राजा अपने कमरे मे सोया नहीं और हाथ मे माला लेकर जमीन पर बैठ गया।

निश्चित समय पर साँप ने नगर मे प्रवेश किया और मार्ग के पुष्पों की सुगन्ध से वह बडा प्रसन्न हुआ। इसके बाद वह राजमहल मे प्रविष्ट हुआ। वहाँ इत्र की मोहक गध फैली हुई थी और दूध के कुण्डे रखे हुए थे। सॉप ने जी भर कर दूध पीया और वह विशेष रूप से प्रसन्न हुआ। उसे पता चल गया कि यह सब तैयारी उसी राजा के द्वारा करवाई गई है, जिसे वह काटने जा रहा है। आगे महल मे जाने पर राजा जमीन पर बैठा हुआ दिखाई दिया। साँप को देखते ही राजा ने हाथ जोड कर प्रणाम किया और वह सर्वथा शान्त रहा। इससे साँप और भी प्रभावित हुआ। फल यह हुआ कि उसने राजा को अदण्डनीय समझ कर क्षमा कर दिया और प्रेम प्रकाशन करके वह अपने स्थान को लौट गया।

इस कहानी का साँप वैर अथवा क्रोध का प्रतीक है जो प्रेमभाव के कारण शान्त हो जाता है। यहाँ साप के वहाने शान्तिपूर्ण नीति का सुन्दर उपदेश दिया गया है।

राजस्थान की अनेक लोककथाओ मे नागमणि एव नागकन्या की चर्चा आती है। नागमणि का प्रकाश अतिमात्रा मे तीव्र वतलाया जाता है। इसी प्रकार नागकन्या का रूप असाधारण प्रकट किया जाता है। नागमणि का प्रभाव भी अनोखा कहा जाता है। उसको साथ रखने से जल अलग हट जाता है और चलने वाले को मार्ग दे देता है। लोककथाओ मे कई साहसी एव वुद्धिशाली युवक नाग को मार कर उसकी मणि प्राप्त करते है। फिर वे मणि के साथ किसी जलाशय मे प्रविष्ट होकर अनिद्य सुन्दरी नागकन्या को प्राप्त करते है जो जलाशय के भीतरी भाग मे वने हुए महल मे निवास करती है। ढूँढाड प्रदेश का ऐसा नाम पडने सम्वन्धी कहानी मे ऐसा प्रसग आया है। इसी प्रकार चार मित्रो सम्वन्धी कहानी का नायक भी नागकन्या से विवाह

करता है ।[1] नागकन्याओ का रूप-सौदर्य विख्यात है और उनके साथ विवाह करने के सम्बन्ध मे अनेक पुराण-कथाएँ है । ये सब आर्य एव नाग लोगो के पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध की सूचक है । राजस्थानी लोककथाओ मे यह तत्व कई रूपो मे प्रकट हुआ है । आगे इस विषय मे कुछ लोककथाएँ प्रस्तुत की जाती है --

किसी गाँव मे एक राजपूत सरदार था । उसके कोई लडका न था । अत वह सदैव बडा उदास रहता था । एक दिन ठकुरानी ने पडित को बुलाकर अपना सतान योग पूछा । पडित ने उत्तर दिया कि उसको पुत्र मिलने का योग है परन्तु उसके लिये चतुराई से काम लेना पडेगा । तदन्तर इसके लिये पडित ने विधि भी ठकुरानी को बतला दी ।

कुछ समय बाद ठकुरानी ने एकान्तवास आरम्भ कर दिया । कोई भी उससे मिल नही सकता था । इसके कुछ समय बाद नगर मे खबर फैलादी गई कि ठाकुर के पुत्र पैदा हुआ है । महल मे काफी आनन्द मनाया गया परन्तु नवजात शिशु किसी को दिखलाया नही गया । छिपे रूप मे ही राजपूत सरदार के पुत्र का पालन-पोषण हुआ और जब कई वर्ष निकल गये तो उसका एक जगह विवाह निश्चित कर दिया गया । परन्तु फिर भी उसे किसी को दिखलाया नही गया ।

विवाह के लिए बरात रवाना हुई । ठकुरानी स्वय अपने पुत्र को साथ लेकर रथ मे बैठ गई । एक रथ मे पडितजी भी बैठे थे । मार्ग मे एक बडे तालाब के पास बरात ने रात बिताने के लिए डेरा किया । सब लोग खा पीकर सो गये परन्तु ठकुरानी जागती रही । आधी रात बीतने पर वह तालाब के पास गई, उसी समय जल मे से एक नागिन निकली । ठकुरानी ने उसके सामने हाथ जोड लिये और वह रोने लगी । नागिन ने दयावश उसके दु ख का कारण पूछा । ठकुरानी ने पूरा वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि उसके कोई पुत्र नही है और वह झूठ ही पुत्र को साथ लेकर उसका विवाह करने के लिए जा रही है । अत उसे नागिन अपना पुत्र कुछ समय के लिए उधार देने की कृपा करे, जिससे कि उसकी लाज रह सके । नागिन ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके अपना पुत्र उसके साथ कर दिया ।

---

1 विशेष जानकारी के लिए शोधपत्रिका भाग ८ अ क १-२ मे लेखक का 'यारी का घर दूर है' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है ।

नागिन के पुत्र को दुल्हे के रूप मे प्रकट किया गया और उसका विवाह हो गया। वारात सानन्द घर लौट आई। अब वह नाग पुत्र ठाकुर के वेटे के रूप मे रहता था और इस रहस्य का स्वय ठाकुर तक को पता न था। उधार की चीज लौटाने की अवधि पूरी हुई और नागिन अपने पुत्र को वापिस लेने के लिए ठाकुर के महल मे आई। ठकुरानी के आदेश से उसकी पुत्रवधू ने अपनी नागिन सास के पैर छुये। नागिन ने उसे आर्शीवाद दिया, "सीळी हो, सपूती हो, सात वेटा की माँ हो।" यह आशीर्वाद सुनकर ठकुरानी ने प्रकट किया कि यदि वह अपना पुत्र साथ ले जयेगी तो उसकी वहू सीळी-सपुती कैसे रहेगी ? नागिन को उसकी वात समझ मे आ गई और फलस्वरुप उसने अपना पुत्र सदा के लिए ठकुरानी को प्रदान कर दिया।

इसी विषय की एक अन्य लोककथा राजस्थान मे इस प्रकार कही जाती है —

एक सेठानी के कोई पुत्र न था। अत वह सदैव उदास रहती थी। अन्त मे उसने अपनी पूजा से नाग देवता को प्रसन्न करके उनका पुत्र अपने लिये माँग लिया और वह पुत्रवती वनकर रहने लगी। इस भेद का एक पडौसिन के अतिरिक्त किसी को पता न था।

कालान्तर मे लडका बडा हुआ और उसका विवाह कर दिया गया। सास ने अपनी वहू को समझाया कि वह किसी भी काम से कभी भी अपने घर से वाहर न जावे और सदैव घर की रानी वनकर ही रहे। वहू ने भी अपनी सास की सीख का पूरी तरह पालन किया और समय निकलने लगा। एक दिन सयोग ऐसा हुआ कि सास किसी काम से वाहर गई हुई थी और वहू आग लाने के लिये पडौसिन के घर चली गई। पडौसिन ने उसको वडे सम्मान के साथ विठाया और कभी भी घर से वाहर न निकलने का कारण पूछा। वहू ने उत्तर दिया कि वह अपनी सास की आज्ञा से ऐसा करती है। फिर पडौसिन ने उसे कहा कि वह अपने पति से पूछे कि वह कौन है और कहाँ से आया है ? ऐसा सुनकर वहू के मन मे भी शका पैदा हुई और वह अपने घर लौट आई। उसकी सास को इस घटना का पता नही चल सका।

उसी रात वहू ने अपने पति से कहा कि वह अपना पूरा परिचय उसे देवे। इतना सुनते ही वह साँप वनकर नाली के मार्ग से वाहर निकल गया और वहू चकित होकर सारी लीला देखती रही। अगले दिन उसने सारा समाचार अपनी सास से कहा परन्तु अब क्या हो सकता था ? लडका तो जहाँ से आया था, वही चला गया और वहू घर मे रह गई।

वहू ने अपने पति को वापिस प्राप्त करने के लिये एक तरकीब की। उसने घोषणा करवादी कि जो कोई व्यक्ति आकर उसे अनोखी घटना का सही समाचार देगा, उसे एक सोने का टक्का (सिक्का) इनाम मे दिया जायेगा। फलस्वरूप कई लोग अनोखा वृत्तान्त सुनाने के लिये आने लगे और सोने का टक्का पाने लगे। उनके घर मे धन की कोई कमी न थी, अत यह क्रम जारी रहा।

एक दिन किसी दूसरे गाव का एक ब्राह्मण इनाम पाने के लिये अपने घर से चला। उसे मार्ग मे ही रात हो गई। अत वह जगली जानवरो के भय से एक पेड पर चढ गया। काफी रात बीतने पर उसने देखा कि पेड के नीचे तीव्र प्रकाश फैल गया है और एक सभा जुड गई है। उस सभा मे एक व्यक्ति सिहासन पर बैठा है और उसके सामने रूपवती युवतिया नाच-गान कर रही है। कुछ समय के बाद वह दृश्य लुप्त हो गया। दिन निकलने पर ब्राह्मण पेड से नीचे उत्तर आया और अपने गन्तव्य स्थान के लिये रवाना हो गया।

ब्राह्मण ने नगर मे पहुँच कर सेठ की पुत्रवधू को रात्रि की घठना का विवरण सुनाया और इनाम पाई। सेठ की पुत्रवधू ने सिहासन पर बैठने वाले व्यक्ति की सूरत का वर्णन सुनकर ब्राह्मण को अपने घर मे ही ठहरा लिया और उसका काफी सम्मान किया। रात पडने पर वह ब्राह्मण को साथ लेकर उसी पेड के पास पहुँची जहा गत रात्रि को जलसा देखा गया था। वे दोनो पेड पर चढकर बैठ गये। कुछ समय बीतने पर वही दृश्य पेड के नीचे प्रकट हुआ। बहू ने पहिचान लिया सिहासन पर बैठने वाला व्यक्ति उसका पति ही है। अत वह चुपचाप पेड से नीचे उतर आई और नाचने वाली युवतियो मे शामिल हो गई। उसका नाच देखकर सिहासन पर बैठा हुआ व्यक्ति परम प्रसन्न हुआ और उसने नई नर्तकी को इनाम मागने के लिये कहा। वहू ने वचन लेकर उसको खुद को ही इनाम मे मागा। अब उसे पता चला कि वह तो उसी की पत्नी है जिसे वह छोडकर चला आया है। वचन पूरा करने के लिये वह वही रह गया और सभा गायब हो गई। इसके बाद ब्राह्मण को पेड से नीचे उतारा गया और वे तीनो सेठ के नगर मे आ गये। घर आकर ब्राह्मण को काफी धन देकर विदा किया गया और वे आनन्द से रहने लगे।

एक अन्य राजस्थानी लोककथा इस प्रकार कही जाती है —

एक राजा के कई लडकियाँ थी। एक दिन राजा ने उनको बारी-बारी से अपने पास बुलाकर पूछा कि वे किसके भाग्य से आनन्द करती है? बडी

लडकियो ने अपने सुखी जीवन का कारण राजा का भाग्य प्रकट किया। परन्तु सबसे छोटी लडकी ने कहा कि वह तो अपने भाग्य से ही मौज करती है। इस उत्तर से राजा बुरी तरह नाराज हुआ। समयानुसार उसने सभी लडकियो का विवाह अच्छा घर एव वर देखकर किया परन्तु जब सबसे छोटी लडकी विवाह योग्य हुई तो राजा ने पुरोहित को बुलाकर कहा कि वह राजकुमारी की सगाई किसी ऐसे व्यक्ति से करके आवे, जिसके साथ वह कभी सुखी नही रह सके। इस आज्ञा को सुनकर पुरोहित दु खी हुआ परन्तु राजकोप का भय मानकर वह तदनुसार कार्य करने के लिये घर से रवाना हुआ।

पुरोहित की समझ मे नही आया कि राजकुमारी का सम्बन्ध ऐसे किस व्यक्ति के साथ किया जावे जिससे कि वह कभी सुखी नही रह सके। एक दिन वह मार्ग मे किसी टीले के पास बैठा था उसने देखा कि पास ही एक साँप बिल मे से मुँह निकाले बैठा है। पुरोहित ने राजकुमारी की सगाई उसी साँप के साथ करदी और अपने गाँव आकर राजा को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा तो ऐसा ही चाहता था। अत निश्चित दिन पर राजकुमारी को वही भेजकर उस साँप के साथ उसका विवाह कर दिया गया। सभी लोग अपने घर लौट आये और राजकुमारी वही बैठी रही।

थोडी देर बाद साँप ने अपनी बहू से कहा कि वह उसकी पूँछ पकड़ लेवे और उसके पीछे-पीछे बिल मे चली आवे। राजकुमारी ने ऐसा ही किया और वह बिल मे प्रविष्ट हो गई। कुछ दूर जाने के बाद उसने देखा कि वह साँप एक सुन्दर राजकुमार के रूप मे बदल गया और वहाँ एक महल दिखलाई दिया। वे दोनो उसी महल मे चले गये। वहाँ सब प्रकार का ठाठ था। अत. राजकुमारी वहाँ आनन्द से रहने लगी।

कई वर्षो बाद घमण्डी राजा पर विपत्ति पडी और उसे प्राण लेकर अपनी राजधानी से भागना पडा। उसके साथ उसकी रानी और पुरोहित भी थे। वे चलते चलते उसी स्थान पर आ गये, जहाँ उसके दामाद सर्प का बिल था। पुरोहित ने राजा-रानी को वह स्थान दिखलाया और राजकुमारी के विवाह की चर्चा की। यह वृत्तान्त सुनकर राजा वही ठहर गया।

थोडी देर बाद उसकी पुत्री और उसका साँप-पति दोनो बिल के बाहर हवा खाने के लिये आये। उन्होने देखा कि वहाँ कुछ विपन्न लोग बैठे हुये हैं। परन्तु राजकुमारी ने जल्दी ही अपने माता पिता एव पुरोहित को पहिचान लिया और उनको बिल मे प्रवेश करवाकर राजमहल की शोभा

दिखलाई गई। उसका दामाद भी एक साँप न होकर एक राजकुमार था और उसकी बेटी का जीवन परम सुखी था। अब घमण्डी राजा की समझ मे आया कि ससार मे सब अपना अपना भाग्य भोगते है और कोई किसी के आश्रित नही है। राजा पर जो विपत्ति पडी है, वह भी उसके अपने भाग्य का ही फल है।

स्पष्ट ही इन लोककथाओ के साँप नाग जाति के लोग है जिनका जीवन साँपो के रूप मे चित्रित किया गया है परन्तु साथ ही वे मनुष्य के समान भी प्रकट हुये है। राजस्थान मे इस प्रकार की अनेक लोककथाये है। नागपचमी की कथा भारत के सभी भागो मे थोडे-थोडे भेद के साथ कही जाती है। इस व्रतकथा मे एक स्त्री के पीहर मे कोई नही है, जिससे वह दु खी रहती है। एक दिन उसे एक साँप दिखलाई देता है जो उस पर दया करता है और अपनी धर्म की बहिन या पुत्री मान लेता है। अब उस स्त्री के भी पीहर हो जाता है और उसे वहाँ से सब प्रकार की सहायता मिलती है। इस व्रत-कथा का साँप भी नाग जाति का मनुष्य ही तो है।

ऊपर देखा गया है कि लोककथाओ मे नाग चाहे जब मनुष्य बन जाता है और चाहे जब वह साँप का रूप धारण कर लेता है। राजस्थान के लोक-देवता गोगाजी के सम्बन्ध मे प्रचलित कहानियो मे भी यही चीज सामने आती है। कहा जाता है कि गोगाजी ने अपनी मौसी के बेटो को मार कर उनसे अपनी स्त्री के अपमान का बदला लिया। इस पर इनकी माता को बडा दु ख हुआ और उसने उनको कभी मुँह न दिखलाने को कहा। गोगाजी तत्काल घर से निकल गये परन्तु वे रात के समय अपनी स्त्री के पास आने लगे। एक दिन उनकी माता ने उन्हे घर मे देख लिया तो तत्काल साँप का रूप धारण करके वहाँ से निकल गये और फिर कभी लौटकर घर नही आये। इसी प्रकार एक लोककथा मे एक सेठ की पुत्रवधू के पास छिपे तौर पर आने वाला एक नवयुवक भी साँप के रूप मे लौटता हुआ पकडा जाकर मार डाला जाता है। यह सब लोककथाओ की अपनी रगत है।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थानी लोक कथाओ मे नाग के कई रूप है। कई कथाओ मे नाग एक क्रीडा मात्र है। अन्य नीतिकथाओ की तरह उस पर मानव जीवन का आरोप करके कोई शिक्षा निकालने के उद्देश्य से ऐसी कहानियो का प्रचलन हुआ है। कहानी को बालोपयोगी बनाने का यह एक सुन्दर तरीका है। इसके द्वारा सरलता पूर्वक शिक्षा दी जाती है। कई लोक कथाओ का नाग एक मनुष्य है, जो नाग जाति का सदस्य है। उसका अन्य

मनुष्यो के साथ पूरा सम्बन्ध है परन्तु साथ ही वह प्रसगानुसार साँप के रूप मे भी चित्रित किया जाता है। एक ही कथा पात्र का कीडे और मनुष्य के रूप मे चित्रित किया जाना भी कम रोचक नही है। ऐसी कहानियाँ पुराणो और अन्य कथा ग्रन्थो मे काफी है। कई लोक कथाओ का नाग देवता के रूप मे पूजा जाता है। इस प्रकार वह अलौकिक शक्ति सम्पन्न है और अतिमानव कार्य करता है। जिस प्रकार उसका क्रोध अनिष्टकारक है, उसी प्रकार उसकी कृपा एक वरदान है। कई लोक कथाओ मे नाग के ये रूप घुलमिल कर प्रकट होते हैं। इस प्रकार राजस्थानी लोककथाओ मे व्याप्त नागतत्व का अध्ययन बडा ही रोचक एव उपयोगी है।

राजस्थानी लोककथाओं में यक्षतत्व

भारतीय लोक-सस्कृति की यह बहुत वडी विशेपता है कि इसका पुण्य-प्रवाह अति प्राचीन काल से चला आ रहा हे और समय-समय पर इसमे विविध विचार धाराएँ मिलकर इसको पुष्ट एव सवल बनाती रही है। इसमे आर्य, अनार्य एव वन्य आदि विविध जन-समूहो का व्यवहार तथा जीवनतत्व मिल कर एकरस हो गया है। समयानुसार जो तत्व इसमे मिलते रहे है, कालान्तर मे वे रूपान्तरित भले ही हो गए हो परन्तु वे सर्वथा नष्ट नही हुए। यह भारतीय लोक-सस्कृति की महिमा है जो सहिष्णुता एव समन्वय पर आधारित है।

एक समय ऐसा था जव भारतीय प्रजा मे वैदिक उपासना पद्धति को अत्यधिक महत्व प्राप्त था और तदनुरूप ही यहाँ की जनता का जीवन व्यवहार था। यह स्थिति बहुत अधिक लम्वे समय तक रही। कालान्तर मे इसके साथ ही जनसाधारण मे नवीन उपासना पद्धति का भी प्रचलन हुआ जिसकी विधि मे वाद्य, पुष्प एव वलि आदि को महत्व दिया गया। जगह-जगह देवताओ के 'स्थान' बने और इन 'स्थानो' पर यक्षो की पुजा प्रचलित हुई जो नगर, ग्राम अथवा क्षेत्रो के रक्षक माने जाते थे। कुछ तो भय के कारण और कुछ मनोभिलाषाओ की पूर्ति के लिए यक्षपूजा भारतीय प्रजा के जीवन का अग वन गई। आर्य एव बौद्ध तथा जैन साहित्य मे इस सम्बन्ध मे प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। यक्षो की अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ भी मिली है। डॉ० आनन्दकुमार स्वामी ने इस विपय पर अपने 'यक्ष' नामक अग्रेजी ग्रन्थ मे विस्तृत अध्ययन

प्रस्तुत करके भारत के सास्कृतिक-इतिहास-प्रेमियो को एक अत्यन्त मूल्यवान भेट दी है। इस विपय मे डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का वक्तव्य मनन करने योग्य है—"भारतीय पुरातत्व मे जो विष्णु की सव से प्राचीन मूर्तियाँ मथुरा मे मिली है, वे यक्ष-मूर्तियो के अनुकरण पर ही बनाई गई है। बुद्ध और वोधिसत्व की मूर्तियो का मूल रूप भी यक्ष मूर्तियो से लिया गया, जैसा श्री कुमार स्वामी ने पुष्ट प्रमाणो से सिद्ध किया है। भारतीय कला मे प्राप्त अब तक की मूर्तियो मे यक्ष मूर्तियाँ और यक्षपूजा सवसे पुरानी विदित हुई है। इसी पूजा-पद्धति के सूत्रो को सग्रहीत करके लगभग मौर्य शुङ्ग-काल मे विष्णु की मूर्ति-पुजा का प्रचार हुआ।"[1]

देव लोग भारतीय आर्यो के पूर्वज थे। यक्षो को भी देव माना गया है। फलस्वरूप देवो के समान ही इनकी अलौकिक सामर्थ्य के सम्वन्ध मे भी अनेक रगीन कथाएँ जन-साधारण मे प्रचलित हो गई और लोगो ने इनको पूरे विश्वास के साथ आदर दिया। कालान्तर मे इन कथाओ मे भी परिवर्तन हुआ जो एक स्वाभाविक क्रिया है।

'राजस्थानी लोक सस्कृति की रूपरेखा' शीर्षक निवध (वरदा वर्ष २ अक ३) मे राजस्थानी जनजीवन मे व्याप्त यक्षतत्व पर विस्तार से चर्चा की गई थी। परन्तु इन लोकतत्वो को वनाए रखने मे जो लोककथाएँ आधारभूत है, उन पर उस निवन्ध मे विस्तार-भय के कारण प्रकाश नही डाला जा सका। इस लेख मे इस सम्वन्ध मे विचार किया जाता है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि राजस्थानी लोककथाओ मे यक्षतत्व एकदम स्पष्ट नही है क्योकि समयानुसार यक्षकथाओ मे भी रूपान्तर आ गया प्रतीत होता है।[2] फिर भी इस विपय के मूलतत्व राजस्थानी लोककथाओं मे अद्यावधि चले आ रहे है। जहाँ तक हो सका है, इस लेख मे सभी कथाओ को सक्षिप्त रूप मे ही प्रस्तुत किया गया है।

इस विपय मे राजस्थानी महिला समाज मे प्रचलित व्रतकथाएँ अथवा पुण्य-कथाएँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इनमे प्राचीन भारतीय जन-

---

1 द्रष्टव्य—"राजस्थान मे भागवतधर्म का प्राचीन केन्द्र मध्यमिका" शीर्षक लेख (सयुक्त राजस्थान अक्टूबर-नवम्बर १९५१)।

2 उदाहरणार्थ महाभारत मे दी गई यक्ष–युधिष्ठिर–प्रश्नोत्तरी का राजस्थानी रूपान्तर द्रष्टव्य है जिसके सम्वन्ध मे पहिले विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

जीवन के अनेक तत्व व्याप्त है। उदाहरणार्थ 'नगर वसेरो' क्रिया[1] की कहानी पर विचार किया जाता है। कहानी इस प्रकार है —

किसी गाव मे एक जाटका और एक भाटका रहते थे। जिस गाँव मे जाटके की ससुराल थी, उसी मे भाटके की वहिन विवाही गई थी। एक दिन वे दोनो उस गाव के लिए रवाना हुए। जाटका अपनी बहू को लिवाने जा रहा था और भाटका अपनी वहिन से मिलने के लिए जा रहा था। जब वे उस गाव मे प्रवेश करने लगे तो वे एक कुएँ की पाल पर ठहरे। जाटके ने अपने साथी को समझाया कि पहिले नगर बसेरे की विधि सम्पन्न करली जावे और फिर नगर प्रवेश किया जावे। भाटके ने उत्तर दिया कि उसे तो अपनी बहिन से मिलना है। जिसे अँवाई के रूप मे सम्मान करवाना है, वह नगर-बसेरे की विधि पूरी करे। इस पर जाटके ने वैसा कर लिया और भाटके ने नही किया। तदनन्तर उन्होने गाव मे प्रवेश किया।

ससुराल मे पहुचने पर जाटके का बडा सम्मान हुआ। उसे अच्छा भोजन मिला और गीत गाए गए। उधर भाटका अपनी बहिन के घर पहुँचा। उसके जाते ही घर मे आग लगी और सब लोग आग बुझाने मे लग गए। उसे भी उनके साथ काफी मेहनत करनी पडी और इस दौड धूप मे किसी ने उसको भोजन के लिए भी नही पूछा। अत वह भूखा ही रहा।

अगले दिन वे उसी कुँए की पाल पर मिले। भाटके ने अपना दुखडा रोया और साथी की सलाह से नगर-बसेरे की विधि पूरी की। इसके बाद गाव मे जाने पर उसे भी भोजन मिला। फिर वे दोनो ही अपने गाँव के लिए लौटे। गाव मे प्रवेश करने से पूर्व जाटके ने फिर एक कुएँ की पाल पर अपने साथी से नगर बसेरे की विधि सम्पन्न करने के लिए कहा। उसने उत्तर दिया कि उसके तो माता है, जो अच्छा भोजन तैयार करके प्रतीक्षा कर रही होगी। जिसके माता न होकर 'मावसी' होवे, वह ऐसा करेगा। इस पर जाटके ने

---

1 'नगर बसेरी' प्रक्रिया गाव से बाहर किसी वड-पीपल के नीचे अथवा किसी जोहड के पास की जाती है। महिलाएँ एक हाथ मे कुछ अनाज के दाने और दूसरे मे जलपात्र लेकर छोडती जाती है और इस प्रकार बोलती है—नगर वसेरो जे करै से नर धोवै पाव, ताता माडा लापसी देसी म्हारी माय, माय न देसी मावसी देसी द्वारका को नाथ, बैकुठा को वास, मीठा-मीठा गास, पोढण नै सुखवास। इन पक्तियो मे 'सुखबास' शब्द काफी पुराना है। जायसी ने भी पदमावत काव्य मे इसका कई स्थलो पर प्रयोग किया है।

नगर-वसेरे की विधि पूरी की और भाटके ने कुछ भी नही किया । फिर उन्होने अपने गाव मे प्रवेश किया ।

जाटका अपनी वहू को लेकर आया था । उसकी मावसी ने उन दोनों का वडा सम्मान किया । उधर भाटका अपने घर गया तो उसके वाप ने उसे एक लाठी दी और कहा कि पहिले वह खोई हुई भैंस को तलाश करके लावे । वेचारा तत्काल भैंस की तलाश मे निकल गया और दिन भर भटकता रहा मगर कही भी भैंस नजर नही आई । भैंस को साथ लिए विना वह अपने घर भी नही लौट सका और रात को कही पडा रहा ।

अगले दिन जाटका और भाटका फिर उसी कुएँ की पाल पर मिले । भाटके ने फिर साथी के आगे अपना दु खडा रोया । जाटके ने उससे नगर-वसेरे की विधि पूरी करवाई । इसके वाद जल्दी ही उसे अपनी भैंस मिल गई और वह घर लौट आया । अव उसकी माता ने उसके लिए भोजन तैयार किया और उसे चैन आया ।

प्राचीन काल मे प्रत्येक नगर और गाँव का अपना यक्ष देवता होता था, जिसका यह कर्त्तव्य था कि वह वस्ती के लोगो को हर प्रकार की विपत्ति से वचाए । वस्ती के लोग उसकी वडे सम्मान से पूजा करते थे क्योकि वह उनका रक्षक था । यह लोककथा उसी प्राचीन प्रथा की सूचक है । किसी नगर मे प्रवेश करने से पूर्व उस नगर के 'आरक्ष देवता' की पूजा कर लेना आवश्यक है । नगर-वसेरे की विधि मे पानी और अनाज भेट किया जाता है । यह क्रिया भी देवता को तृप्त करने की ओर सकेत करती है । राजस्थान मे यह भी रिवाज है कि गर्मी के दिनो मे (वैसाख तथा जेठ के महिने मे) साँझ के समय अनाज के कुछ दाने और जल लेकर घर के दरवाजे के सामने जमीन पर जल की एक रेखा सी वनादी जाती है और अनाज छोड दिया जाता है । यह क्रिया भी घर मे रहने वालो की रक्षा की दृष्टि से की जाती है । नगर रक्षा की तरह गृह-रक्षा का भार भी यक्ष-देवता के ही जिम्मे रहता था । इसी दृष्टि से मदिरो मे यक्ष-प्रतिमा भी स्थापित की जाती रही है ।

सामान्यता यक्ष-देवता का निवास किसी वृक्ष मे माना जाता था और वही उसकी पूजा की जाती थी । राजस्थान मे वृक्ष-पूजा का प्रचार अत्यधिक है । इस सम्वन्ध मे कुछ कहानियाँ यहाँ दी जाती है । एक कहानी 'पीपळ पथवारी' की पूजा से सम्वन्धित है, जो महिलाओ मे प्रचलित है । कहानी इस प्रकार है —

एक गूजरी गाय-भैस रखती थी और उनका दूध-दही वेचा करती थी। एक दिन उसने अपने वेटे की बहू को दूध और दही की हँडियाँ दी और उन्हे वेच आने के लिए कहा। वह आगे चली तो उसने देखा कि कुछ स्त्रियाँ पीपल मे जल सींच रही है और पथवारी (पथ की देवी) की पूजा कर रही है। कार्तिक का महीना लगा था। गूजरी ने उनसे ऐसा करने का फल पूछा तो प्रकट किया गया कि इससे धन मिलता है और सभी प्रकार का सुख मिलता है। इस पर गूजरी ने अपना दूध पीपल मे सींच दिया और दही पथवारी पर डाल दिया। इसके वाद वह अपने घर लौट आई। सास ने दूध-दही के पैसे मागे तो उसने उत्तर दिया कि सब सामान उधार मे वेचा गया है और एक मास वाद दाम मिल सकेगे। सास चुप रही।

गूजरी के वेटे की बहू ने पूरे कार्तिक मास दूध और दही पीपल तथा पथवारी मे सींचे। महीने के अन्तिम दिन उसकी सास ने दाम मागे। इस पर वह पीपल-पथवारी के 'धरने' बैठ गई। पीपल-पथवारी ने उससे ऐसा करने का कारण पूछा तो उसने सारा हाल कह सुनाया। उन्होने उत्तर दिया कि उनके पास धन तो नही है परन्तु पान-पत्ते और ककर-पत्थर पडे है, अत. वह उनको अपने घर ले जावे और 'ओबरी' मे रख देवे। उसने ऐसा ही किया और सास के डर से कपडा ओढ कर सो गई। थोडी देर बाद सास ने उससे दाम मागे तो उसने लेटे हुए ही कह दिया कि दाम 'ओबरी' मे रख दिए गए है।

सास ने 'ओबरी' देखी। वहाँ हीरे-मोती-मानिक पडे थे। उसने बहू को बुलाकर वास्तविक स्थिति पूछी तो उसने सब कुछ सच-सच बतला दिया। अब वे काफी धनी थे।

सास ने भी अगले कार्तिक मे अपने वेटे की बहू की नकल की। उसने दूध दही तो गाव के लोगो को बेच दिया और हँड्या मे पानी डाल कर उससे पीपल और पथवारी महीने भर सींचे। महीने के बाद उसने वहू से कहा कि वह उससे दूध दही के दाम मागे। उसके आदेश से बहू ने ऐसा ही किया और वह पीपल पथवारी के धरने बैठ गई। पीपल-पथवारी ने उसे भी पान-पत्ते और ककर-पत्थर ले जाने के लिए कहा। उसने उनको ले जाकर 'ओवरी' मे रख दिया। फिर उन्हे सँभाला गया तो वहाँ घिनौने कीडे पडे थे। गूजरी ने इस पर कहा कि पीपल पथवारी तो पक्षपात करने वाले है। इस पर उसे समझाया गया कि वहू ने सत से पूजा की थी और सास ने धन के लोभ से ऐसा किया था। इसी कारण उसे विपरीत फल मिला है।

इस कहानी मे गूजरी को वृक्ष के देवता की कृपा से धन प्राप्त होता है। यह पीपल का देवता भारत की पुरातन यक्ष विषयक लोकधारणा का रूपान्तर प्रतीत होता है। इसी विषय मे एक अन्य लोककथा इस प्रकार प्रचलित है —

एक बार किसी जाट के गाँव मे भयकर अकाल पडा। अत वह अपने समस्त परिवार को साथ लेकर किसी दूसरे प्रदेश की ओर रवाना हो गया। मार्ग मे रात पड गई। उन्होने एक खेत मे विश्राम किया और जो कुछ साथ था, खा पीकर सब सो रहे। दिन निकलने से काफी समय पूर्व ही वे सब उठ गए और काम मे लग गए। कोई लकडियाँ इकट्ठी करता था तो कोई 'सणिये (एक पौधा) उखाडता था और कोई उनकी रस्सी तैयार करता था। इस प्रकार जाट का पूरा परिवार काम मे जुटा हुआ था।

उस खेत के एक पेड मे एक देव रहता था। जाट के परिवार की क्रियाशीलता देखकर वह डर गया और उसने प्रत्यक्ष प्रकट होकर पूछा कि वे लोग रस्सी तैयार क्यो कर रहे है? जाट ने उत्तर दिया कि वे सब उसे बाँध कर ले जायेंगे। इस पर देव ने पूछा कि उसके छुटकारे का कोई उपाय होना चाहिए। जाट ने कहा कि यदि वह उसे काफी धन देवे तो ऐसा किया जा सकता है। इस पर देव ने कहा कि उसके पेड की जड मे काफी धन गडा हुआ है। उसे खोदकर ले लिया जावे। जाट ने ऐसा ही किया और वह काफी धनी होकर सपरिवार गाँव को लौट आया।

जाट के पडौसी ने उसका वैभव देखकर बडा आश्चर्य किया और किसी प्रकार इसका पता लगाया कि उसे इतना धन कहाँ से मिला है। इसके बाद वह पड़ौसी भी अपने पूरे परिवार को लेकर उसी खेत मे जा पहुँचा और उसी प्रकार सणिये उखाड कर रस्सी बँटने लगा। परन्तु उसके परिवार का कोई भी आदमी उसकी आज्ञा नही मान रहा था और मनमानी कर रहा था। इस पर वृक्ष का देव फिर प्रकट हुआ और उसने पहिले की तरह उससे रस्सी बँटने का कारण पूछा। देव को जाट के पडौसी ने वही उत्तर दिया जो किसी समय उसने दिया था। इस पर देव ने कहा कि जिसके अपने परिवार के लोग ही वस मे नही है, वह किसी दूसरे को अपने वश मे क्या कर सकेगा? यदि ऐसी हालत मे वे लोग उस खेत मे जरा भी ठहरे तो उनकी जीवनलीला समाप्त ही समझी जावे। देव के मुँह से ऐसा सुनते ही सब लोग डर के मारे भाग छुटे और जैसे-तैसे अपने घर आकर चैन की सास ली।

यह लोककथा अनुशासन एव सगठन की महिमा प्रकट करती है परन्तु इसका देव प्राचीन भारत की लोकधारणा के यक्ष की याद दिलाता है। कई

यज्ञ सौम्य प्रकृति के माने गए थे। वे प्रसन्न होकर धन देते थे या इच्छा पूरी कर देते थे। इसी प्रकार कई यक्ष क्रूर प्रकृति के भी माने गए थे। वृक्ष मे निवास करने वाले भूत की कल्पना भी ऐसे यज्ञ का ही रूपान्तर प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध मे निम्न राजस्थानी लोककथा विचारणीय है —

एक स्त्री अत्यन्त कर्कशा थी। उसका नियम था कि वह प्रतिदिन सुबह अपने पति के सिर मे सात जूते लगाती, तब अन्य किसी काम मे हाथ डालती। इस क्रूर व्यवहार से उसका पति तग आ गया और एक दिन उसने अपनी पत्नी के सामने 'परदेस' जाकर धन लाने का प्रस्ताव रखा। कर्कशा पत्नी ने उत्तर दिया कि उसकी अनुपस्थिति मे उसके हाथ से जूते कौन खायगा ? इस पर यह तय हुआ कि उनके आँगन मे खडे हुए एक बबूल के पेड के प्रतिदिन सात जूते लगाकर वह अपना नियम पूरा कर लिया करे। पत्नी ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया और वह अपना गाँव छोडकर दूर चला गया।

जिस पेड के वह कर्कशा स्त्री सात जूते लगाती थी, उसमे एक भूत रहता था। उस कर्कशा के जूते उस भूत के सिर पर लगने लगे और वह मार खाते खाते तग आ गया। अन्त मे एक दिन उसने प्रकट होकर कर्कशा स्त्री से अपनी रक्षा के लिए निवेदन किया। इस पर भूत को उत्तर मिला कि यदि वह अपना बचाव चाहता है, तो जूते खाने के लिए उसके पति को वहाँ ले आवे। अन्य किसी उपाय से उसकी रक्षा नही हो सकती।

वहाँ से चलकर भूत उस गाँव मे गया जहाँ उसका पति रहता था। उसने उसे घर लौट जाने के लिए कहा। कर्कशा के पति ने कहा कि वह धन कमाने के लिए घर से इतनी दूर आया है और इतने समय मे उसके कुछ पल्ले नही पडा है। ऐसी हालत मे उसका घर लौटना नही हो सकता। इस पर भूत ने उसे धन प्राप्त करने का एक उपाय बतलाया। भूत ने कहा कि वह उस नगर के राजा के सिर चढेगा और वह काफी धन लेकर राजा को ठीक कर देने के लिए तैयार हो जावे। चाहे कितने भी मन्त्रज्ञ आवे, वह भूत राजा के सिर से नही उतरेगा और जब वह आएगा तो उसे देखते ही वह भाग जाएगा। इससे उसे काफी धन मिल जायगा और फिर वह अपने घर जा सकेगा।

भूत ने जैसा कहा था वैसा ही किया और उसकी सलाह के अनुसार काम करके कर्कशा के पति ने काफी धन प्राप्त कर लिया। इसके बाद भूत तो अन्यत्र चला गया और कर्कशा के पति ने सोचा कि उसके पास काफी धन

है अतः वह चाहे जहाँ भी आनन्द से जीवन विता सकता है और घर जाकर प्रतिदिन जूते खाना सर्वथा मूर्खता है। ऐसा निश्चय करके वह भी किसी दूसरे गाँव मे जाकर रहने लगा।

कुछ समय वाद वह भूत एक अन्य राजा के सिर पर चढ वैठा। राजा के इलाज के लिए वहुत चेष्टाएँ की गई परन्तु कोई फल नही निकला। अन्त मे राज-सेवक तलाश करते हुए उस कर्कशा के पति के पास आ पहुँचे और उससे राजा को ठीक कर देने की प्रार्थना की। वह उनके साथ हो लिया और राजा के नगर मे जाकर इलाज के लिए काफी धन माँगा। उसकी शर्त स्वीकार की गई। जब वह राजा के सामने गया तो मालूम हुआ कि उस पर तो वही भूत है जिसने उसे दूसरी जगह काफी धन दिलवाया है। परन्तु भूत ने उसे देखते ही भारी क्रोध किया कि वह अभी तक अपने घर क्यो नही गया, जबकि उसे काफी धन दिलवा दिया गया है। कर्कशा के पति ने भूत को धीरे से समझाया कि वह तो उसे एक विशेष वात कहना चाहता है और वह वात यह है कि जिसके डर से वे दोनो भागे-भागे फिरते है वह कर्कशा उस समय वहाँ स्वय आ पहुँची है। अत कोई उपाय करना चाहिए। इतना सुनते ही भूत डरकर वहाँ से भाग गया और राजा ठीक हो गया। कर्कशा के पति ने अपनी बुद्धि से और भी काफी धन प्राप्त कर लिया तथा वह आनन्द से वही रहने लगा।

इस लोककथा मे प्रकट किया गया है कि मार के डर से भूत भी भागता है। प्राचीन भारत की लोकधारणा के अनुसार यक्ष लोगो के सिर भी आते थे और उनसे विविध प्रश्न पूछे जाते थे। राजस्थान मे अव भी कई देवी-देवताओ से 'बूझा' करवाई जाती है। ये देवता अपने पुजारियो के सिर आते हैं और फिर प्रश्नो के उत्तर देते हैं। इस लोककथा का भूत भी लोगो के सिर चढकर कर्कशा के पति को धन दिलवाता है। इस प्रकार वह प्राचीन काल के किसी क्रूर प्रकृतिवाले यक्ष का स्थान लिये हुए प्रतीत होता है।

इसी प्रसग मे ध्यान देने योग्य एक कहानी राजस्थान मे और भी प्रचलित है। कहा जाता है कि केलडी अथवा केलणियो नामक गाँव के जोहड के वृक्ष मे एक भूत रहता था। वह आने जाने वालो की लोगो सहायता करता था और उनसे तम्वाखू का पान (एक वार चिलम मे भरी जाय इतनी तम्वाखू) माँगता था। एक वार उस स्थान पर एक अकाल-पीडित ब्राह्मण परिवार आया। भूत को उस परिवार पर दया आई और उसने ब्राह्मण की हालत सुधारने का उसे उपाय वतला दिया। भूत अपनी सीमा (काकड) छोडकर नही जा सकता

था। अत ब्राह्मण ने उसे एक 'लोट' (जल रखने का विशेष प्रकार का मिट्टी का पात्र) मे रख लिया और वह चल पडा। आगे एक नगर मे भूत को 'लोट' मे से निकाल दिया गया और वह एक धनी सेठ के सिर पर चढ गया। उस सेठ के लडको ने अपने पिता के सिर से भूत को उतारने के लिए काफी उपाय किया परन्तु कोई फल नही निकला। अन्त मे भूत की दी हुई सलाह के अनुसार उस ब्राह्मण ने काफी धन लेकर उस सेठ के सिर से उसे उतार दिया। इसके बाद काफी धनी होकर वह ब्राह्मण अपने घर की ओर चला और साथ मे भूत को भी पहले की तरह 'लोट' मे बन्द करके ले लिया। कुछ दूर चलने पर ब्राह्मण के दिल मे दगा पैदा हुआ और उसने उपकारी भूत को लोट सहित जमीन मे गाड दिया। इस परिस्थिति मे भूत का कोई जोर नही चला परन्तु उसने ब्राह्मण को 'सर्वनाश' का शाप दिया, जो आगे चलकर फलित हुआ।

इस लोककथा का भूत अच्छी प्रकृति का है। वह वृक्ष मे निवास करता है और अपनी सीमा मे रहता है। वह मनुष्य के सिर भी चढता है। ये सब लक्षण प्राचीन कथाओ के यक्ष की याद दिलाते है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इन कथाओ का भूत एक मनुष्य के आगे कमजोर पड गया है।

राजस्थानी महिला समाज मे 'विनायक' सम्बन्धी कथाओ को विशेष रूप से महत्त्व प्राप्त है। प्रत्येक व्रतकथा के अन्त मे विनायक की कहानी कहने या सुनने का एक नियम सा है और इस विषय मे अनेक लोककथाएँ प्रचलित है।

प्राचीन भारत मे यक्षो की मूर्तियाँ बनाई जाती थी। वे कद मे नाटे, तोद वाले तथा हाथी जैसे कानो वाले दिखलाए जाते थे। कई विद्वानो का अनुमान है कि कालान्तर मे जो गणेश की प्रतिमाएँ बनाई गई, उनकी रचना मे प्राचीन यक्ष मूर्तियो का स्पष्ट प्रभाव है। राजस्थान मे प्रचलित विनायक की कहानियो में तो प्राचीन यक्ष-कथाओ के लक्षण स्पष्ट ही प्रकट है।

सर्व प्रथम महिला समाज मे प्रचलित विनायक की स्तुति दी जाती है—

म्हारा विनायकजी स्याणा।
ल्यावै धन का बाणा॥
म्हारा विनायकजी भोळा।
भरै धन सै झोळा॥
म्हारा विनायकजी सूधा।
कर दे धन का कूढा॥

म्हारा विनायकजी दादा ।
ल्यावै धन का गाडा ।।
विनायक बावो रगो चगो ।
भरी वाडी मे फिरै सुरगो ।।
राणी ध्यावै राज नै ।
म्हे ध्यावा म्हारै काज नै ।।
राणी को राज बधतो जावो ।
म्हारो कारज सधतो जावो ।।
पोता भू की राबडी, दोयता भू की खीर ।।
मीठी लागै राबडी, खाटी लागै खीर ।।
घर साकडो देई ।
पथ मोकळो देई ।।

इन सीधे साधे शब्दो मे विनायक से धन एव परिवार की वृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है ।[1] पारिवारिक मगलकामना भारतीय महिला के प्राणो का प्रधान स्वर है । इसकी प्राप्ति के लिए अनेक लोक-देवताओ की पूजा की जाती है । इनमे विघ्नहर्ता विनायक प्रमुख है जिनमे प्राचीन आरक्षदेवता यक्ष का लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट है ।

विनायक देवता की एक कहानी मे एक ब्राह्मण उनकी उपासना मे लीन रहता है । उसकी स्त्री को ऐसा करना अच्छा नही लगता है । अत एक दिन जब वह ब्राह्मण गगा नहाने के लिए घर से निकलता है, तब वह पीछे से विनायक की मूर्ति छिपा देती है । घर लौटने पर ब्राह्मण को देवता की प्रतिमा नही मिलती तो वह अनशन धारण करके बैठ जाता है । इस पर पति पत्नी मे झगडा होता है । और विनायक की मूर्ति ऐसा होते देखकर हँसती है तथा उनको धन धान्य से सम्पन्न कर देती है ।

एक अन्य कहानी मे एक मेढकी विनायक का ध्यान करती है और उसके ऐसा करने से उसका पति नाराज होता है । फल यह होता है कि राजा की दासी उसी समय तालाब पर पानी लेने आती है और उन दोनो को पानी के साथ घडे मे डाल कर अपने घर ले आती है । फिर वह घडा आग पर चढा दिया जाता है । अब मेढक घबराता है और अपनी स्त्री से कहता है, कि वह विनायक को स्मरण करे ताकि उनके प्राण बचे । मेढकी ऐसा करती है और

---

1 यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसा । (गीता १७/४)

उधर से दो साँड लडते हुए आते है, जिनके सीगो से वह घडा फूट जाता है। इस प्रकार मेढक-दम्पत्ति प्राण बचाकर वापिस तालाव मे आ जाते है।

एक अन्य कहानी मे एक छोटा सा बालक चम्मच मे जरा सा दूध और चुटकी मे थोडे से चावल लेकर यह कहता हुआ घर घर घूमता है कि कोई उसे खीर बना देवे। इस पर सब हँसते है परन्तु अन्त मे एक बुढिया बालक को खीर बना देने के लिए हाँ करती है। बालक ने जरा से सामान से बुढिया का वडा भारी वर्तन खीर से भर जाता है। बालक किसी काम से बाहर जाता है और पीछे से बुढिया विनायक को स्मरण करके भोग लगाती है और खीर खाने लगती है। इसके बाद वह बालक घर मे आता है तो बुढिया उसे भोजन करने के लिए कहती है। बालक उत्तर देता है कि उसको तो बुढिया ने पहिले ही भोजन करवा दिया है। अब पता चलता है कि वह विनायक है। इस पर विनायक उस बुढिया का घर हर प्रकार से सम्पन्न कर देते है।

एक अन्य कहानी मे एक लडका इस निश्चय को लेकर अपने घर से निकल जाता है कि वह विनायक के दर्शन करके ही वापस लौटेगा। इस पर जगल मे बूढे ब्राह्मण के रूप मे विनायक उसे दर्शन देते है और उसे सब प्रकार से सम्पन्न करके अपने घर वापिस भेज देते है।

एक अन्य कहानी मे एक सेठ की स्त्री चौथ-विनायक की मनौती मान कर पुत्र प्राप्त करती है परन्तु फिर वह मनौती पूरी नही करती। लडका बडा हो जाता है और उसका विवाह निश्चित हो जाता है। चौथ विनायक उस लडके को भाँवर पडने के समय उठा कर ले जाते है और वह पीपल की डाली पर बिठा देते हैं। इस प्रकार विवाह के रग मे भग हो जाता है। इसके बाद जब वह दुलहिन 'गणगौर' की पूजा के लिए दूब लाने जाती है तो उसे अपना दुलहा दिखलाई देता है और फिर मनौती पूरी करके उसे घर लाया जाता है।

एक अन्य कहानी मे एक लडकी अपनी माँ से हठ करती है कि वह विनायक के मेले मे अवश्य जाएगी। उसकी माता मेले की भीड-भाड से डरती है परन्तु लडकी अपना हठ नही छोडती। इस पर उसकी माँ चूरमे के दो लड्डू बनाकर उसे दे देती है और कहती है कि उनमे से एक लड्डू विनायक को खिला दिया जावे और दूसरा वह स्वय खा लेवे। मेले मे जाकर लडकी विनायक के सामने खाने के लिए लड्डू रखती है और जब तक वह लड्डू प्रत्यक्ष रूप मे खा न लिया जावे वह वहाँ से उठती ही नही। उसका दृढ

आग्रह देख कर विनायक प्रकट होते हैं और लड्डू खा लेते है। फिर वे लडकी को हर प्रकार से सम्पन्न करके अपने घर लौटा देते है।

ऊपर राजस्थानी महिला-समाज मे कही जाने वाली थोडी सी विनायक सम्बन्धी कहानियो का साराश मात्र दिया गया है। इस विषय की और भी अनेक कहानियाँ हैं। इन कहानियो का विनायक देवता प्राचीन यक्षो का स्मरण करवा देता है। कथाओ के अनुसार यक्ष पुरुष प्रकृति वाले देव होते थे। वे अपने उपासको की रक्षा करते थे और उनकी मनोकामना पूरी करते थे। ऊपर दी गई विनायक सम्बन्धी कहानियो मे ऐसा ही हुआ है। जो व्यक्ति अपने वचन से फिरता था, उसे यक्ष देवता मार्ग पर भी लाते थे। ऊपर दी हुई एक कहानी मे विनायक भी ऐसा ही करते है। वे मनौती पूरी न किए जाने के कारण एक दुलहे को भाँवर के समय उठा कर पीपल पर ला छिपाते है और मनौती पूरी होने पर ही उसे छोडते है। वड-पीपल आदि वृक्षो मे तो यक्षो का आवास माना ही जाता था। यही स्थिति इस कहानी के विनायक की है। प्राचीन काल मे विशिष्ट यक्षो के स्थान पर लोग दूर-दूर से पूजा करने के लिए आते थे। विशेष अवसरो पर ऐसे स्थानो पर जनसमह एकत्रित हो जाता था। प्राचीन लोक-भाषा मे इसको 'जत्त' कहा गया है जिसका वर्तमान विकसित रूप 'जात' है। राजस्थान मे देवी देवताओ की 'जात देने' का अत्यधिक प्रचार है। ऊपर दी गई एक कहानी मे एक लडकी विनायक के मेले मे हठ करके जाती है। यह कहानी बौद्धकालीन भारतीय जनजीवन का चित्र प्रस्तुत करती है जो विशेष रूप से विचारणीय है।

यक्ष का एक नाम ब्रह्म है। इसी प्रकार उसके लिए जनसाधारण मे 'वीर' नाम भी प्रचलित हे। महावीर हनुमान् के पूजा विधान आदि मे प्राचीन यक्ष के लक्षण प्रकट है। राजस्थान मे प्रत्येक गाँव मे कुएँ के पास हनुमान का स्थान' होता है। किसी वृक्ष के ऊपर लाल ध्वजा फहरा दी जाती है और उसके नीचे एक चबूतरा सा बना दिया जाता है। हनुमान का यह 'स्थान' प्राचीन भारत के यक्ष के स्थान की याद दिलाता है। हनुमान आरक्ष देवता है। साथ ही यह देवता अपने पुजारी के सिर भी आता है और उसकी 'बूझा' भी करवाई जाती है। उसका भोग सामान्यतया रोट का चूरमा है। ये सब चीजे स्पष्ट ही यक्ष देवता का स्मरण करवा देती है। इस विषय मे भी एक कहानी प्रस्तुत की जाती है, जो राजस्थानी महिला-समाज मे प्रचलित है—

एक सेठानी प्रतिदिन हनुमान के मन्दिर मे जाकर एक रोटी और चूरमे का लड्डु चढाती थी तथा निवेदन करती थी कि जो कुछ वह जवानी मे भेट करती है, वह उसे बुढापे मे दिया जावे। उसका यह क्रम काफी लम्वे समय तक चला। अन्त मे उसके घर मे वेटे की वहू आ गई। उसने घर पर पूरा अधिकार जमा लिया और अपनी सास को मन्दिर जाने से रोक दिया। सास अव वूढी हो चली थी। उसने अपना नियम नही तोडा। फल यह हुआ कि उसे घर से निकाल दिया गया।

घर से दूर होकर बुढिया हनुमान के आसरे वैठ गई। हनुमान उसे प्रतिदिन रोटी और चूरमा देने लगे। इस प्रकार उसे कोई कष्ट नही था। उधर वहू के घर मे वुरी तरह घाटा लग गया और भारी विपत्ति मे फँस गई। ऐसी हालत मे वह अपनी सास के पास आई और देखा कि वुढिया तो आनन्द मे है। अव वहू को अपनी भूल ज्ञात हुई। वह जैसे तैसे अपनी सास को घर ले गई और हनुमान की कृपा से वे लोग फिर सम्पन्न हो गए।

हनुमान विषयक इस कहानी मे और ऊपर दी गई विनायक सम्वन्धी कहानियो मे कोई अन्तर नही है। ये सभी कहानियाँ लगभग एक ही श्रेणी की है। किसी समय जो कहानियाँ भारतीय प्रजा मे यक्षो के विषय मे प्रचलित थी, वे ही कालान्तर मे उसी प्रकार के अन्य देवताओ से सम्वन्धित हो गई प्रतीत होती है। इन सभी कहानियो के अन्तर्भूत तत्व समान ही है। इस विषय मे एक उदाहरण और भी प्रस्तुत किया जाता है। राजस्थान मे भैरू जी (भैरव) की पूजा विशेष रूप से की जाती है। भैरू जी की 'जात' दी जाती है और उनका 'वूझा' भी करवाया जाता है। भैरू जी भी आरक्ष देवता है। उनको वलि एव 'वाकला' (उवाले हुए मोठ) तथा तेल भेट किए जाते है। ये सव चीजे प्राचीन यक्ष-पूजा की याद दिलाती है। इस सम्वन्ध मे एक लोक-कथा भी प्रस्तुत की जाती है जो सार रूप मे इस प्रकार है :—

एक किसान के चार वेटे थे। उनमे सवसे छोटे का नाम 'रलो' था। वह कुछ भोले स्वभाव का था। उसकी भाभिया उससे ईर्ष्या करती थी। एक वार उन सवने मिल कर कुचक्र रचा और 'रले' को घर से हिस्सा देकर अलग कर दिया। उसके माता-पिता मर चुके थे। अत उसे अपने हिस्से मे एक फूटा हुआ मकान और थोडी सी जमीन खेती के लिए मिली। बेचारा 'रला' उसी मकान मे अपनी स्त्री को लेकर चला गया।

दूसरे दिन 'रला' अपने खेत मे गया। वह बहुत ही छोटा था। वहा एक पेड के नीचे भैरू जी का चवूतरा वना हुआ था। रले ने उसे तोडना शुरू किया। इतने मे ही पेड मे से आवाज आई कि वह ऐसा न करे। उसका

सारा सकट भैरूजी स्वय मिटा देगे । रला ठहर गया । उसने भैरू जी के आदेश से अपने खेत को बोया । उसके खेत मे बहुत अनाज पैदा हुआ । अब उसको कोई तगी न थी ।

रले की अच्छी हालत देख कर उसकी भाभिया जल उठी। एक दिन जब रला और उसकी स्त्री खेत मे गए हुए थे, पीछे से उसके घर मे आग लगा दी गई। घर जल गया। जब रला लौट कर घर आया तो वहाँ राख का ढेर मिला। वह उसी समय भैरू जी के चबूतरे के पास गया और उसकी फेरी देने लगा। भैरू जी ने उसे फिर आदेश दिया कि वह सारी राख अपने पाडे (भैसे) पर लाद कर उस गाँव से निकल जावे। फिर सब ठीक हो जाएगा। रले ने ऐसा ही किया और राख को अपने पाडे पर लाद कर वह गाव से चल पडा।

रले को मार्ग मे एक सेठ-सेठानी पैदल जाते हुए मिले। सेठ के पूछने पर रले ने प्रकट किया कि उसके पाडे पर केशर कस्तुरी लदी हुई है। सेठानी चलते-चलते थक गई थी। सेठ ने रळे से कहा कि उसकी पत्नी को पाडे पर बिठा लिया जावे। रले ने उसे इस शर्त पर पाडे पर बिठाया कि यदि उसका माल बिगड़ जाएगा तो वह पूरा दाम लेगा। अन्त मे उसका माल तो बिगडना था ही। अत उसने सेठ से काफी रुपए लिए और मालदार होकर घर आ गया। रले की भाभियो ने यह हाल सुनकर अपने घर भी जला डाले और उस राख को बेचने के लिए उपक्रम किया परन्तु उनके पल्ले क्या पडना था ? वे रोकर रह गई।

इसके बाद रळे को तग करने के लिए उसका पाडा मार डाला गया। भैरू जी के आदेश से उसने अपने पाडे की खाल कढवाई और उसे बेचने के लिए गाँव से बाहर ले गया। मार्ग मे रात पड गई और वह एक पेड पर खाल सहित बैठ गया। वहाँ काफी धन लेकर चोर आए। रले ने उन पर खाल डाल दी और चोर धन छोड कर भाग गए। रळा सारा धन लेकर घर आ गया। इस वृत्तान्त को सुनकर रळे की भाभियो ने भी अपने पाडे मार डाले और उनकी खाल से धन प्राप्त करने का उपक्रम किया परन्तु फल कुछ भी नही हुआ।

अब की बार रळे को बाध कर कुए मे डालने का षडयन्त्र रचा गया और तदनुसार उसे बाध भी लिया गया। उसके भाई उसे कुए मे डालने के लिए जगल मे ले चले। उसने फिर भैरू जी को याद किया। उनकी कृपा से सयोग ऐसा हुआ कि रळ के भाई उसे बधा हुआ छोड कर विश्राम के लिए एक जगह दूर बैठ गए। इतने मे ही एक रैबारी (ऊँट चराने वाला) अपना

टोळा (ऊँटों का समूह) लेकर वहाँ आया। उसने रळे को देखकर पूरा हाल पूछा। रळे ने प्रकट किया कि उसका विवाह हो चुका है और उसके भाई उसका एक विवाह और अरना चाहते है परन्तु वह इसके लिए तैयार नही है, अत उसे बाध कर ले जाया जा रहा है। रैवारी कँवारा था। वह रळे के स्थान पर बध गया और रला उसका टोळा लेकर आ गया। पीछे से विवाह का भूखा रैवारी कुएँ मे पटक दिया गया।

अब भी रळा नही मरा। उसने प्रकट किया कि उसे पत्थर साथ मे बाध कर कुँए मे नही टाला गया, अत ऊँटो का टोळा ही मिला। अगर साथ मे पत्थर बाँधकर कुएँ मे डाला जाता तो हाथियो का समूह मिलता। रळे की भाभिओ ने इस बात को सच मान लिया। उन्होने अपने-अपने घरवालो को इस प्रकार कुएँ मे गिरने के लिए कहा। उन्होने उत्तर दिया कि अब तक का उनका कहा हुआ सारा काम वे करते रहे है और यह काम वे स्वय (स्त्रियाँ) करे। भैरू जी ने उनकी बुद्धि फेर दी और वे कुएँ मे गिरने के लिए तैयार हो गई। ऐसा ही किया गया मगर मिलने को क्या था। अब चारो भाई मिलकर प्रेम से रहने लगे।

इस लोककथा के भैरू जी ने यक्ष का स्थान लिया है। कथा का सम्पूर्ण सूत्र-सचालन मानो वे ही अप्रत्यक्ष रूप से कर रहे है।

यक्षिणी सिद्ध करने सम्बन्धी लोक विश्वास भारतीय जनसाधारण मे अब भी मौजूद है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो व्यक्ति यक्षिणी सिद्ध कर लेता है, वह उसकी सहायता से असम्भव कार्य भी सम्भव कर दिखलाता है। जायसी विरचित पदमावत काव्य मे राघवचेतन को यक्षिणी सिद्ध थी जिससे उसने अमावस्या के दिन द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन करवा दिया।[1] राजस्थान मे भी ऐसी सिद्धि प्रकट करने वाली लोककथाएँ प्रचलित है। आगे एक ऐसी कथा दी जाती है—

किसी राजा के नियम था कि वह अपने पण्डित के हाथ से भगवान का चरणामृत लेकर ही भोजन करता था। एक बार किसी कारणवश राजा अपने पण्डित से ऐसा नाराज हुआ कि उसने ब्राह्मण मात्र के हाथ से चरणामृत न लेने की शपथ ले ली। इससे पण्डित को बडा दु ख हुआ और वह घर आकर अपना जीवन ही समाप्त कर देने का विचार करने लगा।

---

1 राघौ पूजा जाखिनी, दुइज देखावा साँझ।
पथ गरथ न जे चलहिं, ते भूलहि बन माझ।। (४४७/३८/२)

पण्डित के तीन पुत्र थे। वे उस समय दूर देश मे गए हुए थे। पण्डित ने अपने पुत्रो को मिलने के लिए बुलवाया। उनमे से सबसे बडा लडका पहले पहुँचा। उसे सारी स्थिति बतलादी गई। इस पर लडके ने अपने पिता से कहा कि उसने ऐसी सिद्धि प्राप्त करली है कि राजा को उसकी बात माननी पडेगी और वह सीधा राजसभा मे आ गया। राजा ने उसे पहिचान लिया और उचित आसन दिया। उस दिन अमावस्या थी और किसी अनुष्ठान के लिए और भी कई पण्डित आए हुए थे। पण्डित के लडके ने राजा से सब हाल सुनकर कहा कि उस दिन अमावस्या नही है और पूर्णिमा है। सभी पण्डित ऐसा सुनकर चकित हो गए। अन्त मे अपनी सिद्धि के बल से लडके ने उस रात पूर्णिमा का चन्द्रमा दिखला दिया। इस पर राजा उसकी सिद्धि से बडा प्रभावित हुआ और उसने उसका शिष्य बनना स्वीकार किया। लडके ने कहा कि पहिले उसके हाथ से राजा चरणामृत लेवे, फिर उसे शिष्य बनाया जा सकता है। परन्तु ऐसा करने के लिए राजा तैयार नही हुआ और पण्डित का लडका अपने घर लौट आया।

इसके बाद पण्डित का दूसरा लडका घर पहुँचा। वह भी सारी बातें सुनकर राजा से मिलने चला। उसने मार्ग मे माया की एक स्त्री बनाकर साथ ले ली और फिर वे दोनो राजसभा मे पहुँचे। राजा ने उसे भी पहिचान लिया और उचित सम्मान दिया। लडके ने राजा से कहा कि उसे दानवो के युद्ध मे देवो की सहायता के लिए स्वर्ग जाना है, अतः कुछ समय के लिए राजा उसकी स्त्री की रक्षा का भार सम्भाल लेवे। राजा ने लडके की बात मानकर उसके साथ की स्त्री को ससम्मान महल मे भिजवा दिया और वह लडका कच्चे सूत के सहारे आकाश मे चढ गया। परन्तु थोडी देर बाद उसके शरीर के समस्त अङ्ग कट कर राजसभा मे आ गिरे और उसकी स्त्री यह समाचार सुनकर वही उसके साथ सती हो गई। राजा बडा उदास था। इतने मे ही उसी कच्चे सूत के सहारे पण्डित का लडका नीचे उतर आया और राजा से उसने अपनी स्त्री माँगी। सारी सभा चकित हो गई। उसे पीछे का वृत्तान्त सुनाया गया, मगर उसने महल की एक कोठरी मे से अपनी उसी स्त्री को निकाल कर सबको दिखला दिया। पण्डित के दूसरे लडके की सिद्धि देखकर राजा और भी चकित हुआ और उसने उसका शिष्य बनना चाहा। परन्तु उसके हाथ से भी राजा ने चरणामृत लेना स्वीकार नही किया और यह लडका भी घर लौट आया।

अन्त मे पण्डित का सबसे छोटा लडका घर पहुँचा। उसने सारा

वृत्तान्त सुनकर कहा कि राजा तो चीज ही क्या है, उसके पुरखे भी प्रकट होकर उसके हाथ से चरणामृत लेने के लिए लालायित हो जाएगे। ऐसा कह कर पण्डित का लडका राजसभा मे आया। राजा ने उसका भी उचित सम्मान किया। लडके ने प्रकट किया कि जल्दी ही महाप्रलय होने वाला है, अत सब लोग भगवान का भजन प्रारम्भ कर देवे। इस सूचना से सभी लोग घबरा गए। इतने मे ही भयकर बाढ आई और चारो तरफ अपार जलराशि छा गई। राजा दौडकर अपने महल की छत पर चढ गया। पण्डित का लडका उसके साथ था। पानी की सतह महल की छत तक पहुँच गई और राजा की छाती तक पानी आ गया। इस समय राजा ने पण्डित के लडके से रक्षा का कोई उपाय करने के लिए प्रार्थना की। लडके ने कहा कि उसके हाथ से राजा चरणामृत ग्रहण कर लेवे तो प्राणरक्षा हो सकती है। राजा ने ऐसा करना स्वीकार नही किया और पानी उसके निचले होठ तक चढ आया। अब राजा ने अपना हठ छोडा और कहा कि उसे शीघ्र ही चरणामृत दिया जावे क्योकि पानी सिर तक चढ जायगा। तो फिर शेष क्या बचेगा! पण्डित के लडके ने अपने हाथ से उसे चरणामृत दिया और राजा ने उसे पी लिया। धीरे-धीरे समस्त बाढ उतर गई और सब कुछ पूर्ववत् दिखलाई देने लगा। इस प्रकार पण्डित के सबसे छोटे बेटे की सिद्धि से सफलता प्राप्त हुई और बूढा पण्डित फिर से राजसभा मे गौरव के साथ उपस्थित हुआ।

कहना न होगा कि इस एक लोककथा मे तीन कहानियाँ मिली हुई है परन्तु वे तीनो ही विशेष प्रकार की सिद्धि की सफलता प्रकट करती है। इनमे पण्डित के सबसे छोटे लडके की सिद्धि विशिष्ट है। पहली कथा तो राघव-चेतन की कहानी का ही दूसरा रूप है। दूसरी कहानी राजा विक्रमादित्य या भोज के सम्बन्ध मे भी कही जाती है और अत्यधिक जनप्रिय है। तीसरी कहानी मे राजहठ चरम सीमा पर दिखलाया गया है और वह एक राजस्थानी कहावत का आधार भी है। कहावत है, "पाणी सिर पर कै फिरचा पछै के है?" परन्तु इन सभी कहानियो मे सिद्धि की सामर्थ्य दिखलाई गई है जो राघवचेतन का सा गुणगौरव सामने ला देती है। यह सब यक्षिणी सिद्ध कर लेने सम्बन्धी लोकविश्वास की महिमा है।

ऊपर कहा गया है कि यक्ष का नाम 'वीर' भी है। लोककथाओ मे महाराजा विक्रमादित्य के वीर प्रसिद्ध है। इन वीरो की सहायता से महाराजा के अनेक अनहोने काम सिद्ध हुए है। अणबोलदे राजकुमारी का मौनभग

महाराजा ने अपने बीरो की सहायता से करवाया था ![1] इसी प्रकार अनेक लोककथाओ के नायक राजा रिसालू के बीर प्रसिद्ध है। उसने भी अपने बीरो की सहायता से अनेक राजकुमारियो की विवाह सम्बन्धी शर्ते तुडवाई है। इनके अतिरिक्त और भी कई लोककथाओ मे कथानायक को 'बीरो' की परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष सहायता प्राप्त हुई है। आगे इस विषय मे एक लोककथा प्रस्तुत की जाती है —

किसी गाँव मे एक बनिया रहता था। उसके खेती का धन्धा था। कुछ वर्षों बाद उसने इहलीला सवरण करली। पीछे एक बडा लडका और उसकी स्त्री थी। एक छोटा लडका भी था। इनकी माता पहिले ही गुजर चुकी थी। घर का मालिक बडा लडका बना। उसकी स्त्री का स्वभाव अत्यन्त कठोर था। वह देवर से खेत का काम करवाती थी और साधारण खाना कपडा देती थी।

एक दिन लडका खेत पर काम करके साझ पडे घर लौटा। आज वह एक कटोरा खेत मे ही भूल आया। इसी कटोरे मे उसे भोजन दिया जाता था। भाभी ने उसे कहा कि यदि वह भोजन चाहता है तो पहिले खेत जाकर वहाँ से अपना कटोरा लावे। बेचारा लडका फिर खेत के लिए चल पडा। रात पड चुकी थी। लडके ने अपने खेत मे जाकर देखा कि कुछ अपरिचित व्यक्ति उसके खेत से अनाज के पौधे उखाड कर पास वाले जाट के खेत मे उन्हे लगा रहे है। उसने भयभीत होकर उनका परिचय पूछा। इस पर उसे उत्तर मिला कि वे जाट के दिन' (अर्थात् सौभाग्य) के, वशवर्ती 'बीर' है और उसके लिए परोक्ष रूप से काम कर रहे है। इस पर लडके को कुछ हिम्मत आई और उसने बीरो से फिर पूछा कि उसका 'दिन' कहाँ है ? इस पर उसको उत्तर मिला कि उसका 'दिन' बहुत दूर समुद्र पार एक विशेष स्थान पर सोया हुआ है। इतना सुनकर लडके ने अपने घर का ध्यान छोड दिया और उस स्थान की ओर चल पडा' जहाँ उसका 'दिन' सोया हुआ बतलाया गया था।

मार्ग मे अनेक कष्ट सहता हुआ और विविध सकटो पर विजय प्राप्त करता हुआ बनिए का लडका समुद्र पार उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ उसका 'दिन' सो रहा था। वहाँ उसे एक जगल मे एक पेड के नीचे एक व्यक्ति सोता हुआ मिला। लडके ने उसे धीरे से जगाया। सोने वाले ने उठ कर लडके को गले लगा लिया और उसे समझाया कि वह राजा से उस क्षेत्र को खेती के

---

1 इस विषय मे विस्तृत जानकारी के लिए वरदा वर्ष ३ अक २ मे लेखक का 'अणबोलदे अथवा चौबोली' शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

लिए लगान पर ले लेवे । लडके ने तदनुसार कार्य किया और विस्तृत क्षेत्र अपने नाम से लगान पर लिखवा लिया । राजा इससे परम प्रसन्न हुआ ।

लडके ने जो क्षेत्र अपने लिए राजा से प्राप्त किया था, वह खेती के योग्य नही था और न उसके पास खेती करने का कोई साधन ही था । परन्तु वह तो अपने 'दिन' की आज्ञानुसार कार्य करता था । उसे आज्ञा मिली कि वह खेत की जमीन साफ करने का कार्य प्रारम्भ कर देवे । लडके ने ऐसा करना शुरु कर दिया । तब उसने देखा कि सैकडो अपरिचित व्यक्ति उस क्षेत्र की जमीन साफ करने मे जुटे हुए है । इस समय उसे अपने गाँव के खेत का दृश्य याद आ गया जहाँ उसने रात को काम करने वाले जाट के 'वीरो' को देखा था । जल्दी ही खेत की जमीन साफ हो गई । अगले दिन लडके ने कही से हल बैल आदि प्राप्त किये और खेत को जोतना प्रारम्भ कर दिया । जिस प्रकार खेत की जमीन साफ हुई थी, उसी प्रकार उसकी पूरी जुताई भी हो गई । इसी प्रकार उसकी सिंचाई तथा कटाई हुई और समय पर उस खेत मे इतनी अधिक उपज हुई कि उसे रखने के लिए बहुत बडे मकान की कमी प्रतीत होने लगी लडके ने अपने 'दिन' की आज्ञानुसार मकान बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया और कुछ ही समय मे वहाँ बहुत बडा भवन बन कर तैयार हो गया । लडका उस भवन मे बडे ठाठ से रहने लगा ।

थोडे ही वर्षो मे वह बनिये का लडका वहाँ का एक बडा सेठ बन गया । एक दूसरे सेठ ने उसका वैभव देखकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया । वहाँ के राजा ने भी उसका बडा सम्मान किया । सोया हुआ दिन' जागने से ऐसा ही होता है ।

इस राजस्थानी लोककथा के अनेक रूपान्तर राजस्थान मे प्रचलित है, जिन सब मे थोडा-थोडा अन्तर भी है । यह कथा भारत के उस युग के जनजीवन की याद दिलाती है, जब यहाँ के लोग व्यापार के लिए समुद्र पार जाकर अतुल धनराशि सचित करते थे और परिस्थिति के अनुसार या तो वही बस जाते थे या अर्थ सम्पन्न होकर अपने देश लौट आते थे । फिर भी इस कथा मे समाया हुआ यक्ष तत्त्व विशेप रूप से ध्यान देने योग्य है । कथा-नायक की पूरी सफलता 'वीरो' की क्रिया-शीलता पर निर्भर है । ऐसी स्थिति मे कथा के इस प्रधान तत्त्व को भुलाया नही जा सकता । बगाल मे 'क्षेत्रपाल' के सम्बन्ध मे एक लोककथा है । उसमे एक विधवा को छोटा बालक खेतो मे मजदूरी करने जाता है और इसी मे उन दोनो का जीवन-यापन होता है । वहाँ का राजा उदार है, अत माता अपने बेटे का खेती के लिए कुछ जमीन प्राप्त करने के लिए उसके पास भेजती है । राजा उस छोटे बालक से कहता है,

"जितनी-जमीन तुम एक दिन मे गोड सकोगे उतनी ही तुम्हारी हो जायगी।" इस पर वालक खेती की जमीन गोडने लगता है तो उसे दो अपरिचित व्यक्ति दिखलाई देते है। लडका उनसे परिचय पूछता है तो उसे पता चलता है कि वे दोनो भाई 'क्षेत्रपाल' है और उस वालक की सहायता के लिए ही वहाँ प्रकट हुए है। वालक एक दिन मे कितनी जमीन गोड सकता था? परन्तु देवो ने उसका काम अपने हाथो मे ले लिया और वहाँ विस्तृत क्षेत्र के गोडने का काम पूरा हो गया। देवो ने वालक को समझा दिया कि यदि राजा उससे कुछ भी पूछे तो वह सही वात प्रकट कर देवे।

अगले दिन राजा ने वालक को अपने पास वुलवाया और इतनी अधिक जमीन एक दिन मे गोड दिए जाने का रहस्य पूछा। वालक ने राजा को सव कुछ सच-सच वतला दिया। राजा ने प्रसन्न होकर वह सारा क्षेत्र वालक को प्रदान कर दिया और कहानी सुनकर वहाँ के सव लोग खेत के देवो की पूजा करने लगे।[7]

कहना न होगा की वगाल की क्षेत्रपाल विषयक लोककथा का मूल तत्त्व ऊपर दी गई राजस्थानी लोककथा से मिलता है और काफी अश मे ये दोनो कथाएँ समान ही हैं। दोनो कथाओं के नायक दयनीय स्थिति मे है और खेत के देव उनका काम स्वय करके उनको सम्पन्न वना देते है। सम्भव है कि ये दोनो कथाएँ किसी एक ही प्राचीन कथा के दो परिवर्तित रूप हो जो भारतीय लोकसस्कृति के एकात्म्यभाव को प्रदर्शित करती हुई अद्यावधि लोकमुख पर अवस्थित हैं। खेत की रक्षा करने वाला यह देवता प्राचीन भारत का यक्ष ही है। वगाल की कथा मे तदनुसार श्रद्धा का वातावरण मौजूद है जव कि राजस्थान की कहानी से वह तिरोहित हो गया है।

रास्थान की जनता मे 'पीरपूजा' का भी कम प्रकार नही है। 'पीर' शब्द का पूर्णतया राजस्थानीकरण हो गया है और यह यहाँ के जनजीवन का अग वन चुका है। वे सन्त-महात्मा जो अपने जीवनकाल मे या मरणोत्तर जीवन मे चमत्कार दिखलाते है उन पर लोकविश्वास जम जाता है और वे 'पीर' के रूप मे पूजे जाते है। इसी प्रकार जो योद्धा सत्य की रक्षा मे जूझ जाते है वे भी पीर मान लिये जाते हैं। इस दिशा मे हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नही किया जाता और उनको सभी पूजने लगते है। 'राजस्थानी लोकसस्कृति की रूपरेखा' मे इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई थी कि यह 'पीरपूजा' भारत की प्राचीन यक्षपूजा का ही परिवर्तित रूप है और इसमे अनेक तत्त्व ऊपर मे मिल गये हे। किसी जमाने का 'वीर' (यक्ष) ही वर्तमान मे 'पीर' के रूप मे प्रतिष्ठित है और हमारी सस्कृति का समन्वय सिद्धान्त इस स्थिति का मूलाधार है। समाज के विशिष्ट व्यक्ति पीरो के रूप मे 'लोक-

पूजित है और इनके सम्बन्ध मे भी जात देना, जड़ूला (केश) उतारना, बूझा करवाना आदि उपक्रम किये जाते है जो पुराने जमाने से यक्षपूजा के अग रहे हैं। इन पीरो के चमत्कारो की भी अनेक कहानियाँ लोक प्रचलित है और जनसाधारण मे उनका पूरा विश्वास है। पीरो की सख्या के अनुसार ही इन कहानियो की सख्या काफी बडी है।

केनोपनिषद् मे कथा आती है कि असुरविजय से देवो मे भारी गर्व छा गया और उनको वास्तविकता का अनुभव करवाने के लिए परमब्रह्म एक महाकाय दिव्य यक्ष के रूप मे प्रकट हुए। इस यक्ष का परिचय प्राप्त करने के लिए देवसमाज मे से अग्नि, वायु एव इन्द्र क्रमश इसके सम्मुख भेजे गए। यक्ष ने उनके सामने एक तिनका रखकर अपना गुण और प्रभाव दिखलाने को कहा। उस तिनके को न अग्निदेव जला सके और न वायुदेव उडा सके तदनन्तर देवराज इन्द्र की बारी के समय महाशक्ति उमा ने प्रकट होकर उन्हे वास्तविक स्थिति बतलाई कि ससार की समस्त क्रियाएँ किस परोक्ष शक्ति से सचालित होती है और मनुष्य का इसके लिए गर्व करना किस प्रकार तथ्यरहित है। केनोपनिषद् का यक्ष अपरिमित शक्ति का केन्द्र है। इसके बाद एक जमाना ऐसा आया कि यही यक्ष लोककथाओ मे ऐसे 'वीर' के रूप मे प्रकट हुआ जो मनुष्य का वशवर्ती है और उसके लिए कार्यशील है। महाराजा विक्रमादित्य जब कभी अपने वीरो को याद करते है, वे आज्ञा पालन के लिए उपस्थित हो जाते हैं। इस परिवर्तन मे तान्त्रिक विचारधारा का प्रभाव प्रतीत होता है। वर्तमान समय मे 'वीर' के स्थान पर पीर लोकपूजित है। इस परिवर्तन का मूलाधार भारत की सतपूजा एव वीरपूजा है।

ऊपर कहा गया है कि देव लोग आर्यो के पूर्वज थे और यक्षो की गिनती भी देवो मे की गई है। ऐसी स्थिति मे यह ध्यातव्य है कि हमारे समाज का एक विशिष्ट वर्ग समयानुसार लोककथाओ मे नाना रूप परिवर्तित करके अन्त मे वह मनुष्य (पीर) के रूप मे ही प्रकट हो गया है। अत भारतीय लोककथाओ मे यक्षतत्त्व का अध्ययन निश्चय ही बडा रोचक और उपयोगी है। राजस्थानी जनसाधारण मे यक्ष शब्द सुनने मे नही आता परन्तु यक्षतत्त्व यहाँ के जनजीवन मे अब भी किसी अश मे समाया हुआ है। यह सब भारतीय लोकसंस्कृति की महिमा है। जैसा की प्रारम्भ मे कहा गया है इस संस्कृति के पुण्य प्रवाह मे समयानुसार विविध तत्त्व मिलते रहे है और कालान्तर मे वे रूपान्तरित भी हुए है परन्तु उनमे से कोई तत्त्व सर्वथा नष्ट नही हुआ। भारत की लोकसंस्कृति मे रमा हुआ यक्षतत्त्व इस विषय मे एक विशिष्ट उदाहरण है।